वर्ष 39, अंक-1, जनवरी-फरवरी, 2016

गगनांचल

साहित्य कला एवं संस्कृति का संगम

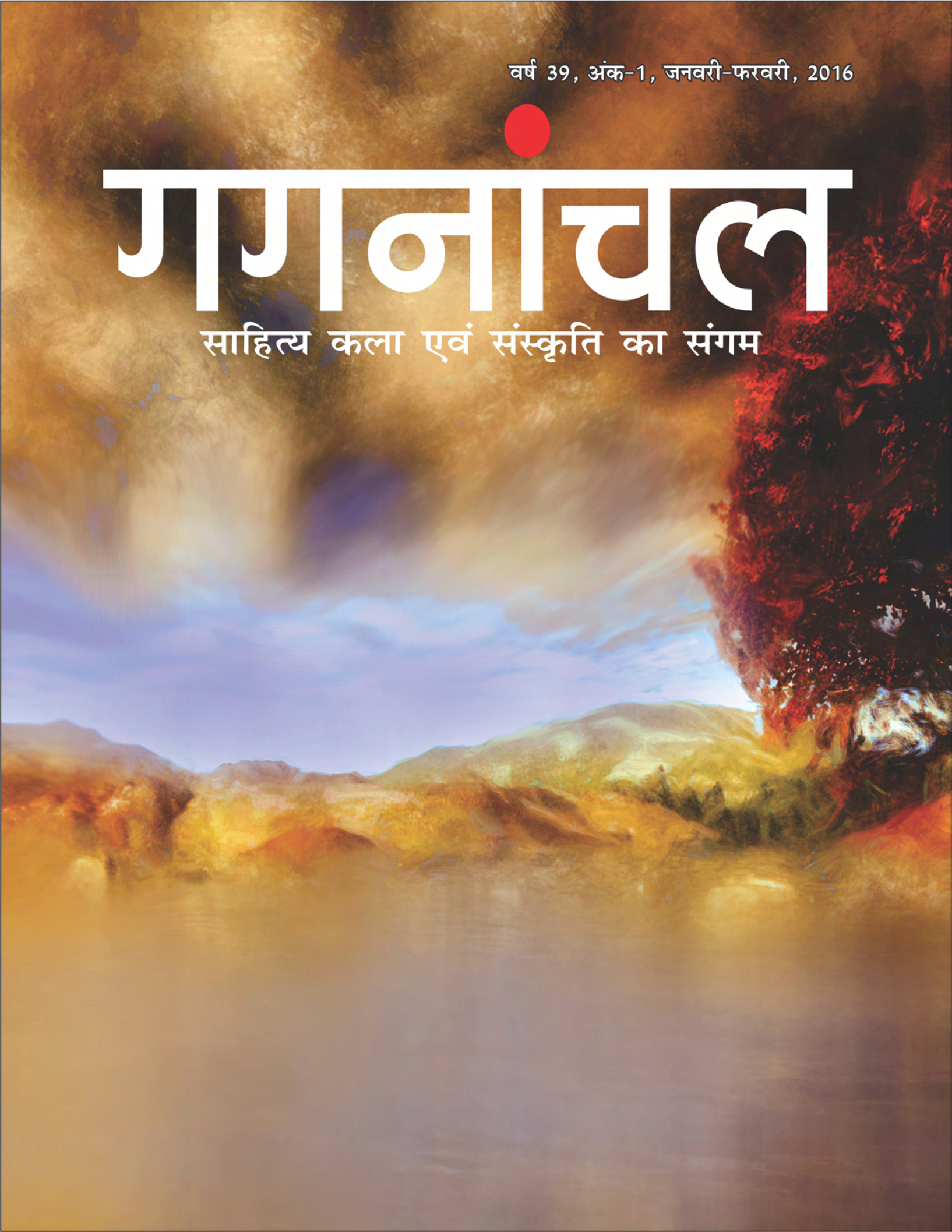

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र का दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिला कर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद् ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद् के लिए गौरव का विषय है। परिषद् का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् मुख्यालय

अध्यक्ष	:	23378616 23370698
महानिदेशक	:	23378103 23370471
उप-महानिदेशक (एन.के.)	:	23370228
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
अनुरक्षण अनुभाग	:	23378849
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23370227
भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र अनुभाग	:	23370633
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-1 अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी प्रभाग-2	:	23370391
अंतर्राष्ट्रीय विद्यार्थी (अफगान)	:	23379371
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 3388, 3347

गगनांचल

जनवरी-फरवरी, 2016

प्रकाशक
सी. राजशेखर
महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
नई दिल्ली

संपादक
नम्रता कुमार
उप-महानिदेशक

ISSN : 0971-1430

संपादकीय पता
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट
नई दिल्ली-110002
ई-मेल : ddgnk.iccr@nic.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध है।
www.iccr.gov.in/journals/hindi-journals
पर क्लिक करें।

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुज्ञा दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद् की नीति को प्रकट नहीं करते।

शुल्क दर

वार्षिक	:	₹	500
		यू.एस. $	100
त्रैवार्षिक	:	₹	1200
		यू.एस. $	250

उपर्युक्त शुल्क-दर का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रक : सीता फाईन आर्ट्स प्रा. लि.
नई दिल्ली-110028
www.sitafinearts.com

विषय-सूची

हमारे अभिलेखागार से
बीते वर्षों के दौरान भा.सां.सं.प. की गतिविधियों की एक झलक 4

लेख

लोकनृत्य घुमुरा 9
राजीवनयन

केरल में हिन्दी भाषा के विकास का स्वरूप 12
डॉ. राकेश कुमार सिंह

सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानियों में नारी संवेदना 13
अरुण कुमार वर्मा

क्या 'निराला' हिन्दूवादी कवि थे? 16
राजकुमार कुम्भज

अज्ञेय का चिंतक-व्यक्तित्व
(संदर्भ-अंतःक्रियाएँ, साक्षात्कार, निबंध आदि) 19
डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

राष्ट्रीय काव्यधारा के कवि : मैथिलीशरण गुप्त 22
राजेन्द्र परदेसी

समकालीन प्रवासी हिन्दी साहित्य की
वैचारिक पृष्ठभूमि 25
वीरेन्द्र कुमार सिंह

उच्च शिक्षा : अग्निपथ की चुनौतियाँ
एवं सम्भावनाएँ 28
डॉ. जंग बहादुर पाण्डेय

वैश्विक हिन्दी की चुनौतियाँ 30
श्रीमती तारामणि पाण्डेय

राष्ट्रीय चेतना के महाकवि इकबाल 32
दानबहादुर सिंह

'ध्रुवस्वामिनी' : नारी-मुक्ति की जयदुन्दुभी 36
डॉ. दादूराम शर्मा

आलोचक दिनकर का मूल्यांकन 42
डॉ. जयपाल सिंह

कवि भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य-दर्शन 45
डॉ. *विजय बहादुर सिंह*

जीवन का यथार्थ या घोर निराशावाद :
'पचपन खंभे लाल दीवारें' 50
वनिता उप्पल

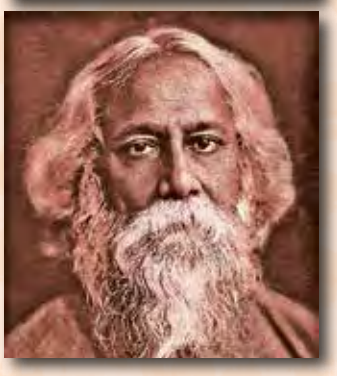

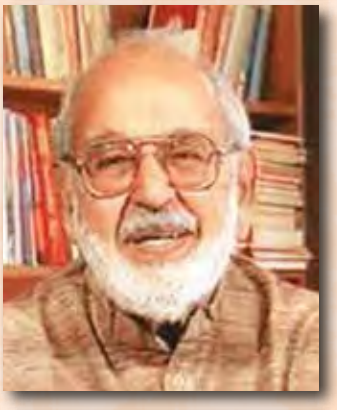

साक्षात्कार

पहला पुरस्कार निराला जी के हाथों मिला (आलोचक नामवर सिंह से महावीर अग्रवाल की बातचीत) 52
महावीर अग्रवाल

संस्मरणात्मक लेख

पूरी एक शताब्दी बीत गई कामगाटा मारू की घटना को 55
डॉ. महीप सिंह

संस्मरण

तांत्रिक लामा की खोज 57
बल्लभ डोभाल

जीवनी-अंश

लागल झुलनी के धक्का, बलमु कलकत्ता... 62
अंकुश्री

व्यंग्य लेख

सैर कर दुनिया की गाफिल 67
जसविंदर शर्मा

कहानी

मेहमान 68
हरिनारायण गुप्त

आज मेरी शादी है 71
सुरम्या शर्मा

एक ताजमहल की वापिसी 73
कुँवर प्रेमिल

लघु कथाएं

तीन लघु कथाएं 77
अशोक 'अंजुम'

कविता/गीत/गज़ल/नवगीत/दोहे

गूँगा सा लगता है/निंदियारा दिन/*मदन देवड़ा* 78

जो बचेगा अंत में/*कुमार शर्मा 'अनिल'* 78

हिमालय में/सपना था या सच/*गंगा प्रसाद विमल* 79

अपनी आँखों का नंगापन/अपने भीतर का डर/जिस्म के पानियों से / *रीभा तिवारी* 80

गज़ल/ *अखिलेश तिवारी* 81

तुम्हें याद करते हुए/आकार बन गया 82
छोटी छोटी बातें/ओ बसंत, सुनो/*आरती*

होठों पर मेरा नाम लिए/बदल गया है शहर हमारा 83
अशोक कुमार गुप्त 'अशोक'

प्रेम कविताएं/*संजीव श्रीवास्तव* 84

प्रेम गीत/*जगदीश पंकज* 85

कविताएं/*डॉ. निर्मल कुमार* 86

पुस्तक-समीक्षा

प्रेमचंद साहित्य : एक खोज 87
कृष्णवीर सिंह सिकरवार

दिनकर पर एक नया विमर्श 89
डॉ. रमेश कुमार सिंह

कबीर से संवाद 92
महेन्द्र प्रजापति

संपादक की ओर से

गगनांचल पत्रिका वर्षों से विचारों और भावनाओं के सम्प्रेषण की पत्रिका है। पत्र-पत्रिकाएँ समाज के पहिए हैं जिनसे वैचारिक गतिशीलता पैदा होती है। हमारी सोच हमारे व्यक्तित्व और चरित्र का आईना होती है। राष्ट्र और समाज व्यापक शब्द हैं, जिनके निर्माण में व्यक्ति मिलकर योगदान देते हैं। आजादी की लड़ाई में बिना जाति, धर्म, परंपरा आदि की परवाह किए सबने एकजुट होकर सहयोग किया, तब इस देश को आजादी का मुँह देखना नसीब हुआ। आज देश को आजाद हुए उनहत्तर वर्ष बीत चुके हैं हमने अभी हाल में उनहत्तरवाँ गणतंत्र मनाया है किन्तु ऐसा लगता है राष्ट्र को बाँटने की साजिश हो रही है जबकि राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, सहिष्णुता यह सब राष्ट्रीय व्यक्तित्व एवं चरित्र के जरूरी अंग हैं।

इस अंक में निराला, सुभद्रा कुमारी चौहान, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, इकबाल, कवि-आलोचक दिनकर, कवि भवानी प्रसाद मिश्र से सम्बद्ध लेखों को प्रमुखता प्रदान की गई है ताकि इस देश की व्यापक सांस्कृतिक विरासत पर पाठक की दृष्टि जा सके। पाठकों की प्रतिक्रियाएँ हमारी संबलता हैं।

(नम्रता कुमार)
उप-महानिदेशक
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

हमारे अभिलेखागार से

बीते वर्षों के दौरान भा.सां.सं.प. की गतिविधियों की एक झलक

भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद् अध्ययन दौरा – अक्तूबर, 1969 के दौरान चित्तूर जैन मंदिर के प्रांगण में
युगाण्डा, फिजी, मॉरीशस और जॉर्डन के छात्र।

केन्या अफ्रीकी छात्र संघ, चंडीगढ़ द्वारा प्रस्तुत केन्या का कंबा नृत्य – विदेशी छात्र दिवस/दिवाली समारोह, 11 नवंबर, 1982

भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद् कार्यालय में भूटान भारत मैत्री संघ शिष्टमंडल के सदस्य, नवंबर, 1980

कमानी ऑडिटोरियम, नई दिल्ली में सचिव, भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद् वेनेजुएला 'केपेल्ला डे कराकस' के प्रतिनिधियों को उपहार भेंट करते हुए, 15 अगस्त, 1980

केरल के कलारीपयट्टू दल का हांगकांग दौरा, अक्तूबर, 1980

'इंटरनेशनल अंडरस्टेंडिंग थ्रू एजुकेशन' संबंधी सम्मेलन के प्रतिनिधियों के सम्मान में स्वागत समारोह, 3 जनवरी, 1965

क्योशी सायतो (जापान) द्वारा वुड ब्लाक प्रिंट की प्रदर्शनी, 7-14 सितंबर, 1967

डॉ. डी.एस. कोठारी द्वारा आजाद स्मारक व्याख्यान, 26-27 फरवरी, 1970

कनाडा के बेयफ्स्की द्वारा कलर ब्लाक प्रिंट्स की प्रर्दशनी, 27 मई-2जून, 1970

लोकनृत्य घुमुरा

राजीवनयन

राजीवनयन वर्तमान में पढ़ाई के साथ-साथ ओड़िआ कविताओं का हिन्दी में अनुवाद कार्य एवं लघुकथा लेखन में सक्रिय हैं।

भारत में जितने भी आध्यात्मिक प्रदेशों का नाम गिना जाता है उसमें से ओड़िशा आगे हैं। यहाँ की प्रादेशिक संस्कृति, पर्व-त्योहार, कृषि-व्यापार बहुत प्राचीन है। इसमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को भी स्मरण किया जाता है। हमारी संस्कृति में सामाजिक सहिष्णुता के लिए कर्म और धार्मिक क्रिया को ज्यादा महत्व दिया गया है। समाज में सुख और शांति की भावना को ही पावन माना जाता है। इसकी वजह से मानव के मन में अहिंसा, भाईचारा एवं आनंदमय जीवन की प्रेरणा मिलती है। जिसके चलते पारिवारिक जीवन में सद्भाव प्रकट होने के साथ-साथ मनुष्य के अंदर एक महान राष्ट्रीयता का भाव उत्पन्न करने में सहायक होता है।

लोगों द्वारा की जा रही पूजा, त्योहार के पीछे समाज में प्रचलित लोकविश्वास के गहरे तत्व छुपे रहते हैं। जनश्रुति या किंवदंती इसके गवाह हैं। कई सारे लोकविश्वास एवं पूजा पद्धतियाँ लोकगीतों के माध्यम से जीवित रहीं एवं हम तक भी पहुँची। धार्मिक भावना की तीव्रता भी इसमें अधिक दिखाई देती है। और ये भी कह सकते हैं कि आध्यात्मिक भावनाएँ भी इसके चलते जिंदा रहीं। पूजा में ईश वंदना भी होती है। इसके कई रूप लोकगीतों में मिलते हैं। लोकगीत में गायन के साथ-साथ नृत्य भी प्रस्तुत किया जाता है जिसे हम लोकनृत्य कहते हैं। ओड़िशा के डालखाई, करमा, कलंगा आदि लोकनृत्य प्रसिद्ध हैं।

युद्ध की जीत, पूजा-त्योहार, शादी-विवाह में हम लोकनृत्य का आयोजन करते हैं। यह परंपरा सदियों से चलती आ रही है। लेकिन बाद में नृत्य (लोकनृत्य) केवल खुशी के मुहूर्त पर या अवसर के वक्त मनोरंजन का साधन मान लिये गए। वहीं से संगीत का रूप ज्यादा मुखरित होने लगा। ओड़िशा के कई लोकगीतों ने राष्ट्रीय स्तर पर नाम किया है। लोकगीत (लोकनृत्य) किसी व्यक्ति का नहीं होता। इसमें गाँव के सभी लोगों की भागीदारी रहती है एवं सभी लोग शामिल होकर उपभोग करते हैं। नाच-गीत देहाती जीवन के प्रतिरूप को ग्रहण करने के कारण इसमें आँचलिकता का पुट भरा रहता है। इसमें मनुष्य का सामूहिक भाव विशेष रूप से प्रतिबिम्बित होता है। कई नृत्यगीत केवल नारियों के लिए हैं, कुछ पुरुषों के लिए एवं बाकी साथ-साथ प्रस्तुत किए जाते हैं।

ओड़िशा में घुमुरा नृत्य विशेष रूप से पर्व-त्योहारों के अवसर पर ही देखने को मिलता है। यह नृत्य केवल पुरुषों के द्वारा ही गीत गाकर प्रस्तुत किया जाता है। एक दल में आठ, सोलह, बत्तीस या चौसठ जन रहने का नियम है। एक किंवदंती से पता चलता है कि सत्ययुग में देवी दुर्गा ने महिषासुर के वध हेतु युद्ध का ऐलान किया। युद्ध की तैयारी के लिए देवताओं के द्वारा इस घुमुरा का निर्माण हुआ। यह मिट्टी की छोटी मटकी के ऊपर चमड़े का चादर लगा हुआ वाद्य यंत्र है। उसी समय से ही घुमुरा रणवाद्य के रूप में व्यवहृत हुआ एवं दुर्गा माता की चौसठ योगिनी का स्तुति पाठ हुआ। इसलिए इसके प्रतीक रूप में चौसठ, चौसठ का वर्गमूल आठ, एक चौथा

सोलह या आधा बत्तीस जनों को लेकर एक दल बनाया जाता है। आज भी घुमुरा नृत्य प्रारंभ करने के पहले शक्ति की वंदना की जाती है। देवी दुर्गा ने महिषासुर का वध करके शिवजी से मुलाकात की एवं विजय भेंट स्वरूप घुमुरा प्रदान किया। लोगों के मन में यह धारणा है कि शिवजी के माध्यम से घुमुरा साधारण लोगों तक पहुँचा। उसी के बाद से ही इसे रणवाद्य के रूप में स्वीकार किया गया। प्रसिद्ध ओड़िआ ग्रन्थ चण्डीपुराण में भी इस रणवाद्य का जिक्र किया गया है। बाद में साधारण लोगों के द्वारा विभिन्न त्योहार एवं कभी-कभी साँझ में फुरसत के समय में मनोरंजन के लिए प्रस्तुत किया जाता रहा। ऐसी भी जानकारी मिलती है कि सामंत-जमींदार लोग शिकार में इसका बाजे के रूप में उपयोग करते थे। वर्तमान में भी पश्चिम ओड़िशा में यह एक चर्चित लोकनृत्य है। खासकर कालाहाण्डी जिले में इसका सबसे ज्यादा प्रचलन रहा है। सभी उत्सव त्योहारों में इस नृत्य का प्रदर्शन होता है। यहाँ के लोगों के शब्दों में दशहरे, छतर पर्व, खण्डा बसा, चैत पर्व के दिन इस नृत्य की प्रस्तुति और भी चमकपूर्ण रंग लाती है।

जैसा कि पहले भी बताया गया है यह लोकनृत्य शक्ति की उपज है इसलिए शक्ति वंदना से ही नृत्य प्रारम्भ किया जाता है। साथ ही साथ सरस्वती माता, शिवजी एवं पंचदेवों की स्तुति की जाती है।

''जय माँ कन्धेनबुढ़ी[1] की जय...
जय धवल वरणी वैकुण्ठ वासिनी
कालिदासे तव दया
सुप्रसन्न अंबिके माँ निर्बिघ्ने पददायिनी।
सरस्वती महामायी विद्ये कमलनयनी
मम कंठे पद्रचना माँ वाक्य देवी नमस्तुते।।
गणे नारायणे रुद्रे अम्बिका भाष्करे तथा

भिन्नाभिन्न न कर्तव्यं पंचदेव नमस्तुते...।
माँ त कन्धेन बुढ़ी
जणाण करुछे तोर पादे पड़ि गो
माँ त कन्धेन बुढ़ी।
सृष्टि मध्ये जात हेलु आगो माँत
गलारे मंदार माल,
कपाले सिन्दुर लाल जर जर,
अँटाकु सुन्दर दिसे घागुड़ी गो माँ
त कन्धेन बुढ़ी।
कन्धमाले जाल हेलु आगो माँत,
कन्धेनबुढ़ी नामेत,
बालक अज्ञान करुछि जणाण
पोढ़ घुसुरा खाउ महामायी गो।
माँ त कन्धेन बुढ़ी...।''

(माँ कन्धेन बुढ़ी आपको प्रणाम कर आपका नाम ले रहा हूँ। धरती में आपका प्रवेश हुआ। गले में गुड़हल की माला, सिंदुर के कारण मुँह लाल दिखता है और किंकणी से आपकी सुंदरता और बढ़ जाती है। कन्धमाल जिले में जन्म होने के कारण आपका नाम कन्धेनबुढ़ी हुआ। आपको भैंस, सूअर की बलि चढ़ाते हैं। माँ आपका जय जयकार करता हूँ।)

इसमें गाए जाने वाले गीत पौराणिक ग्रंथ, आख्यान से लिये जाते हैं या फिर खुद के लिखे हुए होते हैं। गीत के साथ नृत्य का चमत्कारपूर्ण प्रदर्शन देखने को मिलता है। उत्सव में जिनकी पूजा हो रही होती उन्हीं के अनुसार ही गीत जोड़ा जाता है। भगवान श्रीकृष्ण की पूजा (उत्सव) का एक गीत–

''श्री हरि... आआ...
वसुदेव सुतं देव कंस चाणूर मर्दनं
देवकी परमानंद कृष्ण वंदे जगतगुरु।...
ए भाई... नंद गउर पिला।
मथुरानु जाई गुपे बढ़िला हो नंद गउर पिला
तिनि दिने सेहु पुतना माएला गुरस पिइ पिइ करि
अघा, बका, केशी, माएला गुटे गुटे करि
धेनुका, सकटा, जेते थिले
सबु असुरंकर बुड़ला भेला हो
नंद गउर पिला...।
कंस राजा शुनि मने मने गुनि सेनु गुटे
चक्कर कला
अकुर पठेइ रामकृष्ण नेइ हातीरठाने मरउथिला
चाणुर, मुष्टिक, अष्टमल्ल जेसे
कसंर् सांगे जीबन गला हो
नंद गउर पिला...।''

(नन्दजी का पुत्र जो मथुरा से जाकर गोपपुर में पला बढ़ा था। पैदा होने के तीन दिन में पूतना को दूध चूसकर मार डाला। अघा, बकासुर, केशी, एक-एक को मार डाला। धेनुका, सकटा किसी को भी नहीं छोड़ा। कंस यह सुनकर घबरा गया और षड्यंत्र कर अक्रूर के माध्यम से मथुरा लाया और हाथियों से मरवाने का प्रयास किया; फिर भी कोई नहीं

बचा। चाणूर, मुष्टिक, अष्टमल्ल जितने भी थे सबके सब कंस के साथ मारे गए।)

घुमुरा अंदर से मटकी की तरह खाली रहता है एवं ऊपर उसके मुँह के गोलाई में गोह-चमड़े का चादर कस कर बंधा रहता है। घुमरा रस्सी से बंधा होता है और उससे जुड़ी रस्सी वादक के गले की दोनों तरफ से होकर बंधी रहती है। वादक के कमर से घुमुरा का निचला भाग बंधा रहता है और छाती के नीचे ऐसा बंधकर लटका रहता है कि वादक आराम से बिना तकलीफ के बजा सके। घुमुरा के साथ-साथ निसान एवं मृदंग समताल में बजता है। कहीं-कहीं पर केवल निशान का व्यवहार होता है। वादक उसके ताल में गीत गाते हैं और सुंदर ढंग से नाचते हैं।

घुमुरा नृत्य परिवेषण के समय गीत के भावानुसार नर्तक आंगिक प्रदर्शन से गीत का भाव प्रकट करते हैं। विविध तानों एवं लयों से गीत गाकर अपनी कला-कुशलता को प्रस्तुत करते हैं। छलांग मारकर एवं एक गोलाई में घूम-घूम कर वीरत्वपूर्ण ढंग से बजाते रहते हैं। बीच-बीच में ईश वंदना एवं पौराणिक आख्यानों को भी गीत के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसी गीत के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए डॉ. महेन्द्र कुमार मिश्र लिखते हैं– ''ओड़िआ छंद, चौपदी और ओड़िया संगीत चौपदी के बीच रीतियुगीन संगीत का आंगिक एवं आत्मीयता को आत्मसात कर घुमुरा नृत्य ओड़िशी संगीत की धारा को एक अंचल की अनगिनत अनपढ़ जनता के सम्मुख परोसकर उनकी आध्यात्मिक चेतना तथा रसात्मक अनुभूति को प्रतिबिम्बित किया है।'' (पृष्ठ 322, कालाहाण्डिर लोकसंस्कृति)। घुमुरा शाक्त की उपज होने के कारण मुख्यतः भक्ति एवं वीर रसात्मक है। इसमें एक सांस्कृतिक स्वाभिमान की झलक मिलती है। जगह-जगह पर घुमुरा वादन एवं पौराणिक तथ्यों को लेकर वाद-विवाद की प्रतियोगिता होती है। इसमें जो प्रश्नोत्तर की धारा चलती रहती है, उनके भाव में सम्भ्रांतों की छाया दिखाई देती है। गीत प्रारंभ में एक कुशल गायक पंचदेवों की वंदना करता है तो दर्शन का खून खौल जाता है एवं रौंगटे खड़े हो जाते हैं। राष्ट्रीय संहती इसकी एक विशेषता है। इसे घुमुरा गीत की उत्कृष्टता भी कह सकते हैं।

घुमुरा नृत्य में जैसे वीर भाव रहता है वैसे बजाने की शैली भी उत्तेजक होती है। उसी के अनुरूप वादकों का वेश भी चमत्कार होता है। निसान और मृदंग वादक के अलावा और कोई भी मूँछ नहीं रखते। आँखों में काजल, होंठ लाल, माथे पर टीका, मुँह तथा गालों पर कई रंगों के पाउडर, कान में कुंडल, बाहों में बाजूबंध, गले पर माला, पैरों में घुँघरू बाँधकर रंगीन एवं चकमक साड़ी या फिर धोती पहने हुए होते हैं।

ओड़िशा की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि अत्यंत महान है। यहाँ पर ग्रामीण परिवेश की अधिकता के कारण लोगों की जिंदगी आध्यात्मिक भावना से नियंत्रित होती है। इसलिए ज्यादातर गीत आध्यात्मिक भावना युक्त हैं। जिसके कारण इन लोकगीतों ने देहाती जीवन के उपादान, धार्मिक भावना की चिंता-चेतना को समेटकर रक्खा है। लोकगीत का भाव एवं संवेदना अत्यंत मूल्यवान तथा हृदयस्पर्शी है। वास्तव में मानव की चालढाल, संस्कृति परम्परा को लोकगीत में देखा जा सकता है।

संदर्भ संकेत–

1. कन्धेनबुढ़ी–कन्धमाल जिले की ईष्टदेवी। दुर्गा माता का एक अवतार (लोक विश्वास)।
2. निसान–नगाड़ा, लेकिन निसान की ध्वनि नगाड़े से बहुत अधिक दूर तक सुनाई देती है।

शोध-छात्र, रेवेंशॉ विश्वविद्यालय, कटक
द्वारा डॉ. संजय कुमार सिंह
अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
राजेन्द्र श्वशासी महाविद्यालय,
बलांगिर, ओड़िशा-767002

केरल में हिन्दी भाषा के विकास का स्वरूप

डॉ. राकेश कुमार सिंह

राकेश कुमार सिंह ने हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय से 'रचना प्रक्रिया के संबंध में अज्ञेय और मुक्तिबोध का तुलनात्मक अध्ययन' विषय पर एम. फिल. की उपाधि सन् 2008 में हासिल की। सन् 2013 में 'समकालीन हिंदी कवियों का आलोचना कर्म' विषय पर हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. शोध कार्य पूरा किया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आलोचनात्मक लेख, समीक्षा और साक्षात्कार प्रकाशित हैं।

किसी भी संस्कृति का विकास अन्य संस्कृतियों के साथ उनके अंदर विकसित हो रही सभ्यताओं के संघर्ष का प्रतिफलन होता है। उस विकास में जो चीजें काफी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं उनमें से एक है—भाषा। भाषा सिर्फ वैचारिक विनिमय का ही माध्यम नहीं होती; बल्कि उससे आगे सामाजिक संस्कृति के विभिन्न रूपों की प्रकृति को भी उसकी सहायता से पहचाना और परखा जा सकता है। उसकी जीवंत गतिशीलता को महसूस किया जा सकता है। मुझे जहाँ तक लगता हे कि जिस भाषा में इसका अभाव रहेगा; उसमें असमय उसके विकास के स्तर पर गतिरोध उत्पन्न हो जाएगा।

केरल में हिंदी भाषा के विकास के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए मलयालम भाषा के विकास के स्वरूप को स्पष्ट करना जरूरी है क्योंकि हिन्दी भाषा केरल में व्यापक तौर पर स्वीकार किए जाने के तार मलयालम भाषा के विकास के संदर्भ से जुड़े हुए हैं। ध्यान से देखा जाए तो मलयालम भाषा के विकास के अंदर अन्य विदेशी भाषाओं—अरबी, चीनी, जापानी, ग्रीक, इजीप्सीयन के काफी शब्द भरे पड़े हैं। उदाहरण के तौर पर तहसील, जिला, नंगूर, चीनचट्टी, चीनवला, कराटे, अलमारी आदि-आदि शब्दों को देखा जा सकता है। इसकी वजह यह है कि 5वीं शताब्दी के पश्चात् केरल की सामाजिक संस्कृति का संपर्क विभिन्न सामाजिक संस्कृतियों के साथ वाणिज्य और व्यापार के साथ काफी प्रगाढ़ रहा। केरल की कला, भाषा और साहित्य के विविध पहलुओं पर इसका गहरा और व्यापक प्रभाव हम देख सकते हैं। उदाहरण के रूप में कथकली के वेश विधान में 'इस्लाम धर्म' के प्रभाव को आसानी से पहचाना जा सकता है। एक प्रकार से भाषा में शब्दों को ग्रहण करने की परंपरा भी उसी प्रक्रिया का परिणाम है। इसकी वजह है मलयाली सामाजिक संस्कृति और भाषा में विभिन्न सामाजिक संस्कृतियों और भाषाओं के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण का होना।

हिन्दी भाषा के साथ भी मलयाली मानसिकता इसी प्रकार की रही है। दूसरी और तीसरी शताब्दी से ही उत्तर भारत के साथ व्यापारिक-वाणिज्यिक संबंध के साथ-साथ सामाजिक-सांस्कृतिक संबंध भी बने। इस दौरान केरल में जैन और बौद्ध धर्म का प्रचार भी हुआ। यहाँ तक कि आठवीं शताब्दी में बौद्धधर्म का खासा प्रभाव भी रहा है। केरल का 'शबरीमला' बौद्ध विहार ही था; इतिहास इसकी पुष्टि करता है। मध्यकाल में भक्ति की धारा यहीं से फूटी और महाराष्ट्र से होते हुए उत्तर भारत या कहें तो पूरे भारत में फैल गयी। इस वजह से 'कुंजन नंबियार' के 'तुल्ल पाट्टु' में भी हिंदी के गोसाई, ढोल, संत जैसे शब्दों का मिलना इस बात का स्वाभाविक प्रमाण है। आधुनिक काल में 'स्वाति तिरुनाल' ने हिंदी में गीत लिखे। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान केरल में खादी के साथ-साथ हिन्दी भाषा का प्रचार करना भी सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यक्रम का हिस्सा था। केरल में हिन्दी भाषा के प्रथम प्रचारक के रूप में 'दामोदरनुन्नि' की गणना की जाती है। हिन्दी भाषा के प्रचार कार्यक्रमों में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के योगदान को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन के माध्यम से एक प्रकार की भारतीय लोकतंत्र की भावात्मक एकता का विकास यहाँ के सामाजिक वातावरण में महसूस किया जा सकता है। स्वतंत्रता के पश्चात् केरल की सरकार ने हिन्दी को यथासंभव प्रोत्साहित किया है। दसवीं कक्षा तक हिन्दी केरल में अनिवार्य विषय के रूप में पाठ्यक्रम का हिस्सा है। आज के दौर में महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में स्नातक, स्नातकोत्तर के साथ-साथ शोध कार्य करने की सुविधा भी मौजूद है।

हिन्दी भाषा और साहित्य में मौलिक लेखन आजकल केरल में प्रचुर मात्रा में हो रहा है। ए. अरविंददाक्षन जैसे विद्वान इसके जीवंत उदाहरण हैं। हिन्दी अनुवाद को विकसित करने में पी. षणमुखम्, आर. सुरेंद्रन, जी. गोपीनाथन जैसे विद्वानों की भूमिका को कैसे नजरअंदाज किया जा सकता है। इसके अलावा विश्वनाथ अय्यर, तंकमणि अम्मा, चंद्रशेखर नायर आदि का योगदान काफी महत्वपूर्ण है। संग्रथन, अनुशीलन और जनविकल्प जैसी कई महत्वपूर्ण पत्रिकाओं के द्वारा भी हिन्दी भाषा का प्रचार-प्रचार हो रहा है। इस तरह देखा जाए तो केरल में हिन्दी भाषा के विकास का स्वरूप जितना व्यापक है उतना ही गंभीर।

हिन्दी विभाग, केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
कासरगोड-671123 (केरल)

सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानियों में नारी संवेदना

अरुण कुमार वर्मा

जवाहर नवोदय विद्यालय, रीवा (म.प्र.) में हिंदी अध्यापक के रूप में सेवारत।

''खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी'' के द्वारा अपनी पहचान बनाने वाली कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान ने सिर्फ कविता के क्षेत्र में ही अपना परचम नहीं लहराया बल्कि एक कथाकार के रूप में भी अपनी मिसाल कायम रखी है। सुभद्रा जी का जन्म सन् 1905 में इलाहाबाद के निहालपुर गाँव में हुआ था। उनकी शादी लक्ष्मण सिंह के साथ हुई। लक्ष्मण सिंह भी साहित्य प्रेमी के साथ-साथ कांग्रेस के कुशल सेवी थे। उन्होंने कुछ दिनों तक कर्मवीर का संपादन भी किया था। शादी के उपरांत पति के इन गुणों ने सुभद्रा जी को अपने कर्मक्षेत्र में अग्रसर रखा। इसलिए गृहस्थ जीवन में प्रविष्ट होने के उपरान्त भी दो पुत्र और एक पुत्री के पालन-पोषण के साथ-साथ एक कुशल गृहिणी की भूमिका का निर्वहन करते हुए साहित्य एवं राष्ट्र दोनों की सेवा की। देश की आजादी के लिए वे कई बार जेल भी गईं। सन् 1948 में अचानक देहावसान हो जाने के उपरान्त लंबी उमर तो नहीं वरण कर सकीं फिर भी जो समय मिला साहित्य की सेवा में समर्पित किया।

सुभद्रा कुमारी चौहान का साहित्यिक सफर कविता और कहानी रूपी दो धाराओं में प्रवाहित हुआ। इनकी कविताएं 'त्रिधारा' और 'मुकुल' में संकलित हैं। इन्होंने लगभग

45 कहानियाँ लिखी हैं जो 'बिखरे मोती', 'उन्मादिनी' एवं 'सीधे-साधे चित्र' नामक संकलन में संकलित हैं। इनकी कहानियों की सूची इस प्रकार है—भग्नावशेष, होली, पापी पेट, मंझली रानी, परिवर्तन दृष्टिकोण, कदम्ब के फूल, विस्मृत, मछुए की बेटी, एकादशी, आहुति, थाती, अमराई, अनुरोध, ग्रामीणा, उन्मादिनी, असमंजस, अभियुक्ता, सोने की कंठी, नारी हृदय, पवित्र ईर्ष्या, अंगूठी की खोज, चढ़ा दिमाग, वेश्या की लड़की, गौरी, रूपा, तांगेवाला, कल्याणी, कैलाशीनानी, हींगवाला, राही, गुलाब सिंह, दो साथी, बिआहा, थाती, प्रोफेसर मित्रा, सुभागी, दुराचारी, मंगला, जम्बक की डिबिया, तीन बच्चे, बड़े घर की बात, कान के बुंदे, दो सखियां, देवदासी, एक्सीडेंट, दुनिया आदि।

सुभद्रा जी की कहानियों में पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन के व्यवहारिक पक्ष का सहज चित्रण हुआ है। इनकी आधे से अधिक कहानियाँ नारी समस्याओं की वास्तविकता को उजागर करती हैं। इन्होंने भारतीय नारी की परिस्थितियों, समस्याओं एवं भावनाओं का सहज चित्रण प्रस्तुत किया है। घर, परिवार में हो रहे उन पर अत्याचारों, उन्हें सिर्फ भोग्या समझना, उनके विचारों को महत्व न देना आदि समस्याओं को इन्होंने अपनी कहानियों में उठाया है। इनकी एक प्रमुख विशेषता यह है कि ये नारी लेखिका होते हुए पुरुष मनोविज्ञान का सुन्दर चित्रण अपनी कहानियों में प्रस्तुत करती हैं। तत्कालीन समाज स्त्रियों को सिर्फ घर की ही वस्तु समझता था। रसोई एवं पति की सेवा ही इनका महत्वपूर्ण कार्य था। 'मझली रानी' कहानी में मझली रानी अपने देवर के सामने हारमोनियम पर गीत गाती हैं उस परिवार पर मानो पहाड़ टूट पड़ता है। बड़ी रानी का क्रोध इस तरह से उस पर फूट पड़ा—''यह घर तो अब भले आदमी का घर कहने लायक रह ही नहीं गया है। लाज-शरम तो जैसे धो कर पी ली हो। बाप-रे-बाप! हद हो गई। जैसे हल्के घर की है वैसे ही हल्की बातें यहाँ करती है। पास-पड़ोस वाले सुनते होंगे तो क्या कहते होंगे? यही न कि मझले राजा की रानी रंडियों की तरह गा रही है! बाबा इस कुल में तो ऐसा कभी नहीं हुआ, कुल को तो न लजवाओ देवी! बाप के घर जाना तो भीतर क्या चाहे सड़क गाती फिरना लेकिन ये सब यहाँ न होने पावेगा। तुम्हें क्या? घर के भीतर

बैठी-बैठी चाहे जो कुछ करो, वहाँ आदमियों की तो नाक कटती है।''[1]

सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानी की नायिकाएं वैवाहिक स्वतंत्रता को लेकर अग्रसर हैं। प्रेम विवाह को इन्होंने महत्व दिया है। 'उन्मादिनी' कहानी की नायिका जिसकी शादी पिता ने एक इंजीनियर से कर दी थी। फिर भी वह अपने प्रेमी कुंदन को भूल नहीं पाती। ज्यों-ज्यों कुंदन से मिलने को रोका जाता त्यों-त्यों उसका उन्माद बढ़ता जाता। कुंदन की मृत्यु के उपरांत वह उसकी समाधि पर फूल चढ़ाती और दीपक जलाती। इंजीनियर से विवाह के समय हीना के विचारों का उदाहरण देखिए— ''सोचा मुझे कौन सी इमारत खड़ी करवानी है या कौन से पुल तैयार करवाना है जो पिता जी ने इंजीनियर तलाश किया है। मेरे जीवन के थोड़े दिन तो कुंदन के साथ हंसते-खेलते बीत जाते किन्तु वहाँ मेरी कौन सुनता? परिणाम यह हुआ कि यहाँ इतने चक्कर लगाकर भी मेरे ऊपर कुंदन का कुछ भी अधिकार न हो पाया और इंजीनियर साहब ने जिनसे न कभी की जान थी न पहचान मेरे साथ सिर्फ सात चक्कर लगाए और मैं उनकी हो गई।''[2] दाम्पत्य जीवन में बंधकर भी इनके पात्रों के प्रेम का सिलसिला टूटता नहीं है। उन्मादिनी जहां शादी-शुदा होकर भी अपने प्रेमी के प्रति समर्पण को नहीं त्याग सकी वहीं 'कल्याणी' कहानी की कल्याणी जो विवाह के उपरांत पति के घर आते समय एक्सीडेंट में पति के देहांत के उपरांत शादी शुदा जयकृष्ण से प्रेम करती है। जयकृष्ण के चाहते हुए भी उनसे पुनर्विवाह नहीं करती और 'स्कंद गुप्त' की देवसेना की तरह प्रेम के उच्चादर्श को प्राप्त करती है—''आप क्या समझते हैं कि मैं किसी और से विवाह करूंगी? यह कभी न होगा। मैंने एक बार जिससे प्रेम किया है उसी से प्रेम करते हुए मिट जाऊंगी। हिन्दू नारी प्रेम करना जानती है। वह प्रेम का प्रतिदान नहीं चाहती। मैंने प्रेम किया है, करती रहूंगी। यह बात दूसरी है कि प्रेम की प्रतिमा तक मेरी पहुंच न हो सके।''[3]

पुरुषवादी घेरे में जकड़ी नारी के जीवन की विडंबनाओं ने उसके ऊपर हर जगह बंधन लगाया है। इन बंधनों से मुक्ति का प्रयास सुभद्रा जी ने अपनी कहानियों में किया है। 'एकादशी' कहानी में इन्होंने बाल विवाह, विधवा विवाह और अनमेल विवाह की समस्या को उठाया है। 'भग्नावशेष' की नायिका एक कवयित्री है परंतु जब उसका विवाह हो जाता है तो उसे कवि सम्मेलन में जाने की इजाजत क्या उसे किसी से बात करने की भी अनुमति नहीं होती है। 'कदंब के फूल' में बिना सोचे-समझे सास का बहू पर अत्याचार दिखाया गया है। 'आहुति' कहानी की कुंतला अखिलेश्वर की बीमारी पर उसे देखने चली जाती है तो पति राधेश्याम पर पहाड़ टूट पड़ता है। 'पवित्र ईर्ष्या' कहानी की नायिका के राखी बंद भाई अखिल से लगाव के कारण पति विनोद विमला को संदेह की नजरों से देखता है। इस तरह के पुरुषवादी मनोवैज्ञानिक चित्रण सुभद्रा जी की कहानियों की प्रमुख विशेषता है। स्त्री की दशा का चित्रण 'मझली रानी' में भी हुआ है—''यहाँ तो किसी पुरुष का किसी स्त्री से मिलना-जुलना या किसी प्रकार का व्यवहार रखना ही पाप है। यदि कोई स्त्री किसी पुरुष से किसी प्रकार का व्यवहार रखती है, प्रेम से बातचीत करती है तो वह स्त्री भ्रष्टा है, चरित्रहीन है, नहीं तो पर पुरुष से मिलने-जुलने का और मतलब ही क्या हो सकता है।''[4]

पुरुष की कामुकता की प्रवृत्ति का चित्रण इनकी कहानियों में देखने को मिलता है। अपनी कामुकता को अंजाम देने के लिए वह तरह-तरह के छल-प्रपंच करता है। इसके परिणामस्वरूप स्त्री दुराचारिणी हो जाती है और पुरुष का कुछ नहीं बिगड़ता। 'सोने की कंठी' में राय साहब सोने की कंठी देकर बिन्दो का चरित्र भ्रष्ट करता है और जब बिन्दो के घर में अलगौझा होता है और बिन्दो कंठी बेचने जाती है तो वह कंठी पीतल की साबित होती है। 'कैलाशी नानी' और 'देवदासी' में भी सुभद्रा जी ने इस तरह के चरित्र की सृष्टि की है और स्त्री-पुरुष के आपसी संबंधों को मनोविकार मानते हुए वास्तविक प्रेम से अलग करने का प्रयास किया है।

सुभद्रा कुमारी चौहान का दौर साहित्य में राष्ट्रीय जागरण को लेकर सजग था। महिला लेखिकाओं की संख्या कम थी। 'शृंखला की कड़ियाँ' के माध्यम से महादेवी वर्मा नारी स्वतंत्रता की आवाज उठा रही थीं। उस समय देश की आजादी मुख्य मुद्दा था जिसे महिला और पुरुष मिलकर उस पुण्य कार्य में आहुति दे रहे थे। उस समय सुभद्रा जी आजादी की लड़ाई के साथ-साथ महिला की स्थिति और स्वतंत्रता को बड़ी सहजता से अपनी कहानियों में चित्रित कर रही थीं। इनकी कहानियाँ घर के ताने-बाने में गूंथ कर सामाजिक समस्याओं का रूप ले रही थीं। इन्होंने सिर्फ समस्याओं को ही उजागर नहीं किया है बल्कि उसे हल करने के रास्ते तलाशने का प्रयास भी अपनी कहानियों में किया है। 'दृष्टिकोण' कहानी की निर्मला बाल विधवा बिट्टन को जो गर्भवती हो जाने के कारण घर से निकाल दी गई है उसे अपने यहाँ ठहराने के लिए सासू माँ से लड़ जाती है और जब सासू माँ फिर भी नहीं तैयार होतीं तो उसे अपने भाई के यहाँ ठहराती है। बिट्टन को सम्मान दिलाने के लिए निर्मला का पक्ष देखिए—''तो क्या इस घर में मेरा इतना भी अधिकार नहीं कि यदि मैं चाहूँ तो किसी को एक दिन के लिए भी ठहरा सकूँ। अभी उस

दिन तुम लोगों ने बाबू राधेलाल जी का इतना आदर सम्मान क्यों किया था। उनके चरित्र के बारे में कौन नहीं जानता? उनके घर में ही तो वेश्या रहती है... और वह भी उसके हाथ का खाते-पीते भी हैं। फिर बिचारी बिट्टन ने क्या इससे भी ज्यादा कुछ अपराध किया है?.... मेरी इच्छा का भी कोई मूल्य होना चाहिए? या मेरी इच्छा सदैव आप की इच्छा के सामने कुचली जाया करेगी।''[5] इन्होंने उस समय इस तरह की आवाज बुलंद की थी जब स्त्री अधिकारों को लेकर इतनी जागरूकता नहीं थी। इनकी कहानियों के कालजयी होने की बात की जाए तो इसका तानाबाना आज भी ग्रामीण परिवेश में हमारे घर और आस-पास घटित होती नजर आती है।

सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानियाँ यथार्थ की धरातल पर रची गई हैं। इन्होंने घर-परिवार की सहज घटनाओं को अपनी कहानी का विषय बनाया है। इनकी कहानियाँ हमारे आस-पास घटित होती घटनाएँ लगती हैं। वर्तमान परिवेश में इनकी कहानियाँ ग्रामीण अंचल का प्रतिनिधित्व करती हैं। इतनी जागरूकता के बाद भी इनके द्वारा उठाई गई समस्याओं से गाँव अभी भी उबर नहीं पाए हैं। वर्तमान के स्त्री विमर्श की पृष्ठभूमि में इनकी कहानियों को रखा जा सकता है।

निष्कर्षतः सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानियाँ नारी संवेदना के धरातल पर रची गई हैं। स्त्री-पुरुष संबंधों, समाज में स्त्री की दशा, स्त्रियों के आपसी संबंध, वासनावृत्ति का खंडन, प्रेम की वास्तविक अभिव्यक्ति एवं स्त्री के वैचारिक स्वतंत्रता के हनन को अपनी सहज संवाद शैली में घर-गृहस्थी में संलग्न महिलाओं की समस्याओं को सहजता से उठाया है। आज के संदर्भ में भी सुभद्रा जी की कहानियाँ ग्रामीण परिवेश से जुड़ी हैं। इनकी कहानियाँ नारी चेतना के क्रम में एक शुरुआती कड़ी हैं। वर्तमान में इनकी कहानियों की विवेचना स्त्री विमर्श को सही दिशा प्रदान करेगी।

संदर्भ–

1. सुभद्रा समग्र, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, जनवरी 2000, पृष्ठ 25
2. सुभद्रा समग्र, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, जनवरी 2000, पृष्ठ 107-108
3. सुभद्रा समग्र, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, जनवरी 2000, पृष्ठ 206
4. सुभद्रा समग्र, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, जनवरी 2000, पृष्ठ 20
5. सुभद्रा समग्र, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, जनवरी 2000, पृष्ठ 41-42

हिन्दी व्याख्याता, जवाहर नवोदय विद्यालय, सिरमौर, रीवा-486448 (म.प्र.)

क्या 'निराला' हिन्दूवादी कवि थे?

राजकुमार कुम्भज

जाने-माने कवि एवं पत्रकार। समसामयिक एवं राजनीतिक लेखन में सक्रिय भागीदारी।

यह अनायास नहीं है कि प्रखर छायावादी और मूलतः प्रगतिशील कवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' को अब से 'हिंदूवादी कवि' माना जाएगा, अब से पहले तक तो हम सभी (वामपंथी और गैर-वामपंथी) 'निराला' को प्रगतिशील ही समझते, मानते और बताते आए हैं। वह इसलिए नहीं कि 'निराला' किसी पार्टी फोरम के कवि नहीं थे। वह इसलिए कि 'निराला' अपने कवि-स्वभाव और कवि-प्रकृति से ही प्रगतिशील थे; क्योंकि प्रगतिशीलता निःसंदेह कोई वाद नहीं है। वामपंथी और गैर-वामपंथी दोनों ही विचार स्वीकार करते आए हैं कि प्रगतिशीलता कोई पंथ नहीं है। प्रगतिशीलता तो साहित्य का धरम-करम है, उसकी प्राकृत-प्रकृति है, उसका सहज-स्वभाव है। साहित्य, अपनी प्रगतिशीलता का अपना सहज स्वभाव कैसे छोड़ सकता है? प्रगतिशीलता तो साहित्य का अपना मुख्य मापदंड है, किंतु अब से 'निराला' जैसे प्रगतिशील कवि को, हिंदूवादी कवि बताने का जो सायास-प्रयास किया जा रहा है, वह जरा भी अनायास नहीं है। 'राष्ट्रवादी चेतना' को 'हिंदू राष्ट्रवादी चेतना' में रूपांतरित कर दिया जाना, न सिर्फ भ्रामक है, बल्कि एक सांस्कृतिक-कुटिलता भी है।

साहित्य के अपने मुख्य मानदंडों को छोड़कर, अन्य किसी भी किस्म के मानदंडों को

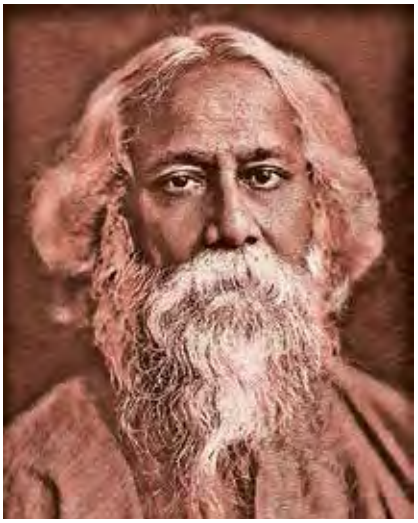

'निराला' ने जीवन भर अस्वीकृत किया है। उन्होंने किसी भी साचे को, खांचे को और घाट-पाट को, कभी भी मान्य नहीं किया। वे तो हर किसी खांचे को आजीवन खारिज ही करते रहे हैं। किंतु इधर मध्यप्रदेश भाजपा के मुखपत्र 'चरैवेति' ने 'निराला' को 'हिंदू राष्ट्रवादी चेतना के प्रखर कवि' ठहरा दिया है। भाजपा के मुखपत्र 'चरैवेति' ने इस संदर्भ में अपना जो तर्क दिया है, वह भी बड़ा मजेदार है।

'चरैवेति' के संपादक जयराम शुक्ल ने अपने संपादकीय में 'निराला' को 'राम की शक्ति पूजा' और 'महाराज शिवाजी का पत्र' जैसी लंबी कविताएं लिखने के आधार पर 'हिंदू राष्ट्रवादी चेतना के प्रखर कवि' ठहराया है। फरवरी 2015 में प्रकाशित 'चरैवेति' के संपादकीय का प्रारम्भ ही कुछ इस तरह होता है कि पढ़ने वाले का दिमाग एक ही झटके में सन्न रह जाता है। गौर कीजिए कि संपादकजी ने अपने संपादकीय का प्रारम्भ किस 'निडरता और प्रखरता' से किया है? जयराम शुक्ल लिखते हैं कि ''महाकवि सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' छायावादी दौर के सबसे ओजस्वी और तेजस्वी कवि थे। (यहाँ हैं नहीं लिखा है) जिन्होंने अपनी रचनाओं में हिंदू राष्ट्रवादी चेतना का निडरता और प्रखरता के साथ उद्घोष किया। क्या जयराम शुक्ल की ये पंक्तियां हमारे आश्चर्य का विस्तार करने के लिए अपर्याप्त हैं? क्या 'निराला' हिंदूवादी कवि थे?

गनीमत है कि 'निराला' पर भाजपा की नजर जरा देर से पड़ी। 'निराला' से पहले लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल और कविगुरु ठाकुर रवींद्रनाथ टैगोर की वसीयत पर भाजपा और आरएसएस अपनी दावेदारी पहले ही ठोक चुके हैं। यह एक स्वाभाविक सच है कि किसी भी कवि की अथवा उसकी किसी भी कविता की, कोई भी व्यक्ति, अपने स्वतंत्र दृष्टिकोण से स्वतंत्र जांच-परख कर सकता है। उसके बारे में अपना स्वतंत्र मत व्यक्त करने की स्वतंत्रता का भी वह अधिकारी है, लेकिन मनमर्जी से की गई व्याख्या चौंकाती है। सामान्यतः उसी व्याख्या और उसी अर्थ की अपेक्षा की जाती है, जिसमें अधिकतम सर्वग्राही, अधिकतम सर्वस्वीकार्य और अधिकतम सर्व समावेशी दृष्टिकोण का प्रतिपादन मिलता हो। नई नजर, नई दृष्टि

अथवा नई आलोचना-समीक्षा का भावार्थ यह नहीं हो सकता है कि 'नीर' को 'नील' साबित करने की जिद पाल बैठें।

आश्चर्य होता है कि जयराम शुक्ल ने 'राम की शक्ति पूजा' को तो निराला का अद्‌भुत काव्य करार दे दिया और 'महाराज शिवाजी का पत्र' नामक कविता को अपने मन-मतलब का औजार बना-बता दिया। वे लिखते हैं, बल्कि स्थापना देते हैं कि निराला की यह 'पत्र-गीत' रचना आज भी पाठकों को झंकृत करती है और कि जो कई मायनों में आज भी प्रासंगिक है। यही नहीं उन्होंने (शुक्लजी ने) 'निराला' की उस अतिख्यात रचना को भी अपने लपेटे में ले दिया है, जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के संदर्भ में 'जागो-फिर एक बार' की हुंकार से देश के नौजवानों में देश के लिए मर-मिटने का जज्बा पैदा करती है। जयराम शुक्ल ने 'निराला' की 'जागो फिर एक बार' कविता को 'सनातनी सांस्कृतिक गौरव' की कविता कहा है। इसी कथित सनातनी सांस्कृतिक गौरव के गर्भ से ही फिर उसी 'कथित' 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' का अवतरण होता है, जिसे भाजपा और आरएसएस पालते-पोसते हैं, सम्मानपूर्वक प्रश्रय देते हैं और नितांत अंधत्वपूर्ण अनुसरण भी करते हैं। क्या 'निराला को 'सांस्कृतिक-राष्ट्रवाद का ज्ञान और बोध, ठीक वैसा और उतना ही था, जितना और जैसा कि यहां कथित तौर पर प्रतिपादित किया जा रहा है? 'निराला' को 'हिंदूवादी कवि' घोषित करने का 'भ्रम' और 'कुचक्र' क्यों चलाया जा रहा है?

जबकि खुद 'निराला' ने और अन्य निरपेक्ष समालोचकों काव्यकारों तक ने 'निराला' के कविता-बोध को व्यापक माना है। यहां तक कि 'निराला' की कविता को किसी वाद की कविता अथवा किसी खास प्रवृत्ति की कविता मानने से पर्याप्त परहेज ही किया है। 'निराला' की कविता में किसिम-किसिम के बोध हैं, किसिम-किसिम की प्रवृत्तियां हैं और और किसिम-किसिम की जातीय-चेतना के अहसास हैं। निराला राष्ट्रवादी चेतना के कवि तो हो सकते हैं, बल्कि स्वीकारे भी गए हैं, लेकिन उन्हें 'हिंदू राष्ट्रवादी चेतना के कवि' साबित करना, क्या एक अनर्थकारी उपक्रम नहीं है? 'राम की शक्ति पूजा' कोई कर्मकांडी हिंदुत्ववादी पूजा-अर्चना नहीं है। वह तो शक्ति-अर्जन का मानवीय आख्यान है। वहां, मनुष्य की जातीय संवेदनाओं से सराबोर संकल्पों की साधना है। वह शक्ति पूजा किसी व्यक्ति-विशेष, किसी वाद-विशेष या किसी पंथ-विशेष की पूजा न होकर मनुष्य-मात्र के कल्याणार्थ मन-वचन-कर्म से किया गया अनुष्ठान है। अगर 'राम की शक्ति पूजा' को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की सीमित अवधारणा में रखकर देखा जाएगा, तो उसके वास्तविक अर्थ-तत्व को पाना कठिन हो जाएगा। 'निराला' की समग्रता को समावेशी-समग्रता से ही देखा-परखा जाना उचित होगा। निराला संकीर्णता के नहीं, बल्कि समग्रता के कवि हैं। वे, उपनिवेश के नहीं, बल्कि समावेश के कवि हैं। वे व्यग्रता के साथ, पश्चिम की गुलाम मानसिकता के खिलाफ जन-निष्ठा की राजनीतिक-चेतना के कवि हैं। 'निराला' किसी भी दृष्टिकोण से, न तो 'हिंदूवादी कवि थे और न हीं हिंदू राष्ट्रवादी चेतना' के कवि होने का कोई संकेत देते हैं। वे, कवि हैं और शायद निरे कवि हैं। 'निराला' को किसी खास गणवेश का ब्रांड एम्बेसेडर मत बनाइए, कृपया अफवाह मत फैलाइए।

पूछा जा सकता है कि सांस्कृतिक-चेतना की कल्पना क्या बिना किसी राजनीतिक-चेतना के संभव है? यह भी पूछा जा सकता है कि आधुनिक युग से पहले सांस्कृतिक-चिंतन की कौन-सी धारा या श्रेणी उपलब्ध दिखाई देती है? भारतेंदु ने राजनीति को ही आधुनिक युग का तत्व-दर्शन कहा था। निराला के जमाने में पश्चिम की गुलाम मानसिकता से मुक्ति का माहौल था। सभी समकालीन रचनाकार अपनी-अपनी निष्ठा से, जन-निष्ठा की राजनीतिक-चेतना के लिए संघर्षरत रहते हैं। निराला और निराला के समकालीन भी इतिहास के उसी एजेंडे से संघर्ष कर रहे थे, जो उनके युग के इतिहास ने उन्हें दिया था। वैश्वीकरण, आर्थिक-सुधारों, श्रम-सुधारों इत्यादि के इस युग में हम क्या कर रहे हैं? क्या यह गुलाम-मानसिकता की नई ऐतिहासिक परिभाषा नहीं है? क्या सांस्कृतिक-चुनौतियों को राजनैतिक-चुनौतियों के परिप्रेक्ष्य में रखकर बेहतर नहीं समझा जा सकता है? यह प्रश्न भी सांस्कृतिक नहीं, बल्कि राजनीतिक ही अधिक है कि कोई भी राष्ट्रवाद कैसे और किस प्रक्रिया के तहत आहिस्ता-आहिस्ता उग्र राष्ट्रवाद में तब्दील कर दिया जाता है?

एक राजनीतिक प्रक्रिया के तहत ही पहले राष्ट्रीय-प्रतीकों और प्रतीक-पुरुषों को राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना से जोड़ा जाता है। जातीय-चेतना को जगाकर भड़काया जाता है। जातीय-चेतना को ही सांस्कृतिक-चेतना बताया जाता है। इसी प्रक्रिया के तहत फिर सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रीय-चेतना को बेहद चतुराईपूर्ण तरीकों से जोड़ दिया जाता है। तत्पश्चात् खड़ा किया जाता है सांस्कृतिक-राष्ट्रवाद का छूमंतर। कुछ-कुछ इसी बीच, इसी तरह सांस्कृतिक-राष्ट्रवादी चेतना का जन्म हो जाता है। फिर धीरे-धीरे, किंतु जोर-शोर से हिंदू राष्ट्रवादी चेतना का शोर सुनाई देने लगता है। अपने उस शोर के लिए कभी भगतसिंह, तो कभी सरदार वल्लभभाई पटेल, तो कभी रवीन्द्रनाथ ठाकुर को चुन लिया है। इसी क्रम में अब सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का चयन कर लिया गया है।

किसी भी मध्यवर्ग की जड़ें अपनी परंपराओं में ही अंतर्निहित होती हैं। कथित मध्यवर्गीय राजनीतिक चेतना उन्हीं परंपराओं का अपहरण करके अपनी जड़ें जमाती हैं। तब ही राष्ट्रवाद की जगह उग्र राष्ट्रवाद ले लेता है और देखते ही देखते समूचे लोकतांत्रिक-समाज पर एकनिष्ठता के मूल्य अपना कब्जा जमा लेते हैं। याद कीजिए कि क्या इटली, जर्मनी और रूस आदि देशों में ऐसा ही नहीं हुआ था?

यह एकनिष्ठता एक सायास राजनीतिक-प्रक्रिया है, जिसकी कोख से एकाधिकारवादी शक्तियों का जन्म होता है। आश्चर्य नहीं कि हमारे देश में भी यह प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है और इस प्रक्रिया ने इस बार 'निराला' को चुन लिया है। ''बांधो न नाव इस ठांव बंधु/पूछेगा सारा गांव बंधु।'' पूछो पूछो, जरा जल्दी पूछो।

माना कि 'निराला' पर किसी का कॉपीराइट नहीं है, किंतु उनका तो बिल्कुल ही नहीं है, जो आधुनिक-काल को मध्यकाल से जोड़ते हैं। आधुनिक काल समग्रता का काल है, जबकि मध्यकाल संकीर्णताओं का। अब से तकरीबन 85 वर्ष पूर्व जब 'निराला' ने यह घोषणा की थी कि ''मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति, कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना है।'' तो 'निराला' की यह घोषणा सिर्फ एक सांस्कृतिक-साहित्यिक घोषणा मात्र नहीं थी। 'निराला' तब 'कविता की मुक्ति' के साथ ही साथ 'मनुष्यों की मुक्ति' की भी राजनीतिक घोषणा कर रहे थे। 'निराला' की इस घोषणा को संपूर्णता में देखने की जरूरत है; क्योंकि 'निराला' की इस घोषणा में 'गुलाम मानसिकता से मुक्ति' की भी घोषणा ध्वनित हो रही है। इस तरह हम देखते और पाते हैं कि 'निराला' द्वारा की गई 'कविता की मुक्ति' की घोषणा, एक राजनीतिक घोषणा है। छंदों के शासन से कविता की मुक्ति का मामला सौ वर्ष से अधिक पुराना नहीं है।

छंदों के शासन से मुक्ति के बाद ही कविता में अभिव्यक्ति की अभूतपूर्व स्वतंत्रता आई है और कविता में रोजमर्रा की जिंदगी के विषयों का विस्तार हुआ है। 'वसंत के अग्रदूत' महाकवि 'निराला' ने जब यह कहा कि ''कविता को चौखटों में मत कसो, कविता की राह में रोड़े न बिछाओ'' तो उनकी इस हिदायत ने आधुनिक हिन्दी कविता का कायाकल्प ही कर दिया। क्या 'निराला' से पहले कोई 'कुकुरमुत्ता' को विषय बनाकर कविता लिख सकता था? 'वह तोड़ती पत्थर' और 'बांधो न नाव इस ठांव बंधु/पूछेगा सारा गांव बंधु' जैसी कालजयी रचनाओं के रचनाकार को 'हिंदू राष्ट्रवादी कवि' कहना न तो न्यायसंगत है, न व्यवहारिक और न ही अर्थविस्तार देने वाला कोई व्यापक सूक्ष्म दृष्टिकोण ही। यह 'सबका साथ सबका विकास' नहीं है, यह तो 'सबके साथ सबका उपहास' का आगाज है। आज 'निराला', कल 'अज्ञेय' और फिर पता नहीं, किस-किस की बारी है। क्या ''दीप-दीप पंक्ति को दे देने की तैयारी है?''

331, जवाहर मार्ग, इन्दौर-452002

अज्ञेय का चिंतक-व्यक्तित्व

(संदर्भ-अंतःक्रियाएँ, साक्षात्कार, निबंध आदि)

डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

कवि-आलोचक एवं साहित्यिक पत्रकार। त्रैमासिक पत्रिका अभिनव प्रसंगवश का प्रकाशन-संपादन।

अशोक वाजपेयी[1] सरीखे रचनाकार, अज्ञेय की सर्जना के बुनियादी सरोकार को व्यक्तित्व की खोज और आत्मसाक्षात्कार की कोशिश के रूप में रेखांकित करते हैं। 'शेखर एक जीवनी' में अज्ञेय ने शेखर के व्यक्तित्व के केन्द्र में 'स्वातंत्र्य की खोज' को निहित माना है और पाया है कि ''वह मानवता के संचित अनुभव के प्रकाश में अपने को पहचानने की कोशिश कर रहा है।''[2]

अज्ञेय की स्पष्ट स्वीकारोक्ति 'अपने उपन्यासों में मैं स्वयं हूँ''—को ध्यान में रखें तो कहा जा सकता है कि अनुभवों के आलोक में स्वयं को पहचानने की कोशिश उनके समग्र साहित्य में केन्द्रस्थ है। उनके 'अद्यतन', 'संवत्सर', 'जोगलिखी' आदि निबंध-संग्रहों, साक्षात्कारों और 'भवंती', 'अंतरा', 'शाश्वती', 'शेषा' आदि रचनाओं में उनकी कोशिश पाठकों को उस परिदृश्य से परिचित कराना है, जिससे वे गुजरते रहे हैं। इन कृतियों में रचना-प्रक्रिया, रचनाक्रम की दिशाएँ और प्रयोजन, समाज और साहित्य के अंतर्संबंध, सत्ता का चरित्र, मूल्य और संस्कृति से जुड़े संकट, मिथक का स्वरूप आदि प्रश्न विचाराधीन हैं और इस विवेचन को अज्ञेय अपने रचना-मान के 'कंट्रोल पैनेल' या 'एंजिन रूम' के रूप में प्रसारित करते हैं। वे चाहते हैं कि पाठक

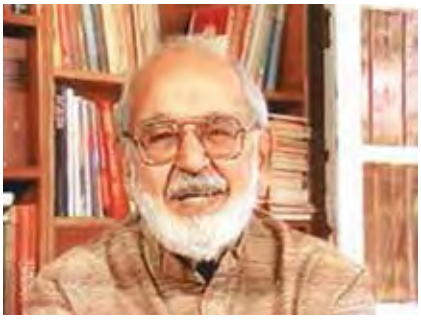

समुदाय उनके अंतरंग से जुड़े और निरंतर सम्पर्क में बना रहे। ''ऐसी अकेली यात्रा में मैं भटक न जाऊँ या पाठक समुदाय से सम्पर्क न गवाँ बैठूँ, इसके लिए आवश्यक जान पड़ता है कि जब-तब उसे आमंत्रित करके वह पूरा देश दिखा दूँ जिसमें से मैं अपनी राह खोजता रहा हूँ, वे यन्त्र-उपकरण भी दिखा दूँ, जिनका मुझे सहारा रहा है और उन यंत्रों से लक्ष्य जितना जैसा जिधर दीखता है, उसकी भी एक झाँकी उन्हें दिला दूँ।''3 जाहिर है, इन कृतियों में आत्म-पहचान से अधिक दूसरों को अपने सोच-सरोकार और सर्जना-प्रक्रिया से अवगत कराना अज्ञेय का अभिप्राय और उद्देश्य जान पड़ता है।

टी.एस. इलियट की एक स्थापना के आधार पर निर्मित अज्ञेय का एक मंतव्य बहुत चर्चित रहा है कि 'भोगने वाले व्यक्ति' और 'रचने वाली मनीषा' के बीच जितनी दूरी होगी कलाकार उतना ही बड़ा होगा। 'भवंती' में अज्ञेय स्पष्ट करते हैं दूरी लाने की प्रक्रिया ही सर्जन प्रक्रिया है। अज्ञेय इसे यंत्रणा भरी प्रक्रिया मानते हैं और एक नया प्रश्न उछाल देते हैं, ''क्या भावों से उन्मोचन ही महत्वपूर्ण है, या कि इसका भी कुछ मूल्य है कि वे भाव कितने प्रबल थे?'' भोगे हुए अर्थात् अनुभव में गोचर अनुभव को अज्ञेय स्थूल यथार्थ के अन्तर्गत रखते हैं लेकिन मात्र इसी यथार्थ को कला का यथार्थ नहीं मानते—''कला में वही यथार्थ है जिससे संबद्ध, सम्पृक्त हुआ जा सके—सम्बद्ध यथार्थ ही कला का यथार्थ है। इसलिए चेतना द्वारा नियंत्रित और शोधित ऐन्द्रियबोध आवश्यक हो जाता है। न स्थूल यथार्थ अपने आप में यथेष्ट होता है, न ऐन्द्रियबोध अपने आप में पर्याप्त आधार...।''

कई समीक्षकों ने अज्ञये को व्यक्तिवादी अन्तर्गुहावाही, आत्मसीमित, समाज निरपेक्ष रचनाकार के रूप में देखा-परखा है। उनकी टिप्पणियाँ (टीपें), आलेख, साक्षात्कार आदि प्रमाण है कि समाज और साहित्य के अन्तर्संबंधों पर अज्ञेय ने विस्तार से विचार किया है। उनकी इस विचारणा में नए ढंग से सोचने-समझने के प्रमाण मिलते हैं। 'भवन्ती' की अपनी एक टीप में उनका मानना है—''जो साहित्य या काव्य अपने समय की चिंताओं को, संदेहों को व्यक्त करता है, मूल्यों का संकट पहचान कर उन नए मूल्यों को पाने को छटपटाता है, जो इस संकट में पार बचे रह सकते हैं, वही आज का साहित्य है।'' जो स्वीकृत है, उसी को प्रतिष्ठित करने वाले रचनाकार को वे अतीतगंधी मानते हैं। अन्यत्र उनका कथन है—''कृतिकार को अगर अपने समय की अधिक खरी और सही पहचान है, तो वह बहुत दूर तक अपने पाठक

की संवेदना की भी सही पहचान रखता है।'' आत्माभिव्यक्ति को महत्वपूर्ण मानते हुए भी अज्ञेय उस तक सीमित रह जाने को कृति को बहुत छोटे संदर्भ में रखने जैसा मानते हैं। लेकिन समाज को सुधारना उनकी दृष्टि में साहित्य का लक्ष्य नहीं है। उनकी दृष्टि में पाठक को व्यापक मूल्यवत्ता का संस्पर्श देने वाला उसकी संवेदना को समृद्ध करने वाला साहित्य महत्वपूर्ण है। रघुवीर सहाय ने उनसे एक प्रश्न किया था—''साहित्य एक सिरे पर भले ही दूसरे मनुष्य को अधिक संवेदनशील बना देना ही अभीष्ट मानें लेकिन दूसरे सिरे पर उसमें अन्याय को मिटाने की इच्छा होनी चाहिए।'' अज्ञेय ने इसका सीधा उत्तर देते हुए कहा था... ''एक इकाई के साथ जो अन्याय हो रहा है, वहाँ तक पहुँचना और पहुँचाना निश्चय ही यह एक शुभ काम है और करना चाहिए।... लेकिन साहित्य अगर इसी को अपना उद्देश्य बना ले तो वह रचना-कर्म नहीं रहता।''4

कई अन्य टिप्पणियों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि अज्ञेय सामाजिक चुनौतियों-विसंगतियों की अनदेखी नहीं करते हैं लेकिन साहित्य को केवल सामाजिक बदलाव के लक्ष्य तक सीमित नहीं मानते हैं इसीलिए उनके अनेक मंतव्य जनविरोधी और अप्रगतिशील दृष्टिकोण के समझे गए हैं। वे साहित्य में एक खास किस्म की वैचारिक प्रतिबद्धता के कायल कभी नहीं रहे। लेकिन एक स्थान पर उन्होंने लिखा है—''समाज के एक सदस्य के नाते मैंने स्वतंत्रता के लिए, सामाजिक न्याय के लिए और मानव-व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के लिए'', विशालतर सामान्य उद्देश्यों की सिद्धि के प्रयत्नों के लिए आग्रह करना अपना कर्तव्य समझा है, कवि के नाते मैंने इस कर्तव्य से मुक्ति कभी नहीं चाही।'' वस्तुतः अज्ञेय की प्रारंभिक रचनाओं और वैचारिक टिप्पणियों में जो एकांतिकता और व्यक्तिवाद है, वह बाद में कम होता गया है। अज्ञेय निरंतर अपने को माँजते रहे हैं, यह जानते हुए भी कि अधिक माँजने से मुलम्मा छूट जाता है।

अज्ञेय की निराला विषयक दृष्टि स्वयं को माँजते रहने का प्रबल प्रमाण है। अज्ञेय ने विश्वभारती अक्टूबर और जनवरी 1938 के अंकों में 'आधुनिक हिन्दी कविता' शीर्षक टिप्पणी को निरस्त कर दिया था, एक पछतावे के साथ कि निराला के महत्व को वे समझ नहीं पाए थे। 'स्मृतिलेखा' में उनकी स्वीकारोक्ति है कि बनारसीदास चतुर्वेदी की निराला के प्रति पूर्वाग्रही मान्यताओं ने उनकी अपरिपक्व बुद्धि को प्रभावित किया था।5 मैथिलीशरण गुप्त को अपने युग का बड़ा कवि मानने वाले अज्ञेय ने जब निराला कृत 'तुलसीदास' पढ़ा तो उनके समक्ष जैसे एक नया संसार-सा खुल गया। 'भवन्ती' तक आते-आते निराला के महत्व के प्रति निर्भ्रांत हो जाते हैं—

''चिंतन प्रसाद ने अधिक किया। काव्य निराला का श्रेष्ठ है। शब्द का ज्ञान पंत का सबसे सूक्ष्म है।

प्रसाद पढ़ाए जाएँगे। पंत से सीखा जाएगा। निराला पढ़े जाएँगे।''[6]

इस मंतव्य को पढ़ते हुए यह बात ध्यान में आती है कि विजयदेव नारायण साही और विजयबहादुर सिंह[7] सरीखे आलोचकों ने कम से कम कवि के रूप में अज्ञेय को प्रसाद में निहित रोमांटिक एवं क्लासिक के सामंजस्य के अधिक करीब पाया है।

साहित्य से इतर विषयों पर सोचते हुए भी अज्ञेय ने अपनी आत्मसजगता और मौलिकता का प्रमाण दिया है। मंदिरों की चर्चा के प्रसंग में वे प्रश्न करते हैं—''उस समाज में क्यों बिड़ला नाम की महिमा लक्ष्मी-नारायण नाम की महिमा से ज्यादा है—वह पूरा समाज क्यों इस स्थिति को स्वीकार करता है....।'' द्रोण-एकलव्य आख्यान को लेकर उनकी जिज्ञासा है—''लोकसाहित्यों में कहीं कोई जनजातीय वाम-कर नायक है जो द्विजों से बदला लेता हो—उन्हें नीचा दिखता हो?'' तानाशाही को लेकर मनोवैज्ञानिक युग के आक्रोश-भाव को अज्ञेय ने सराहा है, लेकिन उसकी पश्चिम-पक्षधरता उन्हें प्रश्नानुकूल बनाती है, ''पर युंग उसे जब कोसता है और मानव-समाज की मुसीबतों के लिए उस प्रवृत्ति को दोषी ठहराता है, तब उसके मुकाबले—वेस्ट की वकालत करता है—यानी तानाशाही प्रवृत्ति केवल साम्यवादी राष्ट्रों में है। पर अमेरिका में क्या उस प्रवृत्ति का जोर कम है?... मुझे तो यही दीख है कि साधारण रूसी मानस आज के साधारण अमेरिकी मानस की उपेक्षा स्वस्थ है—उसमें हिंसा कम है।'' यह उस रचनाकार का कथन है—जिसे बार-बार शीतयुद्ध में अमेरिका का पक्षधर सिद्ध किया गया है। ये सभी मंतव्य अज्ञेय के सोच के विस्तार और खुलेपन के व्यंजक हैं और अज्ञेय के पुनर्पाठ में बहुत काम के हैं। 'शाश्वती' की भूमिका में अज्ञेय का कथन है—''लगातार पचास वर्ष तक लिखते रहने के बाद भी जो बचा रह जाता है—प्रश्न, चिंताएँ, संदेह, आस्थाएँ, व्याकुलताएँ, आनंद और प्रतीत की संभावनाएँ—उन सबके संकेत लेकर ही मैं पाठकों के सामने आया हूँ।'' उनकी अंतःक्रियाएँ ही नहीं निबंध और साक्षात्कार भी उनके साहित्य के आस्वादन में कहीं-न-कहीं सहायता अवश्य करते हैं।

अज्ञेय के वैचारिक गद्य की बहुत सी स्थापनाएँ आज भी चिंत्य है। ''कृतिकार का उद्देश्य या लक्ष्य केवल अनुभव का संप्रेषण है'' कलावादी दृष्टिकोण से अनुशासित वक्तव्य लगता है। इसी तरह, ''कला संघर्ष का फल है, अतः कलाकार अनिवार्य रूप से गति मात्र है''—यह अभिमत भी कुछ आलोचकों को आपत्तिजनक लगा है। उत्तर आधुनिक विचारकों ने 'प्रतिरोध' को बहुत महिमा-

मंडित किया है। डॉ. अजय तिवारी का यह मत सटीक है कि नीत्शे से प्रेरित फूको आदि सत्ता-संरचना को बदलना नहीं चाहते, केवल चुनौती देते हैं—''प्रतिरोध' ऐसा ही साधन है। वह शक्ति की वर्तमान संरचना को ध्वस्त नहीं करता, अस्त-व्यस्त करता है, ताकि उसमें नए समूहों को जगह मिल सके, इसलिए ये वर्गीय राजनीति को अपदस्थ करके सांस्कृतिक राजनीति की प्रतिष्ठा करते हैं।''8 अज्ञेय वर्गीय राजनीति के पक्षधर कभी नहीं रहे लेकिन वे प्रतिरोध के नाम पर मोल-तोल के लिए दी गई चुनौती की निरर्थकता को बहुत पहले रेखांकित कर चुके थे। उनके अनुसार— ''ये कई तरह के 'प्रोटेस्ट' वास्तव में एक लड़ाई को निजी और व्यक्तिगत फोकस देने के लिए हैं.... वे आपस में मिलकर संगठित होकर एक नया प्रति-प्रतिष्ठान पा गए हैं।''[9] उनकी कई सामान्य सी किन्तु अर्थगांभीर्य से सम्पन्न स्थापनाएँ प्रभावित करती हैं और उनके साहित्य के पुनर्पाठ और पुनर्मूल्यांकन में सहयोग करती हैं। ''मानव मूल्यों का स्रोत उसका विवेक है''—''सौन्दर्यबोध मूलतः बुद्धि का व्यापार है'', ''सच्ची कला कभी अनैतिक नहीं हो सकती'' आदि मंतव्य इस संदर्भ में विचारणीय हैं। उनके विचार-पक्ष से असहमति की भरपूर गुंजाइश है, लेकिन जैसा कि डॉ. रामचंद्र तिवारी ने इंगित किया है—''उन्होंने हिन्दी साहित्य में स्वतंत्र और गंभीर चिंतन की परम्परा को आगे बढ़ाया है।''[10] जहाँ वे एक ओर कला से अनैतिकता का कोई रिश्ता नहीं मानते हैं, वहीं वे निर्भ्रांत हैं कि आज के वैज्ञानिक समय में भी 'समाज' नैतिकता से गहरे संयुक्त है। उनके अनुसार''—नैतिकता बोध से रहित कोई समाज या संस्कृति इतिहास में टिक नहीं सकी है। यह नहीं कि अति नैतिक (नीत्यतीत) होने का दंड कोई देता है, इसलिए कि नैतिकता बोध का न होना जीवन-लक्ष्य का न होना है— और लक्ष्य रहित समाज या संस्कृति का नष्ट हो जाना ही स्वाभाविक है।''[11]

अपनी टीपों में अज्ञेय ने जहाँ अपने रचनात्मक सरोकारों को व्याख्यायित किया है, वहीं अपने रचनाकर्म और सोच-विचार पर लगाए गए आरोपों का प्रत्युत्तर भी देना चाहा है। ''रचना स्वतंत्र है, अपरिभाष्य है'' ''महान रचना हमें बदल देती है'' आदि उनकी धारणाओं से और कलाकार के स्वाधीन विवेक की वकालत करने पर व्यक्तिवादी और कलावादी होने के जो आरोप लगे, उनका उत्तर 'जोग लिखी' में इन शब्दों में दिया गया है—

''निसंदेह कला के प्रति रचनाकर्म के प्रति मेरी निष्ठा रही है और आशा करता हूँ बनी रहेगी। लेकिन मानव-जीवन मात्र के बुनियादी मूल्यों के प्रति निष्ठा और साहित्य मात्र में उसकी अभिव्यक्ति और उसका निर्वाह कैसे 'कलावाद' हो सकता है...।''[12]

अज्ञेय की अंतः-प्रतिक्रियाओं में ललित निबंध सरीखा विचार-गांभीर्य और कथन-लालित्य है। वे जिस तरह अपने काव्यालोचन में शब्द के साथ कवि के बर्ताव का विवेचन जरूरी समझते हैं और अर्थवान शब्दों के प्रयोग पर बल देते हैं[13] वैसे ही उनकी अन्तःप्रक्रियाओं और मंतव्यों में 'शब्द' के प्रति उनका अपना बर्ताव सचेत किन्तु अर्थपूर्ण है। उन्होंने बहुत सलीके से अपने 'अभिप्राय' को संप्रेषित करने का प्रयास किया है और यह प्रयास काफी हद तक सफल है।

संदर्भ संकेत–

1. फिलहाल, पृष्ठ 89
2. शेखर : एक जीवनी, भूमिका
3. भवंती, निवेदन, पृष्ठ 7
4. साहित्य अमृत, अक्टूबर 2010 से उद्धृत, पृष्ठ 92
5. स्मृतिलेखा, पृष्ठ 60-61
6. भवंती पृष्ठ 82
7. अक्षर पर्व, जून-2010, पृष्ठ 75
8. कथाक्रम, जुलाई-सितम्बर, 2012, पृष्ठ 55
9. भवंती, पृष्ठ 74
10. हिन्दी का गद्य साहित्य, पृष्ठ 803
11. अंतरा, पृष्ठ 24
12. जोगलिखी, पृष्ठ 36
13. साकल्य, जनवरी-जून, 2012, डॉ. राजेश चंद्र पांडेय का लेख, पृष्ठ 84

डी-131, रमेश विहार, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

राष्ट्रीय काव्यधारा के कवि : मैथिलीशरण गुप्त

राजेन्द्र परदेसी

वरिष्ठ लेखक राजेंद्र परदेसी पिछले तीन दशक से लेखन में सक्रिय। कई पुस्तकें प्रकाशित। संप्रति– इंजीनियर।

राष्ट्रीय काव्यधारा से तात्पर्य उस काव्य से है, जिसके माध्यम से राष्ट्रप्रेम के साथ-साथ सम्पूर्ण राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता को स्थिर रखने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। इसमें राष्ट्र विरोधी पुरातन रूढ़ियों एवं परम्पराओं के प्रति जन-जन के हृदय में जागरूकता, राष्ट्र की सामूहिक उन्नति, प्रगति एवं समृद्धि हेतु तीव्र ज्वाला प्रज्ज्वलित करने की क्षमता निहित होती है।

सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत ओजमयी रचनाएं प्रस्तुत कीं। भारतेन्दु के समय में अंग्रेजी राज्य स्थापित हो चुका था। अंग्रेज अपनी व्यापार नीति द्वारा धीरे-धीरे सम्पूर्ण भारत पर अपना अधिकार बढ़ाते जा रहे थे और यहाँ का धन हस्तगत कर इंग्लैण्ड का कोष भर रहे थे। भारतेन्दु ने अंग्रेजों की इस प्रवृत्ति के विरुद्ध देश के लोगों को सजग किया तथा अपने देश के अतीत के गौरव का गुणगान कर उनके अंदर स्वदेश, स्वराष्ट्र एवं स्वभाषा के प्रति तीव्रानुराग उत्पन्न करने का सतत् प्रयास किया। उनके समकालीन कवियों में बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी प्रेमधन, राधाचरण गोस्वामी, प्रभृति कवियों ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रप्रेम, स्वजाति हित, स्वदेश रक्षा एवं स्वराष्ट्र समृद्धि के लिए सामूहिक रूप से प्रयास करने हेतु

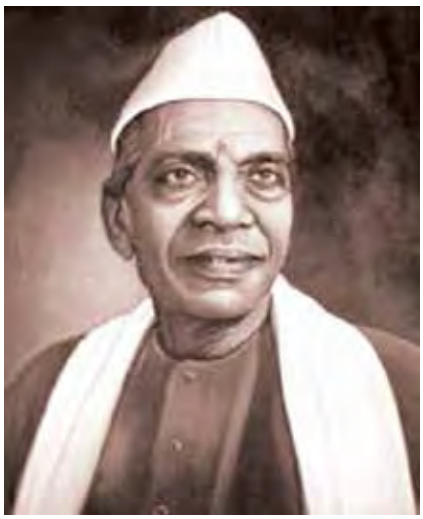

प्रोत्साहित किया।

भारतेन्दु युग की कविताओं में देशभक्ति के साथ राजभक्ति का भी स्वर प्रमुख था। जबकि द्विवेदी युग में कविता का स्वर प्रमुखतया राष्ट्रीय भावों से भर गया। साथ ही कविताओं में राष्ट्रीय चेतना अत्यधिक सशक्त एवं प्रबल रूप में दिखाई दी। इसका प्रमुख कारण स्वतंत्रता आंदोलन की तीव्रता था। इस युग के कवियों में अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, पं. रामचरित उपाध्याय, पं. नाथूराम शंकर शर्मा, पं. गया प्रसाद शुक्ल सनेही और मैथिली शरण गुप्त प्रमुख हैं।

मैथिली शरण गुप्त का जन्म उत्तर प्रदेश के झांसी जनपद के चिरगांव में 3 अगस्त, 1886 को हुआ था। इनके साहित्यिक गुरु आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी थे। उन्हीं की प्रेरणा से गुप्त जी ने सन् 1912 से लेकर मृत्युपर्यन्त राष्ट्रीय भावों की गंगा को जन-जन के जीवन में प्रवाहित करने का भगीरथ प्रयास किया। गुप्त जी ने सर्वप्रथम खड़ी बोली में 'भारत भारती' लिखकर देशवासियों का ध्यान उनकी वर्तमान दुर्दशा की ओर आकृष्ट किया और अतीत की गौरवमयी झांकी प्रस्तुत कर उन्हें पराधीनता की बेड़ी से मुक्त होने के लिए प्रोत्साहित किया।

मैथिलीशरण गुप्त ने जिस समय साहित्य सृजन आरम्भ किया, उस समय सामाजिक क्षेत्र में एक ओर राजा राममोहन राय द्वारा प्रवर्तित ब्रह्मसमाज के विचारों से आन्दोलित होकर समाज, वर्ग एवं वर्ण सम्बन्धी भेदभाव को भुलाकर एकता और समता की ओर देश अग्रसर हो रहा था। तो दूसरी ओर महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज के विचारों से आन्दोलित होकर भारतीय समाज बाल-विवाह, बहू-विवाह, अस्पृश्यता, पर्दा प्रथा, सती प्रथा, आदि कुप्रथाओं का विरोध करता हुआ शुद्धि-आन्दोलन द्वारा अस्पृश्य बंधुओं को गले लगा रहा था। साथ ही स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, महात्मा गांधी आदि महापुरुषों के विचारों से भी प्रभावित हो रहा था।

मैथिलीशरण गुप्त के साहित्य में भी युगीन सामाजिक विचार व्यक्त हुए। उन्होंने भी अनुभव किया कि समाज की प्रगति में भेदभाव की भावना व्याघात उत्पन्न कर रही है। समाज के एक वर्ग ने अपने को उच्च एवं उन्नत समझकर समाज के दूसरे वर्ग को नीच

एवं पतित कहना शुरू कर दिया। उसे समस्त अधिकारों से वंचित भी कर दिया एवं उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा को धूल में मिलाकर उसकी प्रगति एवं उन्नति के पथ को सदैव के लिए अवरुद्ध कर दिया। अतः गुप्त जी समाज के इस पतित, दलित एवं निम्नवर्ग को भी समान आदर एवं प्रतिष्ठा दिलाने के लिए पुकार उठे–

''उत्पन्न हो तुम प्रभु-पदों से
जो सभी को ध्येय है
तुम हो सहोदर सुरसरी के
चरित जिसके गेय है।''

इतना ही नहीं, गुप्त जी ने कबीर और रैदास के उदाहरण देकर समाज के निम्न वर्गों को भी श्रेष्ठ एवं महान बनने के लिए सचेत और सावधान किया तथा उत्तरोत्तर उन्नति के लिए प्रेरणा प्रदान करते हुए कहा–

''पूत कर्म कर मातृभूमि के
बनो विशेष सपूत।
छूत बुरी है अहो भाग्य है
यदि हम हुए अछूत।''

गुप्त जी यह जानते थे कि जब तक देश के सभी वर्ग एवं जातियाँ मिलकर अपनी प्रगति के लिए प्रयत्नशील नहीं होंगी, तब तक न तो हम पराधीनता के शिकंजे से मुक्त हो सकते हैं और न प्रगति ही कर सकते हैं। इसीलिए सामाजिक एकता के लिए हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख तथा हिन्दुओं के सभी वर्गों को समझाया कि वे पारस्परिक मनोमालिन्य को त्याग कर एक-दूसरे से प्रेम करें–

''हिन्दू मुसलमान सब भाई
नित नवीन जयगान उदार।
वैष्णव, बौद्ध, जैन आदिक हम
उस पर हिंसा करें कि प्यार।''

गुप्त जी ने समाज की विषमताओं को दूर करने के लिए समाज में नई क्रान्ति लाने का उद्घोष किया और सदैव सजग एवं जागरूक होकर अपनी श्रीवृद्धि में प्रेरणादायक युगानुकूल कार्यों को करने की सलाह दी–

''अपने युग को हीन समझना
आत्महीनता होगी
सजग रहो इससे दुर्बलता
और हीनता होगी
जिस युग में हम हुए, वही तो
अपने लिए बड़ा है
अहा हमारे आगे कितना
कर्मक्षेत्र पड़ा है।''

मैथिलीशरण गुप्त ने समाज में नारी की महत्ता को भी दर्शाया है, क्योंकि तत्कालीन समाज में नारी का जैसा तिरस्कार हो रहा था तथा उनके प्रति जो अनुदार दृष्टिकोण अपनाया जा रहा था उसके प्रति एक संवेदनशील कवि के रूप में आक्रोश प्रकट करते हुए अपनी भावनाओं को व्यक्त किया है–

''हाय वधू ने क्या वर विषयक
एक वासना पाई,
नहीं और कोई क्या उसका
पिता, पुत्र और भाई
नर के बांटे क्या नारी की
नग्न मूर्ति ही आई
माँ, बेटी या बहन हाय
क्या संग नहीं वह आई।''

इसके साथ ही गुप्त जी ने नारी को अपने स्वामी के कार्य में समभाग लेने वाली अर्द्धांगिनी कहकर समाज में पुरुष के समान ही उसकी प्रतिष्ठा स्थापित की–

''जिन स्वामियों के कार्य में
समभाग वो लेती न वे
अनुराग पूर्वक योग को
उसमें सदा देती न वे
तो फिर कहाती किस तरह
अर्द्धांगिनी सुकुमारियां
तात्पर्य यह अनुकूल ही थी
नरवरों से नारियां।''

गुप्त जी ने युग के धार्मिक विचारों का भली-भांति अध्ययन किया और यथोचित रूप में अपने काव्य में उन्हें प्रस्तुत कर जन-जीवन में नवीन धार्मिक क्रान्ति लाने का भी प्रयत्न किया। गुप्त जी परम वैष्णव थे और राम के अनन्य भक्त थे। परन्तु उनमें संकीर्णता नहीं थी। वे सभी धर्मों के मान्य महापुरुषों एवं अवतारों के प्रति अमित आस्था एवं विपुल विश्वास रखते थे। इसी कारण उन्होंने ''हो गया निर्गुण सगुण साकार है'' कहकर जहाँ राम का स्तवन किया है, वहीं राम के समान ही कृष्ण में अनन्य भक्ति प्रदर्शित करते हुए ''धनुर्बाण या वेणु लो श्याम रूप के संग'' कहकर दोनों की एक ही सत्ता स्वीकार की। ऐसे ही गुरुकुल की रचना कर सिक्खों के धर्मगुरुओं के प्रति श्रद्धा एवं आस्था प्रकट की है। उन्होंने 'काबा तथा कर्बला' की रचना कर मुसलमानों के धर्मगुरु मुहम्मद साहब के प्रति भी श्रद्धा एवं भक्ति प्रदर्शित की। इतना ही नहीं, मंगलघट में तो स्पष्ट स्वीकार किया है कि राम, रहीम, बुद्ध और ईसा में कोई अन्तर नहीं है। सभी एक ही ईश्वर के रूप हैं–

''राम रहीम बुद्ध-ईसा का
सुलभ एक-सा ध्यान यहाँ।''

गुप्त जी ने एक ईश्वर में अटूट श्रद्धा एवं दृढ़ विश्वास प्रकट करते हुए धर्मिक संकीर्णता को दूर करने का आग्रह किया। सभी धर्मों के महापुरुषों एवं सद्ग्रन्थों से शिक्षा ग्रहण करने का आग्रह किया। गुप्त जी के इन धार्मिक विचारों में स्पष्ट ही युगानुकूलता विद्यमान है।

मैथिलीशरण गुप्त राजनीति में अधिक सक्रिय नहीं थे। पर स्वतन्त्रता आंदोलन में सक्रियता दिखाने के कारण अप्रैल 1941 में उन्हें बंदी बना लिया गया और पहले झांसी जेल में रखा गया। फिर दो माह पश्चात् आगरा केन्द्रीय कारागार में भेज दिया गया। वहाँ से 14 नवम्बर, 1941 को उन्हें छोड़ दिया गया।

इस घटना ने गुप्त जी को राजनीति के क्षेत्र में उतरने के लिए बाध्य तो किया। परन्तु वे साहित्य के माध्यम से ही राजनीति में भाग लेते रहे। सर्वप्रथम गुप्त जी ने 'भारत-भारती' की रचना कर देशवासियों को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए सचेत एवं सावधान किया और विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने का आग्रह किया—

''शासन किसी पर जाति का
चाहे विवेक विशिष्ट हो
सम्भव नहीं है, किन्तु जो
सर्वांश में वह इष्ट हो।''

तदनन्तर गुप्त जी ने 'किसान' काव्य में किसानों में दयनीय दशा के चित्र अंकित करते हुए उनके प्रति सहानुभूति व्यक्त की और 'स्वदेश संगीत' में सत्याग्रह स्वराज की अभिलाषा, गांधी गीत, ओ बारदोली जय बोल, विचित्र संग्राम, भारत का झंडा आदि शीर्षकों के अन्तर्गत तत्कालीन राजनैतिक आन्दोलनों पर अपनी लेखनी चलाई। गांधी जी द्वारा प्रवर्तित सत्याग्रह की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा है—

''सत्याग्रह है कवच हमारा,
कर देखो कोई भी वार,
हार मानकर शत्रु स्वयं ही
यहाँ करेंगे मित्रचार।''

अंग्रेजों की दमन-नीति एवं भारतवासियों के अहिंसापूर्ण आन्दोलनों की झलक प्रस्तुत करते हुए वह कहते हैं—

''अस्थिर किया टोप वालों को
गांधी टोपी वालों ने
शस्त्र बिना संग्राम किया है,
इन माई के लालों ने
अपने निश्चय पर ये दृढ़ हैं,
मारो, पीटो, बंद करो
अजब बांकपन दिखलाया है,
इनकी सीधी चालों ने।''

यद्यपि गुप्त जी राजतंत्र को अधिक महत्व देते रहे थे, परन्तु गणतंत्र की पद्धति में भी पूर्ण विश्वास प्रकट करते हैं, वह जानते थे कि गणतंत्र पद्धति में अनेक गुण हैं, क्योंकि शासन-सूत्र कभी एक व्यक्ति के हाथ नहीं रहता और न कोई उसे अपनी पैतृक सम्पत्ति बना सकता है। अपितु आज जो मजदूर या किसान है वह भी कल सुयोग्य होकर देश का राष्ट्रपति बन सकता है—

''एक श्रमिक जो आज
भूमि ही खन सकता है
कल सुयोग्य हो वही
राष्ट्रपति बन सकता है।''

आजादी के बाद प्रजातंत्र प्रणाली में कुछ दिनों बाद अनेक दोष व्याप्त हो गए। मताधिकार प्राप्त होने के कारण लोगों में क्षुद्र स्वार्थ पनपने लगे जिसके कारण चुनाव में बार-बार सफल होकर आने से व्यक्तिगत स्वार्थ के सम्मुख राष्ट्रीय विकास का मार्ग अवरुद्ध होने लगा। स्वार्थपरता, भ्रष्टाचार तथा कुनबापरस्ती का बोलबोला हो गया। तभी तो इस चुनाव पद्धति के विरोध में वह कहते हैं—

''स्वयं श्रेष्ठ को चुन लेने में
लोक आज असमर्थ
आस-पास के स्वार्थों तक ही
लोगों के व्यापार।''

सारांश यह है कि गुप्त जी युग की विचारधारा से पूर्णतः अवगत होकर कवि कर्म में प्रवृत्त हुए दिखाई देते हैं। उनमें संकीर्णता, रूढ़िवादिता एवं मतवादिता नहीं थी। वे ज्ञान की सभी खिड़कियों को सदैव खुला रखते थे। इसीलिए उनके काव्य में युग के साथ चलने की अद्‌भुत क्षमता है। उनकी प्रशंसा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—''गुप्त जी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता है, कालानुसरण की क्षमता, अर्थात् उत्तरोत्तर बदलती हुई भावनाओं और काव्य प्रणालियों को ग्रहण करते चलने की शक्ति। यही कारण है कि गुप्त जी राष्ट्रीय काव्य धारा के सफल कवि हैं और उनके काव्य रचना में युगानुकूल उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर बढ़ने की प्रेरणा देने की अपूर्व क्षमता दृष्टिगोचर होती है।

44, शिव विहार, फरीदी नगर,
लखनऊ-226015 (उ.प्र.)

समकालीन प्रवासी हिन्दी साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि

वीरेन्द्र कुमार सिंह

कई पुरस्कारों से सम्मानित वीरेन्द्र कुमार सिंह विगत तीस वर्षों से हिन्दी साहित्य सृजन में क्रियाशील हैं। आपके अनेकानेक आलेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अलावा आप कई पुस्तकों के रचनाकार हैं। आप बिहार एवं दिल्ली के बहुत सारे साहित्यिक एवं शैक्षणिक संस्थानों से सम्बद्ध हैं।

साहित्य किसी देश तथा जाति के विकास का चिह्न है। साहित्य से उस जाति के धार्मिक विचारों, सामाजिक संगठन, ऐतिहासिक घटनाक्रम तथा राजनैतिक परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब मिलता है। भारतीय संस्कृति के मूल आधार हमारे साहित्य के अमूल्य ग्रन्थ रत्न हैं। भारतीय वाङ्मय रूप से बहने वाली विचार की आत्मा एक है जो अनेक भाषाओं, रूपों तथा परिस्थितियों में हमारे सामने आती है। प्राचीन काल में यह मध्य एशिया, तिब्बत तथा हिन्द चीन के भू-भागों में फैला था तत्पश्चात् अशोक के धर्म प्रचारक भारतीय साहित्य को यथास्थान ले गए थे। ईस्वी सन् के बाद भारतवासियों को साहसी धंधों ने औपनिवेशक विस्तार की प्रेरणा दी थी जिसके कारण वे विदेशों में जाकर बस गए। देश के बाहर बसने वालों में पहला वर्ग वह है जो तीन सौ वर्ष पूर्व मॉरीशस, ट्रिनिडाड, सूरीनाम, फीजी और गयाना आदि देशों में खेतिहर मजदूर के रूप में बसा है और दूसरा भारतीय वैज्ञानिक, विद्वान, उद्योगपति, अधिकारी और कर्मचारी हैं जो इंग्लैण्ड, अमेरिका, दक्षिणी अफ्रीका, कनाडा, मलेशिया, सिंगापुर के अलावा पड़ोसी देश पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, श्रीलंका, अफगानिस्तान, चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया और रूस जैसे देशों में विभिन्न क्षेत्रों में उन देशों के समग्र विकास में अपनी प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं। आज विदेशों में बसे भारतीय रचनाकारों का एक बहुत बड़ा प्रवासी लेखक समुदाय है जो अपनी हिन्दी भाषा के प्रति पूरी तरह आस्थावान होते हुए लगातार रचनारत है।

इंग्लैण्ड में भारतवासी वर्षों से हिन्दी साहित्य का सृजन कर रहे हैं, जिसमें एक नाम है सत्येन्द्र श्रीवास्तव का जो 1958 में लन्दन आए थे। उनके कविताओं का एक संकलन 'कुछ कहता है समय' मेरठ से सन् 2001 में प्रकाशित हुआ। इसमें 'मिसेज जोंस' शीर्षक एक उत्कृष्ट कविता है जिसमें गाँधी प्रेम और भारत की गंगा और लंदन की टेम्स नदी की धारा का समन्वय दर्शाया गया है—

''लेकिन मिसेज जोंस को
अपना देश प्रिय है
उन्हें लंदन प्रिय है
और लंदन का ईस्ट एंड प्रिय है
किन्तु उन्हें हर मेट्रोपोलिस की तरह
लंदन विवशता का शहर लगता है
कभी कभी मिसेज जोंस
बहुत भावुक होकर
अपनी काव्यमय भाषा में कहती है
और कहती जाती है
अब इस शहर का तापमान
नहीं बढ़ता घटता सूर्य की रोशनी से
किन्तु शेयर बाजारों के ग्राफों से
इस शहर का रूप
नहीं बिखरता सुबह की
ताजी हवाओं से
किन्तु पॉल्यूशन को कम
करने वाली दवाओं से।''

प्रवासी साहित्यकार कवि डॉ. कृष्ण कुमार की कविता पहली बार 'सुररेखा' में वर्ष 1994 में प्रकाशित हुई। उसके बाद 'मैं कभी मरा नहीं'—1999, 'चिंतन बना लेखनी मेरी'—2003, 'लेकिन पहले इन्सान बनें'—2005 और 'अक्षर अक्षर गीत बनें' एवं 'आरती वन्दन'—2003 में आई।

गौतम सचदेव की पुस्तक 'अधर का पुल' वर्ष 1996 में दिल्ली से प्रकाशित हुआ जिसमें एक कविता का शीर्षक है 'हिमपात'। इसमें प्रवासी जीवन की वेदना निम्न प्रकार मुखर हुई है—

''उम्र के अहसास जैसी
झर रही है बर्फ
भांप कर इस छोर से यह
उस छोर तक चला जाता पानी
यह पुल मगर जहाँ ठहरा
वहीं ठहरा हुआ है
रोक कर अध बीच मुझे
कौन कहता है—
प्रवासी भाग जाओ।''

इनका कहानी संग्रह 'अनुष्ठान' भारत के

विभाजन पर आधारित है जिसमें घटने वाले हिंसा, हत्या, संहार के साथ प्रेतों की छाया भगाने वाले सांईं पीर और उनके तंत्र-मंत्र जैसे अंधविश्वास का वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है। 'एक और आत्मसमर्पण', 'साढ़े सात दर्जन पिंजरे' एवं 'अटका हुआ पानी' उनका प्रसिद्ध कहानी संग्रह है।

हिन्दी भाषा के प्रति लगाव और प्रतिबद्धता की अभूतपूर्व मूर्ति उषा वर्मा के काव्य संग्रह 'कोई तो सुनेगा' में 'बिम्ब के आधार' शीर्षक कविता में दर्शन है, चिन्तन है। हम सब किसी के बिम्ब हैं, छवि हैं–

''मैं तुम्हारा विम्ब हूँ
तुम्हें मुँह चिढ़ाता हुआ
इस भूखण्ड पर खड़ा हुआ
और नहीं कुछ
तुम्हारा ही आईना हूँ
चाहो तो अपनी छवि सुधार लो
मैं तुम्हारे पाप पुण्य का परिणाम नहीं हूँ
न मैं बीज से उपजा हुआ फल हूँ
मैं तो तुम्हारी छवि का
एक असत्य प्रतिमान हूँ।''

चरमराती विवाह संस्था पर आधारित इनका कहानी संग्रह 'अमलिया' कहने को तो प्रेम और प्यार की दास्तान है परन्तु एक झटके में प्रेम का प्राचीर ध्वस्त हो जाना और नायिका 'अमलिया' के पति की नई शादी कथा के संवेग को प्रखर बनाती है। ब्रिटेन की हिन्दी की साहित्यिक पत्रिका 'पुरवाई' की सम्पादिका तथा हिन्दी समिति यू.के. की अध्यक्षा उषा राजे सक्सेना का जन्म उत्तर प्रदेश के गोरखपुर में हुआ था। सक्सेना जी 1967 में विदेश गयी। अपने काव्य संग्रह 'इन्द्रधनुष की तलाश में' की एक कविता 'तुम्हारी जड़ें' में अपने मूल देश की कुछेक परम्पराओं के प्रति रोष और निराशा व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है–''वट वृक्ष सी तुम्हारी जड़ें, फैलती गयी, मैं मिट्टी सी दरक गई।'' इनका प्रथम कहानी संग्रह 'प्रवास' वर्ष 2002 में प्रकाशित हुआ। वर्ष 2007 में 'वह रात और अन्य कहानियां' छपी। यह एक मार्मिक कहानी है जिसमें एक जिस्मफरोश लड़की अपने बच्चों को पालने के लिए लंदन में देह व्यापार करती है जहाँ उसकी हत्या कर दी जाती है। इसमें उसके छोटे बच्चों की बेचैनी, आशंका और भय पाठक के मन को झकझोरता है। इनकी दूसरी कहानी 'बार्किंग पार्टनर' में पाकिस्तान से इंग्लैण्ड आयी हुई एक लड़की रुखसाना की कहानी है जिसको पिता पढ़ाना नहीं चाहता है और माँ स्कूल ले जाती है। वह परिवार के इस निर्णय को स्वीकार नहीं करती है कि उसकी शादी पाकिस्तान में हो। वह लंदन वापस आती है और अर्द्धशिक्षित मंगेतर के साथ नया जीवन प्रारम्भ करती है।

प्रवासी लेखक दिव्या माथुर की पुस्तक 'अन्तः सलिला' जो जयपुर से प्रकाशित हुई है, में 'मैं और मेरा दर्द' शीर्षक एक कविता है जिसमें एक दर्द है, टीस है और विद्रोह का स्वर है–

''तन्हा खामोश बेचैन
कब्रिस्तान में भटकते
बिना कफन बदल जिसे
ओ दर्द तुझे कहाँ रखूं कहाँ
एक कब्र खोदूं
कहाँ से लाऊँ एक कफन जर्रा जर्रा
पड़ा है यहाँ
कहाँ से लाऊँ एक जिन्दा जगह।''

इनके कहानी संग्रह 'आक्रोश' की एक कहानी है 'आत्महत्या से पहले'। इसमें एक बहू भयानक परिस्थितियों से संघर्ष कर आत्महत्या से बच जाती है। इसी प्रकार दूसरी रचना 'पंगा और अन्य कहानियाँ' में 'अन्तिम तीन दिन' शीर्षक कहानी एक सम्पन्न महिला की मृत्यु चिन्तन की रोचक कहानी है। जिसमें माया अपनी शव यात्रा अंत्येष्टि तथा श्रद्धांजलि तक की कल्पना कर डालती है। तेजेन्द्र शर्मा का कथा संग्रह 'देह की कीमत' गैर कानूनी ढंग से जापान पहुँच कर काम करने की एक अप्रवासी युवक की करुण कहानी है जिसकी दुर्भाग्यवश वहाँ मृत्यु हो जाती है। दूतावास की सहायता से दिल्ली में रहने वाली उसकी पत्नी के लिए तीन लाख का चैक और मृतक का अवशेष अस्थि कलश भेजा जाता है। कादम्बरी मेहता का कहानी संग्रह 'कुछ जगह' में केक से लेकर 'रुक न सको तो रुक जाओ' तक कुल 6 रोचक कहानियाँ हैं।

उपन्यासकारों की संख्या भी ब्रिटेन में कम नहीं है। ब्रिटेन के अप्रवासी जीवन पर आधारित महेन्द्र भल्ला का उपन्यास 'दूसरी तरफ' में भारत से आए श्रमिकों के कठिन परिश्रम और त्याग की दुखद कथा है। वहीं प्रतिभा डाबर कृत 'दो चम्मच चीनी' मध्यमवर्गीय परिवार की समस्याओं से जुड़ी है। नरोत्तम पाण्डे द्वारा रचित दो उपन्यास 'बाबा की धरती' और 'जो नहीं लौटे' बिहार के भोजपुर क्षेत्र के गाँवों से आए बन्धुआ मजदूरों पर आधारित है। इसके साथ स्वर्गीय विजया नागर के उपन्यास 'रिश्तों का बन्धन', 'टूटते दायरे', 'तूफान से पहले' और 'तपस्या' का नाम उल्लेखनीय है। वहाँ के हिन्दी साहित्य में रुचि लेने वालों में वहाँ पर स्थापित उच्चायुक्त अप्पजी पंत और लक्ष्मीमल्ल सिंघवी का नाम अग्रणी श्रेणी में लिया जाता है।

हिन्द महासागर में अफ्रीका के समीप एक अंडाकार टापू है मॉरीशस। इस द्वीप ने हिन्दी साहित्य के विकास में पर्याप्त योगदान दिया है। यहाँ के विश्व प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं अभिमन्यु अनन्त जिनका ख्याति प्राप्त उपन्यास है 'लाल पसीना'। इनकी 11 से अधिक पुस्तकें भारत में छपी हैं। मॉरीशस के जाने-माने कवि हैं पूर्णानंद नेमा, जिन्होंने भारतवासियों के हृदय की धड़कन का चित्रण करते हुए लिखा है–

''मुद्दत बाद आज जब हम
आप से गले मिले हैं
तो गोया कब के
बिछड़े भाई ही मिले हैं
और अपने बेकल हृदय को
अपनी धड़कन मिल गई है
दो दो बाहों की कसावट से
भरत और मॉरीशस के बीच
जैसे आत्मीयता का पुल बंध गया।
समन्दर पार की दूरी,
पल भर में खत्म हो गई
अपनी आँखों से अपनों की
ऐसी तस्वीर मिली
जैसे सदियों के बिछड़े
आज मिल गये हों।''

यहाँ के प्रमुख साहित्यकारों में धनराज शम्भु आनन्द, धर्मानन्द, मुकेश्वराल-चिन्तामणि का नाम उल्लेखनीय है।

मॉरीशस की तरह सूरीनाम में हिन्दी कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास और निबन्ध लिखे गए हैं। यहाँ सूरजान परोही, महादेव खुन खुन, सूर्य प्रसाद वीरे जैसे रचनाकार हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में प्रयत्नशील हैं। कविवर मार्तिन हरिदत्त की 'सरनामी' कविता में भारतीयों ने सूरनीम की धरती के साथ आत्मीय रिश्ता बनाया है—

''सरनामी देवी
तू बेदाग भारतीय कली
मनोहर और आकर्षक
सरनाम उपवन को
तुम अपनी मुस्कुराहट से भरती
रमणीय तुम सरनाम दुलारी
सावित्री बनो इस देश की
धरिणी कहो नील कमला
गाता जाता है दिल रसीली तान में
जीवित रखो मुझे सरनामीदेवी
तुझे प्रणाम... प्रणाम।''

अमेरिका में डॉ. अंजना सधीर, गुलाब खण्डेलवाल, रामेश्वर अशांत, श्यामनारायण चतुर्वेदी एवं विनोद तिवारी तथा नार्वे में डॉ. सुरेशचन्द्र शुक्ल और अमित जोशी की भूमिका रेखांकित की जा सकती है। रूस में प्रसिद्ध विद्वान बरान्निकोव ने प्रेमचन्द के उपन्यास गोदान, निर्मला, गबन और रंगभूमि तथा पंत, निराला, दिनकर और बच्चन के साथ लालू लाल जी की प्रेमसागर का रूसी अनुवाद किया है। इस समय विदेशों में बड़ी मात्रा में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हैं। अमेरिका से हिन्दी जगत की 'विश्वा' एवं वैज्ञानिक पत्रिका 'विज्ञान प्रकाश' मिनियापोलिस से डॉ. कृष्ण किशोर और डॉ. नवजोत की 'अन्यथा', ब्रिटेन से 'पुरवाई', 'नागरी पत्रिका', मॉरीशस से 'विश्व हिन्दी समाचार', 'सौरभ' एवं 'बसंत' आदि पत्रिकाओं द्वारा देश के बाहर बैठे कृति रचनाकार अपनी अभिव्यक्ति की छटपटाहट को वाणी दे रहे हैं। मुंशी प्रेमचन्द के शब्दों में ''जब तक आपके पास राष्ट्रभाषा नहीं, आपका कोई राष्ट्र नहीं''।

**मकान नं.-228/8, गली नं. 9, चन्दन विहार,
ए-2 ब्लॉक, वेस्ट सन्त नगर, बुराड़ी,
दिल्ली-110084**

उच्च शिक्षा : अग्निपथ की चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ

डॉ. जंग बहादुर पाण्डेय

हिंदी-विभाग, राँची विश्वविद्यालय से संबद्ध। भोजपुरी, हिंदी, संस्कृत एवं अंग्रेजी के विद्वान।

हमारे देश के पूर्व राष्ट्रपति, दार्शनिक एवं शिक्षाविद् डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन उच्च शिक्षा की उपमा उस मशाल से दिया करते थे, जो एक हाथ से दूसरे हाथ में होती हुई पीढ़ियों से चली आ रही है। उन्होंने कहा है कि यह जलती हुई मशाल शुद्ध करने वाली अग्नि है जो परम्परा से मिलने वाले अवांछित घास-फूस को जलाकर भस्म कर देती है और नई आवश्यकताओं के योग्य मार्ग को आलोकित करती है। इस मंतव्य से उच्च शिक्षा के बारे में कई बातें उजागर होती हैं।

निश्चय ही उच्च शिक्षा का उद्देश्य वृहत्तर और बहुआयामी होता है। उच्च शिक्षा का कार्य सिर्फ प्राविधिक दृष्टि से सुयोग्य लोगों को देश और समाज की दिशा में भेजते रहना नहीं है। उच्च शिक्षा का कार्य सिद्धान्त और अनुसंधान में जुटे प्राध्यापकों और विद्यार्थियों के बीच नियमित तालमेल स्थापित करना ही नहीं है। उच्च शिक्षा से अगर एक सुन्दर समाज नहीं बनता, लोगों में स्वस्थ वैज्ञानिक दृष्टि नहीं पनपती और मनुष्य को मनुष्य बनाने का रास्ता प्रदर्शित नहीं होता, तो ऐसी उच्च शिक्षा को असफल और भटकी हुई मानना होगा। निश्चय ही उच्च शिक्षा किसी विषय के सूक्ष्म ज्ञान से मस्तिष्क को भरने और फिर नियोजन की ओर उन्मुख करने का उपक्रम नहीं है। वास्तव में उच्च शिक्षा ऐसी पद्धति है जिसका लक्ष्य अधिगम को उत्प्रेरित करना, देश को सही दिशा देना और सच्ची लोकतांत्रिक भावना विकसित करना है। मौलाना अबुल कलाम आजाद ने ठीक ही कहा था कि ''आदमी बनाने का काम हमारे देश में सब ओर फैले हुए विश्वविद्यालयों को सौंप दिया गया है। उच्च शिक्षा के यही केन्द्र भारतीय नागरिकों के निर्माण केन्द्र हैं।'' लेकिन, क्या सचमुच हमारे देश की उच्च शिक्षा वह काम कर रही है? आज की विसंगत स्थिति यह है कि आलीशान दुकानों में तब्दील होती उच्च शिक्षा पूरी तरह अर्थकेन्द्रित हो गई है।

वर्तमान समय में भारत में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से कदम बढ़ाए हैं। दुनिया में आज युवाओं की संख्या किसी भी अन्य देश के मुकाबले भारत में सबसे ज्यादा है, लेकिन इस वर्ग के लगभग 15 प्रतिशत लोगों को ही यहाँ उच्च शिक्षा नसीब है, जबकि दुनिया के सर्वाधिक आबादी वाले देश चीन तक में यह 30 प्रतिशत और उच्च एवं मध्यम वर्गों में आय वाले देशों में तो यह 30 से 50 प्रतिशत तक है। वर्तमान में देश की उच्च शिक्षा प्रणाली में 504 विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय स्तर की संस्थाएँ शामिल हैं। इनमें 243 राज्य विश्वविद्यालय, 53 राज्यों के निजी विश्वविद्यालय, 40 केन्द्रीय विश्वविद्यालय, 130 डीम्ड विश्वविद्यालय, संसद के अधिनियमों तहत स्थापित 33 राष्ट्रीय महत्व की संस्थाएँ और 5 विभिन्न राज्यों के कानूनों के अंतर्गत स्थापित संस्थाएँ शामिल हैं। इसके अलावा देश भर में 2,565 महिला महाविद्यालयों सहित 25,951 महाविद्यालय भी संचालित हैं।

1 अप्रैल, 2007 से शुरू हुई 11वीं पंचवर्षीय योजना (2007-12) के प्रारंभ से देश के उच्च शिक्षा के विकास ने कुछ गति भी पकड़ी है। इस योजना के प्रारम्भ के समय यानी कि वर्ष 2006-07 तक देश में 19 केन्द्रीय विश्वविद्यालय, 7 भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, 4 भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी संस्थान, 2 भारतीय विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान, 6 भारतीय प्रबन्धन संस्थान और एक योजना और वास्तुकला विद्यालय के अलावा केन्द्र द्वारा वित्तपोषित कुछ अन्य शिक्षण संस्थाएँ स्थापित थीं। 11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान तकनीकी और उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अनेक संस्थान स्थापित किए गए हैं। इस दौरान 13 नए केन्द्रीय विश्वविद्यालयों की स्थापना के अलावा 3 प्रान्तीय विश्वविद्यालयों को केन्द्रीय विश्वविद्यालयों में परिवर्तित किया गया है। 12वीं पंचवर्षीय योजना (2012-17) में उच्च शिक्षा पर सरकार ने विशेष ध्यान दिया है और कोशिश की है कि प्रत्येक राज्य में कम से कम 2 केन्द्रीय विश्वविद्यालय तथा 2 आई.आई.टी. और 2 आई.आई.एम. स्थापित हों।

उच्च शिक्षा के विकास के लिए भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद ने विश्वविद्यालय सेवा आयोग की स्थापना

दिल्ली में की। उच्च शिक्षा के लिए समर्पित अपनी सर्वोच्च संस्था विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के माध्यम से केन्द्र सरकार उच्च शिक्षा का स्तर निश्चित करती है, वैज्ञानिक एवं प्राविधिक शिक्षा की व्यवस्था करती है। यही संस्था शोध को प्रोत्साहित करने के लिए अनुदान देती है, केन्द्र तथा राज्य सरकारों के बीच आर्थिक सेतु के रूप में कार्य करती है। इसमें संदेह नहीं कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की मंशा उच्च शिक्षा के संदर्भ में बहुत स्पष्ट और प्रोत्साहनपूर्ण है लेकिन इस क्षेत्र में चुनौतियाँ भी कम नहीं हैं।

अनुशासनहीनता, कार्यसंस्कृति के अभाव, संबंधों में बिखराव और आर्थिक गड़बड़ियों से आज की उच्च शिक्षा बेतरह जूझ रही है। इन चुनौतियों से उबरे बिना उच्च शिक्षा को सही दिशा नहीं मिल सकती।

अनुशासनहीनता के लिए छात्र ही उत्तरदायी नहीं हैं। शिक्षकों की कमी, शिक्षकों की गैरजिम्मेदार गतिविधियाँ, शैक्षणिक वातावरण के अभाव और उत्तरआधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव के कारण अनुशासनहीनता का अनवरत विस्तार होता जा रहा है। कार्य संस्कृति के लोप का असर भी शिक्षण संस्थाओं के वातावरण में उच्च शिक्षा की अवनति का एक प्रमुख कारण है। सच्चाई तो यह है कि कार्य संस्कृति के अभाव की चुनौती देश के हर क्षेत्र में, हर कार्यालय में है। लेकिन उच्च शिक्षा में कार्य संस्कृति की कमी के कारण बहुत कुछ एक साथ टूट रहा है। उच्च शिक्षा का लक्ष्य छिन्न-भिन्न हो रहा है, शैक्षिक वातावरण विनष्ट हो रहा है, अनुशासन की भावना समाप्त हो रही है। इसलिए कार्य संस्कृति के उन्नयन की चुनौती उच्च शिक्षा के सम्मुख बहुत ही प्रबल है।

कार्य संस्कृति से ही जुड़ी दूसरी चुनौती है उच्च शिक्षा के उपयुक्त संसाधनों की कमी। सरकार ने विभिन्न कारणों और विवशताओं में उच्च शिक्षा के असंख्य केन्द्र खोल दिए। हर राज्य में आई.आई.एम., आई.आई.टी. तथा केन्द्रीय विश्वविद्यालय स्थापित हो गए। कस्बों में स्नातकोत्तर विभाग खुल गए। लेकिन क्या इन सबमें अपेक्षित संसाधन भी उपलब्ध हैं? यह सही है कि जरूरतमंदों तक विज्ञान, शोध और अध्ययन को पहुँचाना उच्च शिक्षा का उद्देश्य है, लेकिन इसके लिए अपेक्षित संसाधन भी तो चाहिए। अभी तो स्थिति यह है कि जिन कॉलेजों में प्रयोगशाला के नाम पर चंद टूटे हुए काँच हैं, जिन विभागों में दशकों से पुस्तकालय के ताले नहीं खुले हैं, जिन शिक्षण संस्थाओं में शिक्षक-छात्र के बीच केवल जातीय एवं राजनीतिक रिश्ता रह गया है—वहाँ भी उच्च शिक्षा की गतिविधियाँ सम्पन्न की जा रही हैं। इस अधोस्थिति के मूल में कार्यसंस्कृति की कमी, उत्तरदायित्व की कमी, आर्थिक गड़बड़ी और ईमानदार इच्छाशक्ति का अभाव है। उच्च शिक्षा की इन चुनौतियों के समानान्तर इस दिशा में विश्वास के साथ अग्रसर होने की जरूरत है। तभी उच्च शिक्षा का लक्ष्य पूरा होगा।

उच्च शिक्षा की चुनौतियों से जूझने के क्रम में यह सुनिश्चित करना होगा कि हमारे विकास के एजेंडा के हृदय में उच्च शिक्षा को जागरूक चमक का स्थान मिला हुआ है या नहीं? यदि ऐसा हो सका तो उच्च शिक्षा के राष्ट्रीय दायित्व को पूरा होने में देर नहीं लगेगी। तभी उच्च शिक्षा विकास के नए द्वार खोलने में पूर्णतः सक्षम होगी। हमें निराश होने की जरूरत नहीं अपितु विश्वास के साथ आगे बढ़ने की जरूरत है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है कि—

''घोर निराशा तगरा घिरा हो,
विश्वासों के दीप जलाओ।
सब कुछ टूटे टूट गिरे,
पर मत अपना विश्वास गिराओ।।
कुछ भी नहीं असंभव जग में,
सब संभव हो सकता है।
कार्य हेतु यदि कमर बांध लें,
तो सब संभव हो सकता है।।''

'तपोवन', लक्ष्मी नगर पिस्का मोड़,
रातू रोड, राँची-834005 (झारखंड)

वैश्विक हिन्दी की चुनौतियाँ

श्रीमती तारामणि पाण्डेय

श्रीमती तारामणि पाण्डेय महारानी प्रेममंजरी प्रोजेक्ट बालिका उच्च विद्यालय, रातू, राँची (झारखण्ड) में अध्यापिका और लेखन में सक्रिय।

भाषा मनुष्य द्वारा व्यवहृत होने वाली एक सामाजिक वस्तु है। मनुष्य ने सदियों की अपनी विकास यात्रा में अपनी सुविधा और प्रयोजन के लिए भाषा का स्वरूप भी लगातार विकसित और परिमार्जित किया। हर भाषा के पीछे उसकी अपनी परम्परा, संस्कृति, संवेदना और सामाजिकता होती है। हिन्दी भी अपवाद नहीं है; लेकिन आज हिन्दी भाषा की सत्ता ने अपने को राष्ट्रभाषा और राजभाषा की सीमाओं से ऊपर उठाकर विश्वभाषा के रूप में अपनी पहचान स्थिर की है। ऐसा मात्र भूमण्डलीकरण और वैश्विक ग्राम की आँधी के कारण नहीं हुआ है। ऐसा हिन्दी की सहजता और सम्पन्नता के कारण भी हुआ है।

हिन्दी भारत की सहज सम्पर्क भाषा है। संसार के अन्य कई देशों में भी हिन्दी समाज इस भाषा का व्यवहार करता है। अलग-अलग धर्मों, सांस्कृतिक आचरणों, भूखण्डों और प्रायोजनिक क्षेत्रों में हिन्दी का व्यवहार इस तथ्य के प्रमाण है कि हिन्दी ने भारतवंशियों के बीच ही नहीं, दूसरों के बीच भी अपनी सत्ता बनाई है। अंग्रेजी और स्पेनिश के बाद वही संसार की सबसे बड़ी सम्पर्क भाषा है। किसी भी एशियाई देश में हिन्दी किसी के लिए अनजानी नहीं है। सिंगापुर और हांगकांग के बाजार प्रमाणित करते हैं कि वहाँ हिन्दी की उपस्थिति निर्बाध है। खाड़ी के देशों में भी हिन्दी का पर्याप्त असर है। उन देशों का हिन्दी विस्तार तो बहुत ही व्यापक है जहाँ भारतवंशी प्रचुर मात्रा में हैं। अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिका के बहुत सारे देश भारतवंशियों से भरे हैं तथा हिन्दी में दक्ष हैं। शायद ही कोई देश हो, जहाँ कुछ हिन्दी बोलने वाले न मिल जाएँ। बहुत कम ऐसे देश हैं जहाँ हिन्दी का अध्ययन अध्यापन नहीं होता है। यह सब हिन्दी भाषा की सत्ता के विस्तार का ही परिणाम है। इस विस्तार में हिन्दी सिनेमा, रामचरितमानस और विश्व हिन्दी सम्मेलनों का अपना विशेष योगदान रहा है।

हिन्दी भाषा को सारे संसार में आम आदमी ने बनाया है, उसी ने इस भाषा को अपने व्यवहार का हिस्सा बनाया है। अपने समाज के सबसे निचले स्तर तक पहुँचने वाली यह भाषा वास्तव में गर्वगंधित करती है। यह साधारण गर्व की बात नहीं है कि हिन्दी आम आदमी की भाषा है जब भी हिन्दी को खास लोगों ने अपने हाथों में लेने का प्रयत्न किया है, किंतु इससे उसकी हानि ही हुई है। आम लोगों के समीप ही हिन्दी भाषा की वास्तविक शक्ति है। जन-जन तक हिन्दी का फैलाव है। इस कारण हिन्दी सारी दुनिया की बन गई है। आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दी के इस वैश्विक संदर्भ को सही दिशा दी जाए।

आज भूमण्डलीकरण के फलस्वरूप सारे संसार में एक बाजार-संस्कृति व्याप्त हो रही है। इस बाजार-संस्कृति ने भूमण्डलीकरण के दबाव को तीव्र किया और भाषा की अस्मिता के बारे में नए सिरे से सोचने के लिए बाध्य किया है। बाजारवाद से सभी भाषाएँ प्रभावित हो रही हैं, लेकिन हिन्दी की प्रयुक्तियों पर वैश्विक स्तर पर सीधा प्रभाव पड़ा है। स्थिति यह है कि भूमण्डलीकरण के हसीन सपने हिन्दी भाषी समाज के सामने चुनौतियों के रूप में तैर रहे हैं। गरीबी, बेकारी और भ्रष्टाचार जैसी सभी समस्याओं का अंत करने के लिए प्रचार और सूचना विस्फोट के स्तर पर एक स्वप्नलोक प्रस्तुत करने वाला भूमण्डलीकरण हिन्दी के सामने चुनौतियों का जाल बिछा चुका है। ऐसे में सांस्कृतिक अस्मिता का संरक्षण चुनौती है, व्यक्ति को उपभोक्ता में बदलने वाली मानसिकता चुनौती है, भाषाई अरुचि चुनौती है। ऐसी चुनौतियों के बीच प्रत्येक स्वाभिमानी हिन्दी प्रेमी का यह दायित्व है कि वह सही दृष्टि विकसित करे, उपभोक्ता संस्कृति की गुलामी की ओर बढ़ते हिन्दी क्षेत्र की अस्मिता को बचाने में अपेक्षित योगदान करे। अपनी भाषा को बचाना सही अर्थों में अपनी संस्कृति, अपनी अस्मिता को बचाना है। इस क्रम में महत्वपूर्ण है कि हिन्दी को वैश्विक संदर्भ में व्यापकतर जनप्रियता देने के अधुनातन प्रयास किए जाएँ।

दुर्भाग्यवश हमारी युवा पीढ़ी हमारे साहित्य को पढ़ने में हिन्दी के प्रयोग में रुचि नहीं रखती है। ऐसा संसार भर के हिन्दी प्रेमी परिवारों में लक्षित हो रहा है। भले ही इंटरनेट/अंतर्जाल के माध्यम से हिन्दी साहित्य का

नया-पुराना सब कुछ परोसा जा रहा हो और हिन्दी में अपने को अभिव्यक्त करने के सारे संसाधन उपलब्ध हों, तब भी यह चिंतनीय है कि हमारी युवा पीढ़ी में हिन्दी एवं उसके साहित्य के प्रति आकर्षण का प्रशिक्षण नगण्य है। आज की पीढ़ी के सामने आदर्श है ''सा भाषा या नियुक्तये।'' भाषा वही प्रासंगिक है जो साम्प्रत बाजार में प्रचलित है। इस धारणा के अन्तर्गत युवा पीढ़ी संसार भर की भाषाएँ सीख रही है, भूमण्डलीकरण के दौर में जहाँ सींग समाए, वहाँ घुसने की प्रक्रिया तेज है। ऐसे में हिन्दी भाषा और इसके प्रयोक्ताओं को कई नई चिंताओं और चुनौतियों से जूझना होगा।

दक्षिण अफ्रीका के जोहांसबर्ग में नवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन 22-24 सितम्बर को प्रस्तावित है। संसार के कम से कम 125 देशों में हिन्दी का अध्ययन-अध्यापन हो रहा है। संसार भर के लोग कहीं न कहीं हिन्दी सीख रहे हैं। यह सब जान-सुन कर प्रसन्नता होती है, लेकिन यह प्रसन्नता भी आत्ममुग्धता का विस्तार ही तो है। हिन्दी भाषी नई पीढ़ी हिन्दी बोलने-लिखने में संकोच करती है। संसार के किसी भी प्रतिष्ठित पुरस्कार से आज तक हिन्दी में किसी रचनाकार को सम्मानित नहीं किया गया है। वैश्विक धरातल पर सर्वाधिक बिकने वाली, सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तकों की तालिका में हिन्दी की कोई किताब कभी परिगणित नहीं हुई है। हिन्दी साहित्य के पाठक अब सिर्फ साहित्यकार, प्रधानाध्यापक और विद्यार्थी रह गए हैं। भाषा की वैश्विक प्रयुक्तियों से अभी भी हिन्दी बहुत दूर है। ऐसे में हिन्दी भाषा की पहचान को वैश्विक स्तर पर सही दिशा देने के लिए आवश्यक है कि भाषा की सत्ता को समग्रता में नए सिरे से स्थापित किया जाए।

हिन्दी भाषी समाज पहले सिर्फ भारतवासियों और भारतवंशियों का था, लेकिन आज हिन्दी का वैश्विक समाज बन चुका है। आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दी को इस वैश्विक समाज की सशक्तता का माध्यम बनाया जाए। संसार के मानचित्र पर तभी हिन्दी भाषा की अपनी वैश्विक पहचान स्थिर हो सकेगी। यह भाषा अपनी स्वाभाविक प्रकृति से ही निपट विलक्षण है। इसी वैश्विक संदर्भ में हिन्दी को स्वीकारना होगा। महाकवि गोस्वामी तुलसीदास ने अपने सुप्रसिद्ध काव्य रामचरितमानस में लिखा है कि–

''गुन अवगुन जानत सब कोई।
जो जेहि भाव नीक तेहि सोई।।''

सुप्रसिद्ध गीतकार गोपाल सिंह 'नेपाली' ने हिन्दी को भारत की बोली स्वीकार करते हुए लिखा है कि इसे अपने आप विकसित एवं पनपने देना चाहिए क्योंकि हिन्दी जन-मन की गंगा है–

''दो वर्तमान का सत्य सरल,
सुन्दर भविष्य के सपने दो
हिन्दी है भारत की बोली
तो अपने आप पनपने दो।
यह दुखड़ों का जंजाल नहीं,
लाखों मुखड़ों की भाषा है
थी अमर शहीदों की आशा,
अब जिन्दों की अभिलाषा है
सेवा है इसकी मेवा में
नयनों को कभी न झंपने दो
हिन्दी है भारत की बोली
तो अपने आप पनपने दो।

× × ×

प्रतिभा हो तो कुछ सृष्टि करो,
सदियों की बनी बिगाड़ो मत
कवि सूर बिहारी तुलसी का,
यह बिरूवा नरम उखाड़ो मत
भंडार भरो, जनमन की हर,
हलचल पुस्तक में छपने दो
हिन्दी है भारत की बोली
तो अपने आप पनपने दो।''

अंत में हम कहना चाहेंगे कि हमें हताश एवं निराश होने की आवश्यकता नहीं है। हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल है और एक दिन हिन्दी विश्व भाषा बनकर रहेगी–

''कोटि-कोटि कंठों की भाषा,
जन मन की मुखरित अभिलाषा।
हिन्दी है पहचान हमारी,
हिन्दी हम सब की परिभाषा।।''

**'तपोवन', द्वारा प्रो. डॉ. जे.बी. पाण्डेय,
लक्ष्मी नगर, पिस्का मोड, रातू रोड,
राँची-834005 (झारखण्ड)**

राष्ट्रीय चेतना के महाकवि इकबाल

दानबहादुर सिंह

सुप्रसिद्ध साहित्यकार, कवि दानबहादुर सिंह विगत चालीस वर्षों से हिंदी जगत में सक्रिय तौर पर लेखन कार्य कर रहे हैं।

मो. इकबाल एक प्रतिभाशाली कवि, दार्शनिक, गद्य लेखक, भाषा-विज्ञानी, विधिवेत्ता, राजनीतिज्ञ और आलोचक के रूप में जाने जाते हैं। वह एक असाधारण मनीषी, ओजस्वी व्यक्तित्व के धनी थे। आधुनिक भारत में उनका जन्म एक युगदृष्टा के रूप में हुआ। उनकी गणना विश्व के गिने-चुने साहित्यकारों में की जाती है। उनके बारे में यथेष्ट विवाद उठ खड़ा हुआ था कि क्या इकबाल एक कवि-दार्शनिक अथवा दार्शनिक कवि थे? उनकी कविता और दर्शन दोनों की उत्तुंग शिखर तक पहुँचे। संभवतः उनकी कविता जो कुछ भी है, एकमात्र उनके दर्शन के कारण ही और उनका दर्शन उनकी कविता के कारण ही। किन्तु यहाँ उनकी बहुमूल्य कविताएँ ही एकमात्र विचारणीय हैं।

इकबाल को समझने के लिए और उनकी प्रतिष्ठा को गहराई से जानने के लिए उनकी जीवन-यात्रा के बारे में भी जानकारी रखना प्रसंगोचित है। उनके पूर्वज कश्मीरी ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए थे। कालान्तर में धर्मान्तरण से उनके पूर्वजों ने इस्लाम धर्म कबूल कर लिया था। उनका जन्म 22 फरवरी, 1877 ई. को सियालकोट में हुआ था और उनकी मृत्यु 21 अप्रैल, 1938 ई. को हुई। यह बड़ी दिलचस्प बात है कि उनकी मातृभाषा पंजाबी थी और वह न तो उर्दू थी न फारसी ही जिसमें उन्होंने अपनी कविताओं की रचना

की। कुशाग्रबुद्धि की बदौलत अपनी शिक्षा-दीक्षा के बाद उन्होंने लाहौर के एक सरकारी कॉलेज में नौकरी कर ली। धीरे-धीरे वह महान कवि और दार्शनिक सर आर्नोल्ड के सम्पर्क में आए। वह उनके स्टाफ के ही थे। इकबाल अपने कॉलेज में एक होनहार कवि के रूप में जाने जाते थे। 1905 ई. में वह उच्च अध्ययन के लिए कैम्ब्रिज चले गए। जब तक वह यूरोप में रहे, ज्ञान-वर्धक जानकारी और धन उनके लिए सुलभ थे। उन्होंने व्यापक रूप से पढ़ाई की, उन्होंने पश्चिम के प्रख्यात् दार्शनिकों के चरणों में बैठ कर अध्ययन किया; तथापि उसी समय वह पूरब के दार्शनिकों के साथ विचार-विमर्श से भी प्रभावित थे। इकबाल ने मध्ययुगीन महान कवि और दार्शनिक जलालुद्दीन रूमी के चरणों में अपने को सौंप दिया जिसके बारे में उन्होंने लिखा है—''The spiritual guide, Rumi, the holy philosopher opened to us the secrets of life and death.'' अर्थात् एक आध्यात्मिक मार्ग-दर्शक के रूप में पुण्यात्मा दार्शनिक रूमी ने हमें जीवन और मृत्यु के रहस्यों को समझाया। एक दूसरे सुअवसर पर रूमी के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा है—''My precepter rumi turned my dust in to elixer.'' अर्थात् इन्द्रिय-दर्शन कराने वाले मेरे गुरुदेव ने मेरे दर्प अथवा अहंकार को पारसमणि में रूपान्तरित कर दिया। इन सब के अलावा, रूमी, जर्मन दार्शनिक नीत्से, फ्रान्सीसी दार्शनिक वर्गसन, दो ब्रिटिश चिन्तक—एम.सी. टैगर्ट और वार्ड ने किसी एक स्तर पर अथवा अन्य दूसरे पर कुछ सीमा तक इकबाल की दार्शनिक अवधारणा को प्रभावित किया।

इकबाल नीत्से के आदर्शों से अत्यधिक प्रभावित थे। वह वर्गसन से भी प्रभावित हुए थे जिसने समय की वास्तविकता को बरकरार रखा और प्रबुद्ध-जीवन की मूर्त यथार्थता को पहचाना। उसने एम.सी. टैगर्ट की वैयक्तिक अमरत्व की अवधारणा की प्रशंसा की। वह वार्ड की खुदा परस्ती के बहुत्ववाद से भी प्रेरित हुआ था। इस प्रकार प्राच्य दार्शनिक के प्रभाव से और अनेक आधुनिक पाश्चात्य चिन्तकों की सहायता से इकबाल ने अपनी दार्शनिक विचारधारा को विकसित किया। उनका पाश्चात्य दर्शन में अध्ययन, मुस्लिम दर्शन में अनुसन्धान-कार्य और उनकी आरम्भिक धार्मिक ट्रेनिंग ने ऐसे बीज की आपूर्ति की जिसके माध्यम से एक सुन्दर प्लांट फूला-फला। उन्होंने एक सच्चे विश्वासी, एक दार्शनिक और एक कवि के रूप में जीवन

और मृत्यु की उच्चतम और सर्वाधिक मूलभूत समस्याओं के बारे में गहराई से चिन्तन किया। इकबाल के व्यक्तित्व में प्राच्य एवँ पाश्चात्य इन दोनों संस्कृतियों का सुन्दर समन्वय था। कुछ भारतीय पाश्चात्य संस्कृति को प्राच्य संस्कृति के साथ इस सीमा तक मिला देते हैं कि इकबाल उसे बहुत पसन्द करते थे उनकी अभिरुचि कैथोलिक में थी और उसके साथ उनका मैत्रीभाव था। जीवन में उनका मुख्य अनुभूति बोध बौद्धिक और सांस्कृतिक था। किन्तु राजनीति की ओर रुझान कम था। इकबाल के जीवन में यह मुख्य रूपरेखा उनकी कविता में दार्शनिक अवधारणा को मूर्तरूप देने में पाठकों को मदद पहुँचा सकती है।

इकबाल के तमाम कार्यों का यदि गहराई से अध्ययन किया जाए तो पता चलता है कि उनकी विचारधारा भिन्न-भिन्न रूपों से हो कर गुजरी। वह भारत के राष्ट्रीय कवि के रूप में आगे बढ़े। तदुपरान्त वह इस्लाम के बैतालिक गीतकार के रूप में उभरे और अन्ततः उनका समापन एक 'मानवतावादी कवि' के रूप में हुआ। उनकी कविता में मुख्यतः तीन बातें पाई जाती हैं—(1) स्वदेशानुराग (2) इस्लामिक सम्प्रभाव (3) जीवन-दर्शन। ये तीनों ही संघटक तत्व उनकी रचनाओं में उतार-चढ़ाव के साथ संयुक्तता और गम्भीरता को लेकर उभरे। हमें उनके बारे में सावधानीपूर्वक विश्लेषण करना होगा।

समयानुरूप इकबाल एक उत्साही भारतीय कवि थे। उनके भीतर अपनी मातृभूमि के प्रति अत्यधिक सम्मान और अनुराग था। अपने जीवन के पहले दौर में उन्होंने विशुद्ध रूप से भारतीय विषयों पर रचनाएँ कीं। उनकी विशिष्ट कविताएँ तीन विषयों पर लिखी गईं—'रावी', 'हमारा देश', 'हिमालय', 'राष्ट्रीय गीत', 'नया शिवाला', 'नानक', 'स्वामी रामतीर्थ' आदि। ये प्रेरणात्मक राष्ट्रीय कविताएँ सुकुमार इकबाल के भीतर उनकी मातृभूमि के प्रति सच्चे अनुराग को दर्शाती हैं। उनकी पहले चरण की कविताएँ इकबाल की कविताओं में स्वदेशानुराग को प्रकट करती हैं। जिस पर उन्होंने उत्तरकाल में इस्लामिक स्थापत्य कला की बुनियाद डाली। ठीक उसी तरह से जैसे भारत भूमि पर ताजमहल का निर्माण हुआ। उर्दू कविता का प्रथम शीर्ष ग्रन्थ-खण्ड जिसका शीर्षक है 'हिमालय' से भारत के प्रति उनके गहरे अनुराग का साफ पता चलता है। उनकी बोलती पंक्तियाँ हैं—''ओ हिमालय, हिन्दुस्तान की जमीन की ओ मोर्चे वाली दीवार, स्वर्ग भी तुम्हारा माथा चूमने के लिए सिर झुकाता है।'' इस लम्बी कविता में वह पर्वतमाला की सबसे ऊँची चोटी सिनाय से तुलना करता है। यहूदी, ईसाई और मुस्लिम इसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। इस लंबी कविता में अब तक लिखी गई किसी भी भाषा में किसी भी कवि द्वारा लिखी गई वर्णात्मक कविताओं से सबसे सर्वोत्तम कही जा सकती है। इकबाल की यह लोकप्रिय कविता 'हमारा देश' अथवा 'तराने हिन्द' जिसमें भारत का 'राष्ट्रीयगान' होने के सभी गुण विद्यमान हैं, उनकी रचनाओं में सर्वाधिक प्रेरणादायी कविता कही जा सकती है। इस कविता ने इकबाल के सम्मान को देश भक्त कवि के रूप में स्थापित किया। निष्कर्ष रूप में उनकी कुछ उल्लेखनीय पंक्तियाँ निम्नलिखित हैं—

''सारे जहाँ से अच्छा
हिन्दोसिताँ हमारा,
हम बुलबुले हैं इसकी
यह गुलसिताँ हमारा,
गुर्बत में हों अगर हम,
रहता है दिल वतन में
समझो वहीं हमें भी
दिल हो जहाँ हमारा।
परबत वह सबसे ऊँचा,
हमसाया आसमाँ का
वह संतरी हमारा,
वह पासवाँ हमारा
मजहब नहीं सिखाता
आपस में बैर रखना
हिन्दी हैं हम वतन है
हिन्दोसिताँ हमारा।''

जहाँ-जहाँ उर्दू बोली जाती है अथवा समझी जती है, सबके लिए यह अत्युत्कृष्ट कविता सब प्रकार से भारत के प्रत्येक परिवार की कविता हो गई। इकबाल के हृदय में भारत के प्रति गहरा अनुराग था और उन्हें अपनी मातृभूमि पर गर्व था। भारतीय बच्चों के लिए उन्होंने निम्नलिखित कौमी गीत लिखा—

''चिश्ती ने जिस जमीं
पर पैगामे हक सुनाया
नानक ने जिस चमन में
वहदत का गीत गाया
तातारियों ने जिसको
अपना वतन बनाया
मेरा वतन वही है,
मेरा वतन वही है।''

यह गीत सब प्रकार से एक मौखिक साक्ष्य है कि इकबाल ने अपने हृदय की अनुभूतियों का सम्वर्धन किया और अपनी मातृभूमि के लिए श्रद्धा प्रकट की। इकबाल की कविता भारत भूमि से लिए गए प्रतीकों के साथ अतिरंजनापूर्ण है। यहाँ तक कि उन्होंने हिन्दू भक्त स्वामी रामतीर्थ और एक अन्य कविता भगवान राम पर लिखी। पहली कविता में उन्हें जीवन के रहस्य का पता चलता है जिससे पता चलता है कि उन्हें हिन्दुओं के देवी-देवता अत्यन्त प्रिय थे। उनका एक गीत दृष्टव्य है—

''इस देश में हुए हैं
हजारों मलक-सरिश्त
मशहूर जिनके दम से है
दुनिया में नामे हिन्द
है राम के वजूद पे
हिन्दोस्तान को नाज
जहले नजर समझते हैं
उसको इमामे हिन्द''

इकबाल ने एक नज्म लिखी जिसका शीर्षक है–'नया शिवाला'। इसमें उन्होंने साम्प्रदायिक समरसता पर बल दिया। साम्प्रदायिक दंगों से उन्हें घृणा हो गई थी। इसीलिए वह एक नया शिवाला बनाना चाहते थे जो प्रेम के प्रति समर्पित हो जिसमें सभी धर्मों के और समुदायों के लोग एक साथ इबादत कर सकेंगे–

''पत्थर की मूरतों में
समझा है तू खुदाहै
खाके वतन का मुझको
हर जर्रा देवता है
सूनी पड़ी हुई है
मुद्दत से दिल की बस्ती
आ एक नया शिवाला
इस देश में बना दें
हर सुबह उठ के गायें
मंतर वो मीठे-मीठे
सारे पुजारिओं को
मय प्रीत की पिला दें।''

इकबाल का साहित्य चाहे वह फारसी में है अथवा उर्दू में, दोनों की विषय-वस्तु यत्र-तत्र फैली पंक्तियों में भारत से नाना समस्याओं को दूर करने के बारे में है। ये समस्याएँ हैं– अस्पृश्यता का समापन, स्वराज्य की प्राप्ति, पूँजी और गरीबी, राजनीतिक दसता की बुराइयाँ वगैरह। इन सबको दृष्टि में रखते हुए इकबाल को भारत का देशभक्त कवि कहने में बिल्कुल न्यायसंगत कहा जा सकता है; तथापि इस बात को जोरदार शब्दों में कहा जा सकता है कि इकबाल संकीर्ण राष्ट्रीयता में कदापि विश्वास नहीं करते थे। भिन्न-भिन्न देशों के लोगों के लिए उनका प्रेम जाति, पंथ अथवा वर्ण में कोई भिन्नता नहीं स्वीकारता था। उनका दृढ़ विश्वास था कि राष्ट्रवाद की संकीर्ण अवधारणा ही विश्व मे सभी प्रकार के संघर्ष और युद्ध के लिए जिम्मेवार है। उनका विचार था कि देवी-देवताओं की एकता का अपमान करना बहुत बड़ी भूल है। इन्हीं कारणों से आज मानवजाति अनेक राष्ट्रों अथवा भागों में बँटी हुई है। किन्तु उनका अन्तर्राष्ट्रीयवाद भी भारत और भारतीय वस्तुओं के लिए हृदय से समर्पित था।

उनके काव्य-जीवन के अगले दौर में मतमतान्तर सम्बन्धी तत्वों ने इकबाल की नज्मों पर अपना प्रभुत्व कायम कर लिया था। यूरोप में उनका प्रवास और इस्लाम धर्म और दर्शन में गहरी अन्तर्दृष्टि ने उनके भीतर एक सार्वभौमिक प्राण शक्ति की प्रतीति जगा दी थी। मुस्लिम विचारधारा और संस्कृति के प्रति उनका गहन अध्ययन आदि ने उनकी नज्मों को मुस्लिम खुशबू से सुवासित कर दिया था। उन्होंने इस्लाम धर्म की भ्रातृत्व-भावना की प्राक्कल्पना की। यद्यपि मानव एकता के कार्यशील आधार के रूप में सेवा करना कोई सहज बात न थी। प्रायः उनकी सम्पूर्ण रचना-धर्मिता और विषय-वस्तु उनके काव्य-जीवन की दूसरी कालावधि तक इस्लाम धर्म के रूप रंग से आप्लावित थी। उनकी एक नज्म है– ''हम मुसलमान हैं और सारा संसार हमारा घर है।'' ("We are muslims and the whole wold is our home.") इस्लाम अपने खुले रूप में मानवता का धर्म है। कोई भी धार्मिक व्यक्ति इस सच्चाई से इन्कार नहीं कर सकता कि ईश्वर इस ब्रह्माण्ड का स्वामी है जिसे कोई भी विश्व के किसी भी भूभाग से आसानी से इबादत कर सकता है। यही तो इकबाल के काव्य-स्पंदन की सच्ची आत्मा है।

इस सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस्लाम के सूरमाओं ने उनकी कल्पना को चोट पहुँचाई। इस अवधि की उनकी कविता सामी भूमि से लिए गए प्रतीकों से पूर्णरूपेण प्रभावित है। इस्लाम धर्म के इतिहास अथवा धर्म को लेकर उनकी बाद की कविताओं में अनगिनत सन्दर्भ जुड़े हुए हैं। उनके लेखन में अरबिया शब्द बार-बार आया है। उदाहरणार्थ उनकी कुछ पंक्तियाँ देखिए–

"Colour, birth, flesh, bones
Is arabia proud of these?
Then, abjure Arabia too."

इकबाल को अपना आदर्श वैयक्तिक पूर्वानुमान के अनुसार समाज के पूर्ण विकास में मिला जिसका आरम्भिक स्वरूप अरबों के मध्यम इस्लामी समाज की अवधारणा पर टिका था। पुरानी इस्लामी परंपराओं और नियमों के लिए उनकी श्रद्धा और प्रेम इस अवधि के दौरान उनकी कविता में स्पष्टतः दिखाई देता है। इस अवधि के दौरान उनकी कविता आरम्भिक इस्लामी राज्य-व्यवस्था की ओर वैयक्तिक तीव्र आसक्ति को प्रकट करती है। उन्होंने इस्लामी विश्व की आँखों को खोल देने का अथक प्रयास किया और उस पर चलने का आग्रह भी किया। इस्लामी समाज में उन्होंने अपने आदर्शों की उपलब्धि देखी। उनके अनुसार मानव के अहंभाव की सच्ची पराकाष्ठा और वैयक्तिक तथा समाज के बीच एकमात्र सम्बन्ध केवल इस्लामी राजशासन प्रणाली के अधीन स्थापित किया जा सकता है। केवल इस्लाम धर्म के अधीन पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ वैयक्तिकता प्रदान की गई है जो कि स्वतः स्वतन्त्रता, एकता और भ्रातृभाव की सच्ची विवेकशीलता पर आधारित है। उन्होंने इस्लाम धर्म की एक अलौकिक व्याख्या का विकास किया जिसके अनुसार मानव व्यक्तित्व के विकास के लिए और सम्पूर्ण मानवता के साथ शाश्वत सह अस्तित्व की भावना को ढूँढ निकाला।

अपने काव्य-जीवन के दूसरे दौर में वह इस्लामी पुनर्जागरण के महाकवि के रूप में उभरे। उन्होंने अपने धार्मिक मनोभाव को अपने काव्य-उपहार के रूप में समर्पित किया। यही कारण था कि उन्होंने एकान्तिक रूप से अपनी कविताएँ फारसी में लिखना शुरू किया। इसे कुछ मुस्लिम देशों में मुसलमानों की सांस्कृतिक भाषा के रूप में सम्मान मिला। इकबाल ने अपने जीवन-दर्शन के सिद्धान्तों

को आत्मभाव पर आधारित किया। आदमी के पास अपने आत्मभाव और अपने सृजन के प्रयोजन को पहचानने की अपूर्व क्षमता है। यही क्षमता उसे अन्य प्राणधारियों के सर्वोच्च पर रखती है। इसलिए मानव को चाहिए कि वह अपने आत्मभाव का अध्ययन करे और उसे परिपूर्णता में रखने की भरपूर कोशिश करे। इस प्रकार खुदी अथवा आत्मभाव का सिद्धान्त ही नाना गुणों से आप्लावित एक आदर्श चरित्र आत्म साक्षात्कार के रूप में, स्वाग्रह के रूप में, प्रगल्भता के रूप में और स्वाधीन भावना के रूप में पाया गया। यही भाव आत्मश्लाघा और उत्तम आदर्शवाद तथा कर्त्तव्यशीलता में भी पाया जाता है। इकबाल के अनुसार सम्पूर्ण जीवन चरित्र में वैयक्तिकता जीवन का सर्वोच्च स्वरूप ही 'खुदी' अथवा 'आत्मभाव' है जिसमें वैयक्तिकता आत्मलीन हो जाती है। सम्पूर्ण अवरोधों को समाप्त कर आत्मभाव स्वाधीनता हासिल कर लेता है। सम्पूर्ण अवरोधों को समाप्त कर आत्मभाव हासिल कर लेता है। आत्मभाव जीवन का केन्द्र है। आत्मभाव का विकास बिना किसी आदर्श के संभव नहीं है। इस आदर्श के बाद जीवन एक अविरत क्रिया-कलाप है। प्रेम आत्मभाव से सुदृढ़ होता है। जिसका अर्थ है आत्मीकरण अथवा अवशोषण की कामना। इसका सर्वोच्च स्वरूप मूल्यों और आदर्शों तथा उन्हें चरितार्थ करने की कोशिश करना ही सृजन है। आत्मभाव अपनी अनन्यता की ओर अग्राभिमुखी हरकतों से तीन स्टेजों से होकर गुजरता है—(1) कानून का आज्ञा पालन (2) आत्म नियंत्रण अहंभाव की आत्म जाग्रति का सर्वोच्च स्वरूप और (3) ईश्वरीय प्रतिनिधित्व। ईश्वर का प्रतिनिधि धरती पर सम्पूर्ण आत्मभाव है। यदि खुदी अथवा आत्मभाव आज्ञापालन और आत्मनियंत्रण द्वारा समुचित ढंग से अनुशासित है तो उससे एक अनोखे व्यक्तित्व का विकास होता है और वही धरती पर ईश्वर का प्रतिनिधित्व करने लायक है। इकबाल के विचार से आदर्श व्यक्ति वह है जिसके पास गर्व हो, धर्मनिष्ठा हो, समर्पण भाव हो और दृढ़ कथन के साथ मौन सम्मति हो।

इकबाल उन कवियों और लेखकों की भर्त्सना करते हैं जो जीवन में सुख, शान्ति और रिटायरमेंट चाहते हैं और अतीत के ऊपर विलाप करते हैं। भविष्य के प्रति निराशा प्रकट करते हैं। ऐसे व्यक्तियों को वह प्रोत्साहित करते हैं जो अपने के पूरे दिल से सक्रिय हो कर संघर्षों से जूझते हैं। उन्होंने संघर्षशील और क्रियाशील जिन्दगी की प्रशंसा की है। उन्होंने अपनी कविता में तरक्की और अनवरत प्रयासों पर जोर दिया है। यह बात सामान्य रूप से कही जाती है कि इकबाल मानवीय समस्याओं के प्रति एक धार्मिक पहुँच रखते हैं। कविता के बारे में उनकी यह अपील केवल मुस्लिम जगत तक ही सीमित है और इस प्रकार उनके सन्देश का विस्तार प्रतिबन्धित है।

कविता इकबाल के प्रति चिरऋणी है कि उन्होंने पूरब और पश्चिम, अतीत और वर्तमान से उन विभूतियों को जो मानवात्मा के गगन में तारों की भाँति चमकते हैं और अपने अनोखे कला-कौशल से उन्हें रूपायित करते हैं और उन्हें इस रूप में व्यवस्थित कर देते हैं कि वे मानव-जाति के लिए सदैव एक प्रेरणास्त्रोत बने रहेंगे।

अन्ततः यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं है कि इकबाल की कविता अजर, अमर है। इकबाल की कविता में कुछ ऐसी खास बातें हैं कि उसे उच्चासन पर बिठाया जा सकता है। वह हर एक के हृदय को छू लेती हैं। उसके भीतर मानव तत्वों के ऐसे स्मृति-चिह्न भरे हुए हैं जो हर एक मानवात्मा को अपील करते हैं। वह मानव के भावावेगों का चित्रण करती है। वह मानव-चरित्र को रेखांकित करती है। वह मानव-संवेगों के मोहक गुणों को उजागर करती है। वह मानव-जीवन में माधुर्य और सौम्यता लाती है। वह मौलिक आधारभूत गुणों के उदाहरणों को प्रस्तुत करती है। वह मानव-प्रकृति को नैतिक प्रेरणा देती है। इकबाल की कविता न तो भारतीय है और न मुस्लिम; बल्कि उसमें तो मानव-चरित्र समाया हुआ है। उनका चिरकालिक सन्देश सम्पूर्ण मानव-जाति के नाम है और विशेष रूप से वह विकासशील पीढ़ी के लिए है। उनका सन्देश मानवता के लिए एक प्रेरणास्रोत है और उन सबके लिए जो उस कवि को पढ़ते और समझते हैं, एक प्रकाश-स्तंभ और मार्ग-दर्शन है। उसकी अपील सूक्ष्म एवं सार्वभौमिक है। ये सारी बातें उनके नाम को श्रद्धा-सुमन अर्पित करने के लिए न्यायोचित हैं। प्रकृति ऐसे प्रतिभाशाली महापुरुषों को बारंबार नहीं पैदा करती।

कोठी नं. 3/16/3, ए.जी. कॉलेज रोड, भारत भवन के पीछे, पड़रा, रीवा-486001 (म.प्र.)

‘ध्रुवस्वामिनी’ : नारी-मुक्ति की जयदुन्दुभी

डॉ. दादूराम शर्मा

सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. दादूराम शर्मा की रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं।

साहित्य अपने युग की आशा-आकांक्षाओं और आस्थाओं का सशक्त संवाहक होता है। क्रान्तदर्शी साहित्यकार ऋतुराज की भाँति साहित्य-वाटिका को प्रगति-विरोधी जड़ विचारों के निर्जीव पीत पत्रों से मुक्त कर उसे नूतन विचारों के नव पल्लवों की अरुणिमा से भर देता है। वह समाज को अधिक जनकल्याणकारी, अधिक व्यवस्थित और अधिक सुरुचिपूर्ण बनाने वाली मानसिकता या सोच के सद्यः विकसित सुमनों के सौन्दर्य और सौरभ से आकर्षक बना देता है एवं युगसापेक्ष रचनात्मक क्रियाशीलता की प्रेरणा की सरस फलवत्ता से उसे जीवन्त बना देता है। प्रौढ़ रचनाकार ‘प्रसाद’ की अन्तिम नाट्य-कृति ‘ध्रुवस्वामिनी’ नारी-मुक्ति की जयदुन्दुभी बजाती हुई आई। इसमें परम्परागत निर्जीव विचारों से मानव-मन की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया गया है। जड़ रुढ़ियों से समाज की मुक्ति का द्वार खोला गया है। नारी-पुरुष-विषयक परम्परागत अवधारणा का सशक्त प्रतिवाद कर नारी को पतिनामधारी का पुरुष की स्वेच्छाचारिता और दासता से इतिहास के आलोक में मुक्त करने का प्रबल प्रयास है एवं परम्परागत पारिवारिक मान्यताओं और मर्यादाओं का पुनर्मूल्यांकन है, जिसमें ज्येष्ठता श्रेष्ठता से ही स्वीकार्य है। औचित्य की कसौटी पर कसकर ही किसी बात को स्वीकारने का वैज्ञानिक दृष्टिकोण इसके

मूल में विद्यमान है। स्वार्थी, विलासी, मद्यप और राष्ट्र के योग-क्षेम से सर्वथा पराङ्मुख होने के कारण निर्वीय, अक्षम और अयोग्य शासक (राजा) के विरुद्ध क्रांति का आह्वान है। इसमें राष्ट्रहित सर्वोपरि है और आत्मगौरव प्राणों से भी मूल्यवान। ‘ध्रुवस्वामिनी’ में धर्म, व्यक्ति और समाज के जड़-बन्धनों से मुक्ति के पर्यायवाची के रूप में उपस्थित हुआ है।

संक्षेप में ‘प्रसाद’ ने ‘ध्रुवस्वामिनी’ में उस सामाजिक क्रान्ति का सन्धान किया है, जिसने भारतीय समाज की जड़ रुढ़ियों को दग्ध करके नवीन मान्यताओं का इतिहास रचा था।

‘ध्रुवस्वामिनी’ तेजोद्दीप्त भारतीय नारीत्व का प्रतीक है, जिसमें नवयुग की नारी-चेतना का अभिनन्दनीय समन्वय है। ‘मन्दाकिनी’ प्रसादयुगीन पराधीन भारत की समसामयिक राष्ट्रीय चेतना है, जिसका सन्धान ‘चन्द्रगुप्त’ की वीरबाला अलका में किया गया है। ‘कोमा’ भावना-प्रधान भारतीय नारी का प्रतीक है, निरपेक्ष समर्पण, प्रतीकार-विहीन करुणा और दैन्य की साकार प्रतिमा, यद्यपि वह परदाराभिलाष के कारण गौरवच्युत पुरुष के थोथे प्रणय-निवेदन को ठुकराकर नवयुग की जागरूक नारी-पंक्ति में आ विराजती है।

रामगुप्त प्रसाद के युग के उस पुरुषार्थहीन, नीतिविहीन, स्वार्थरत और पतनोन्मुखी सामन्त वर्ग का प्रतिनिधि है, जिसने बिना विरोध के अंग्रेजों के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया था और उस घृणित व्यक्तिवाद का वीभत्स विग्रह है, जिसका आधार शोषण, उत्पीड़न और अनाचार है, उच्छृंखलता जिसकी प्रकृति है और अराजकता परिणति। वह उस राष्ट्रद्रोही वर्ग का भी प्रतीक है, जो अपने क्षुद्र स्वार्थों की पूर्ति और निन्दनीय जीवन की रक्षा के लिए कुल का गौरव, समाज का हित और राष्ट्र के योग-क्षेम सब की बलि चढ़ा सकता है।

छल और प्रवंचना का पुतला शिखरस्वामी अवसरवादिता और चाटुकारिता (चमचा-गिरी) का प्रतीक है जो शीर्षस्थ व्यक्ति (शासक, वर्तमान सन्दर्भों में बॉस, चाहे वह मन्त्री हो या अफसर) की अक्षमता और दुर्बलता का पूरा-पूरा लाभ उठाकर अपनी स्वार्थसिद्धि में लगा रहा है और अन्ततः उसके पतन और सर्वनाश का कारण बनता है।

चन्द्रगुप्त एक ओर समष्टि सापेक्ष लोक-कल्याणकारी भारतीय राजतन्त्र का और दूसरी ओर भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के बलिपन्थी युवा वर्ग का प्रतिनिधि है।

नया युग सदियों से पुरुष द्वारा शोषित, पीड़ित, उपेक्षित और दलित नारी की मुक्ति और उसके पुरुषों के समान अधिकारों का स्वर्णिम विहान लेकर आया। प्राचीन भारत के स्वर्णयुग 'गुप्तकाल' के इस ऐतिहासिक आख्यान को 'प्रसाद' ने नवयुग की वाणी दी है और युगीन चेतना से उसे अनुप्राणित किया है।

नारी-विषयक परम्परागत अवधारणा—भारत में 'पातिव्रत' (पति-परायणता या पति की अनुकूलता) को ही नारी का परम धर्म स्वीकारा गया। उसे पुरुष की 'अर्द्धांगिनी' कहा गया, 'सहधर्मिणी' और 'सहचारिणी' की संज्ञा दी गई। पति से पृथक् न तो उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व माना गया और न ही व्यक्तित्व। 'रामायण' और 'महाभारत' की नारी दैन्यविजड़ित करुणा की प्रतिमूर्ति है। यद्यपि उसमें तेजोद्दीप्त प्रखरता के भी दर्शन होते हैं, किन्तु परम्परा, लोकमान्यता एवं धार्मिक विधान उसे विवश और पंगु बना देते हैं। अन्ततः वह पुरुषत्व के महानद में अपने व्यक्तित्व के क्षीण स्त्रोत को विसर्जित कर अपने जीवन को सार्थक मान लेती है।

चौदह वर्ष के लिए निर्वासित वनवासी राम की सेवा के लिए सहधर्मिणी सीता ने स्वेच्छा से वन के अपार कष्टों को सहर्ष अंगीकार किया था। किन्तु लंका में उसके सतीत्व की अग्नि-परीक्षा के प्रत्यक्षदर्शी होने पर भी राजा राम उनके विरुद्ध जनता में व्याप्त लोकोपवाद का प्रतिवाद नहीं कर पाये और दोहदपूर्त्ति के बहाने उन्होंने सीता का परित्याग कर उन्हें जंगल में भेज दिया।

वाल्मीकि की सीता ने अपने परित्याग को पूर्वजन्म के पापकर्मों का प्रतिफल, अपना दुर्भाग्य और नियति का विधान मानकर शिरोधार्य कर लिया। उन्हें असह्य-सन्ताप और शोक तो हुआ, किन्तु क्षोभ नहीं। उन्होंने निर्वासित होकर लोकापवाद का परिमार्जन करना अपना कर्त्तव्य मान लिया और अपनी स्तुत्य क्षमाशीलता और उदाराशयता का परिचय देते हुए लक्ष्मण के द्वारा राजा राम को सन्देश भेजा कि वे लोकापवादरत नागरिकों से भी अपने सगे भाइयों जैसा व्यवहार करें—''यथा भ्रातृषु वर्तेथास्तथा पौरेषु नित्यदा'' (वा.रा., 7/48/15) और अन्त में उन्होंने तत्कालीन परम्परागत सामाजिक-धार्मिक अवधारणा को रेखांकित करते हुए कहा—

''पतिर्हि देवता नार्यः, पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्य विशेषतः।''

(पति ही नारी का देवता, बन्धु (हितैषी) और गुरु (मार्गदर्शक) है, इसलिए उसे अपने प्राणों की बाजी लगा कर भी पति का विशेष रूप से प्रिय करना चाहिए।)

'रामायण' भारत के सामाजिक-धार्मिक आदर्शों के उत्थान की गौरव गाथा है, तो 'महाभारत' आदर्शों के अवसान और जीवन मूल्यों के विघटन की करुण कथा! वीर्यशुल्का स्वयंवरा द्रौपदी अर्जुन की होकर भी सम्पत्ति की भाँति पाँचों भाईयों में बाँट दी जाती है। आगे चलकर द्यूत-दुर्व्यसनी युधिष्ठिर अन्य वस्तुओं की तरह उसे भी दाँव पर लगाकर हार जाता है और भरी सभा में दुःशील दुःशासन द्वारा उसे निर्वस्त्र की जाती देखकर भी चुपचाप बैठा रहता है। एक पत्नीव्रती एवं अनन्यानुरागी राम की सदाशयता से सुपरिचित सीता अपने लोकापवाद-जन्य परित्याग के गरल को उफ किये बिना पी गई थी, किन्तु द्रोपदी नारीत्व की इस घोर अवमानना को भला कैसे सहती? ''पतिर्हि देवता नार्यः' की मान्यता की चूलें हिल गईं। बहुपत्नीत्व के समर्थक भारतीय समाज ने 'बहुपतित्व' के विधान को सवीकार नहीं किया, 'द्यूत' को सात महापापों में प्रथम स्थान दिया और पत्नी को दाँव पर लगाने की किसी ऐतिहासिक घटना की पुनरावृत्ति नहीं हुई।

पति द्वारा त्यागी जाने पर वाल्मीकि की सीता शोकविह्वल हो उठी थीं, किन्तु उन्होंने राम के विरुद्ध कोई आक्षेप-वाक्य नहीं कहा जबकि कालिदास की सीता अपने परित्याग को केवल पूर्वकृत पापों का प्रतिफल, दैवदुर्विपाक और नियति का विधान मानकर चुपचाप स्वीकार न कर सकी। लक्ष्मण द्वारा राम को भेजे गये सन्देश में उनका क्षोभ निम्नांकित शब्दों में फूट पड़ा—

''वाच्यस्त्वया मद् वचनात् स
राजा बहूनौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
यो मां लोकवादश्रवणादहासीः
श्रुतस्य किं तत्सदृशं कुलस्य?''

—रघुवंश, 14/61

''राजा प्रधान न्यायाधीश होता है। न्याय का आधार है प्रत्यक्षदर्शी का साक्ष्य। जनश्रुति या अफवाह के आधार पर न्याय नहीं किया जाता। आप स्वयं मेरी अग्नि-परीक्षा के प्रत्यक्षदर्शी थे, तब अफवाहों के आधार पर मुझ निरपराध को दण्डित करना क्या आप जैसे न्यायप्रिय राजा के लिए उचित है? प्रजारंजन यदि राजा का कर्त्तव्य है और मेरा परित्याग करके लोकापवादरत प्रजाजनों के रंजन (प्रसन्नता या परितोष) का आपने प्रयास किया है, तो क्या मेरा आपके राज्य में कोई स्थान नहीं? रानी न सही, क्या मैं एक सामान्य प्रजा भी नहीं, आपके राज्य में न्याय पाने का क्या मुझे कोई अधिकार ही नहीं? क्या मेरी रक्षा और भलाई का आप पर कोई उत्तरदायित्व नहीं? दिलीप जैसे दयावीर, रघु जैसे दानवीर, अज जैसे प्रियानुरागी और महाराज दशरथ जैसे पत्नी-पुत्र-प्रेमी राजाओं के कुल में आपका यह पत्नी त्याग क्या कुल परम्परा के अनुरूप है?''

'अभिज्ञान शाकुन्तल' (5/22) में शकुन्तला ने उसे पहचानने से भी इन्कार करने वाले अपने लम्पट पति राजा दुष्यन्त की राजसभा में ही तीव्र भर्त्सना की—''अनार्य! आत्मनो हृदयानुभानेन पश्यसि को नाम अन्यो धर्मकंचुकव्यपदेशिनस्तृण्च्छन्नकू-पोपमस्य तनानुकृतिं प्रतिपत्स्यते?'' ''अनार्य! तू सबको अपने जैसा कपटी और धोखेबाज समझता है! तिनकों से ढँके कुएँ की तरह, धर्म के मिथ्या आडम्बर से ढँका, अपना स्वरूप प्रकट कर रहे हो?''

हिन्दी के कवियों में राष्ट्रकवि गुप्त की शूर्पणखा का यह आक्षेप भी कम तीखा नहीं—''नरकृत शास्त्रों के सब बन्धन हैं नारी को ही लेकर, अपने लिए सभी सुविधाएँ पहले ही कर बैठे नर!'' (पंचवटी)

'ध्रुवस्वामिनी' और नवयुग की नारी-चेतना—वैदिक युगीन भारतीय नारी का स्वतन्त्र अस्तित्व और व्यक्तित्व था। पुरुष की तरह उसे भी ज्ञान (ब्रह्म) और कर्म की उपासना का पूरा अधिकार था। रामायण-काल में वह पुरुष की 'सहचारिणी' बनकर पारिवारिक संरचना और समाजोत्थान में पुरुष के समानान्तर अपनी महत्वपूर्ण सक्रिय भूमिका निभाती है। किन्तु पौराणिक युग और महाभारत काल तक आते-आते समाज पुरुष प्रधान हो जाता है और नारी पुरुष की 'अर्द्धांगिनी' और 'अनुचरी' बनकर रह जाती है। स्त्री के लिए प्रयुक्त 'कलत्रम्' शब्द का नपुंसक लिंग उसकी व्यक्तिसत्ता या प्राणिसत्ता को नकार कर उसे निर्जीव और जड़ वस्तु की श्रेणी में रख देता है। युधिष्ठिर ने 'वस्तु' समझकर ही द्रोपदी को दाँव पर लगाया था।

सातवीं शती में हम नारी-चेतना में एक बड़ा आत्मविश्वास देखते हैं, जिसका उदाहरण सम्राट हर्ष की बहन राज्यश्री है। वह अपनी माँ की तरह चितारोहण नहीं करती, बल्कि अपने बड़े भाई के साथ कन्नौज राज्य का संचालन करती है। उसी काल के कवि वाण ने अपने कादम्बरी कथा-ग्रन्थ में मृत पति के अनुगमन करने को मूर्खतापूर्ण बताया है और सती-प्रथा का कटु शब्दों में विरोध किया है, जो एक नई लहर है।

नवीं शताब्दी के बाद बुरके में बन्द नारी के साथ इस्लामी सभ्यता ने भारत में प्रवेश किया और 'सामन्ती युग' (जिसे साहित्य में 'रीतिकाल' या 'श्रृंगारकाल' के नाम से जाना जाता है) के आते-आते नारी मात्र 'भोग्या' या विलास का साधन बनकर रह गई। पुरुष उसमें सूत्राधार बन बैठा और नारी उसकी कठपुतली!

19वीं शती में विज्ञान ने विश्व के देशों की दूरी घटाकर उन्हें पारस्परिक सम्पर्क-सूत्र में जोड़ा। इटली के रेनेसां आन्दोलन की कुक्षि से पुनरुत्थानवाद, मानववाद और मानवतावाद ने जन्म लिया। मानवमात्र में समानता की स्वस्थ मानसिकता का सार्व-देशिक प्रसार हुआ, जिससे वर्गभेद, रंगभेद, वर्णभेद और लिंगभेद की बुनियादें हिल गईं। भारत में राजा राममोहन राय, महर्षि दयानन्द सरस्वती, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, श्रीमती एनीबेसेण्ट और स्वामी विवेकानन्द जैसे समाज-सुधारकों ने नारी-मुक्ति-आन्दोलन को अभिनव दिशा और नवीन शक्ति दी। फलतः बीसवीं शती में राष्ट्रपिता का ममत्वमय संबल पाकर भारतीय नारी-जाति के समस्त जड़-बन्धनों को तोड़कर पुरुष के समान स्वाधीनता आंदोलन की सजग-सशक्त सेनानी बन गई। प्रसाद-वाङ्मय में हमें नारी के इसी भव्य, दिव्य और तेजोमय रूप के दर्शन होते हैं। 'ध्रुवस्वामिनी' द्वारा नारी के पुरुष की पशुसम्पत्ति होने से इन्कार करने में सामाजिक रूढ़ियों के प्रति जो प्रबल विद्रोह है, वह नवयुग की नारी चेतना का ही ज्वलन्त उदाहरण है—''मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु-सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का जो अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा—नारी का गौरव—नहीं बचा सकते तो मुझे बेच भी नहीं सकते।'' (पृष्ठ 26)

कोमलांगी नारी ने पुरुष को अपना सर्वस्व समर्पण इस अपेक्षा के साथ किया था कि वह पर-पुरुषों से उसके शील की रक्षा करेगा, किन्तु जब कापुरुष पति द्वारा उसका यह मोह भंग होता है और वह स्वयं ही उसे परपुरुष की पर्यकशायिनी बनाने के लिए प्रस्तुत हो जाता है, तब नवयुग के आलोक में उसका तेजोद्दीप्त नारीत्व 'ध्रुवस्वामिनी' के शब्दों में अपनी सम्पूर्ण शक्ति से धधक उठता है—

''निर्लज्ज, मद्यप, क्लीव! ओह! तो मेरा कोई रक्षक नहीं (ठहरकर), नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी। मैं उपहार देने की वस्तु, शीतल मणि नहीं हूँ। मुझमें रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्मसम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।'' (पृष्ठ 27)

'ध्रुवस्वामिनी' यदि नारी की व्यष्टि चेतना है, जो नारीमात्र के उद्धार के लिए संघर्षरत है, तो 'मन्दाकिनी' समष्टि चेतना है, उद्दाम उत्साह, दृढ़ निश्चय और प्रतिहत शक्ति से मण्डित प्रसादयुगीन पराधीन भारत की ऊर्जस्वित राष्ट्रीय चेतना है—''एक बार अन्तिम बल से परीक्षा कर देखो। बचोगे तो राष्ट्र और सम्मान भी बचेगा, नहीं तो सर्वनाश।'' (पृष्ठ 30)

उसका स्वर तत्कालीन राष्ट्रीय जागरण का शंखनाद है—

''विचलित हो अचल न मौन रहे,
निष्ठुर श्रृंगार उरता हो,
क्रंदन-कंपन न पुकार बने,
निज साहस पर निर्भरता हो!
अपनी ज्वाला को आप पिए,

नव नीलकंठ की छाप लिए,
विश्राम-शांति को शाप दिए,
ऊपर ऊँचे सब झेल चले।।''

-(पृष्ठ 33)

अनुराग की प्रतिमूर्ति 'कोमा' विश्वशान्ति और विश्वमैत्री की सन्देशवाहिका है। पुरुष की हिंसावृत्ति, अवांछनीय अहंकार और विध्वंसक महत्वाकांक्षा का वह सशक्त प्रतिवाद करती है। उसके 'प्रकृति की ओर प्रत्यावर्त्तन' के इस स्वच्छन्दतावादी चिन्तन में विश्वशान्ति, मैत्री और सौमनस्य का सन्देश है—''सब जैसे रक्त के प्यासे-प्राण लेने और देने में पागल! वसन्त का उदास और अलस पवन आता है, चला जाता है। कोई उसके स्पर्श से परिचित नहीं। ऐसा जीवन तो वास्तविक नहीं।'' (पृष्ठ 34) शकराज को दिया गया उसका यह परामर्श विश्व में संघर्ष-समाप्ति का एकमात्र उपाय है—''संसार के नियम के अनुसार आप अपने से महान् के सम्मुख थोड़ा-सा विनीत बनकर उस उपद्रव से अलग रह सकते थे!'' तथा, ''अभावमयी लघुता में मनुष्य अपने को महत्वपूर्ण दिखाने का अभिनय न करे तो क्या अच्छा नहीं है।'' (पृष्ठ 35)

पुरुष द्वारा वैयक्तिक या राजनीतिक प्रतिशोध के बहाने परनारी के उत्पीड़न का भी वह प्रबल विरोध करती है—''किन्तु राजनीति का प्रतिशोध क्या नारी को कुचले बिना नहीं हो सकता।'' (पृष्ठ 35)

'कोमा' नारी जाति की प्रतिनिधि है जो पुरुष से निश्छल प्रेम की अपेक्षा रखती है। पुरुष की परकलत्राभिलाषा उसे पसन्द नहीं। वह तो चारित्रिक उदात्तता, दृढ़ संकल्प-शक्ति और अपराजेय पौरुष उद्भाषित पुरुष को ही अपना अनुराग अर्पित करती है—''राजा, मैं तुम्हें प्यार नहीं करती। मैं तो दर्प से दीप्त तुम्हारी महत्वमयी पुरुषमूर्ति की पुजारिन थी, जिसमें पृथ्वी पर अपने पैरों से खड़े रहने की दृढ़ता थी। इस स्वार्थमलिन कलुष से भरी मूर्ति से मेरा परिचय नहीं!''

नारी और विवाह तथा पुनर्विवाह—नर-नारी में समान रूप से विद्यमान काम की मूल प्रवृत्ति के संयमन, नियमन और संस्कार का सामाजिक विधान ही विवाद है, जिसमें दोनों के परस्पर समर्पणशील साहचर्य का अनुमोदन और स्वीकृति होती है जिसे धर्म, अग्नि और समाज के साक्ष्य में ग्रंथिबन्धन द्वारा अविच्छेद्य बना देता है। दोनों की स्वतन्त्रता बाधित हो जाती है और दोनों एक-दूसरे की अनुकूलता के लिए प्रतिबद्ध हो जाते हैं, तथापि भारत का सांस्कृतिक इतिहास इस बात का साक्षी है कि पुरुष ने पति रूप में एक ही नारी के प्रति प्रतिबद्धता को प्रायः स्वीकार नहीं किया है। युद्धादि की दृष्टि से जनसंगठन और जनशक्ति-विस्तार के अनिवार्य महत्व ने तत्कालीन राजाओं के लिए 'बहुपत्नी-विधान' बनाया। सामान्य नागरिक पहली पत्नी के मर जाने अथवा बन्ध्या, नश्यत्प्रसूति या कन्या-प्रसविनी होने पर ही दूसरा विवाह कर सकता है, यद्यपि उसके शौकिया पुनर्विवाह पर भी कोई कड़ी पाबंदी नहीं थी।

नारी के लिए मनु ने व्यवस्था दी कि पति चाहे जैसा हो, वह उसे 'देवता' के समान पूजे—

''विशीलः कामवृत्तो दा गुणैर्वा परिवर्जितः।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत् पतिः।।''

—(मनुस्मृति, 5/154)

निश्चय ही यह नारी जाति पर 'पातिव्रत' को बलपूर्वक थोपना था।

विशिष्ट नारी (रानी) को पिता ('अभिज्ञानशाकुन्तल' के कण्व) सपन्तीत्व को सहर्ष स्वीकारने और सदैव पति के अनुकूल रहने की सीख देता है—

''शुश्रूषस्व गुरून् कुरु
प्रियसखी सपत्नीजने
भर्जुर्विप्रकृतापि रोषणतया
मा स्म प्रतीपं गमः।।''

—(शाकुन्तल, 4/20)

अज और राम का 'एक पत्नीव्रत' और उत्कृष्ट प्रियानुराग आदर्श तो माना गया, किन्तु विधान का रूप न ले पाया। शास्त्रों ने धर्मविवाह के बहाने नारी को पुरुष की दासता की बेड़ियों में जकड़ दिया। अत्याचारी, दुराचारी और परकलत्रकामुक पति से भी विवाह-विच्छेद (विवाहमोक्ष—क्पअवतबम या तलाक) करके पुनर्विवाह करने की उच्च वर्णोत्पन्न नारी को अनुमति नहीं दी गई—''अमोक्षो हि धर्मविवाहानाम्''।

महर्षि पराशर ने पति के लापता हो जाने, मर जाने, संन्यासी या भिक्षु बन जाने, नपुंसक होने अथवा आचार-भ्रष्ट (पतित) हो जाने की पाँच स्थितियों में ही विवाह-विच्छेद की अनुमति दी है—

''नष्टे, मृते प्रव्रजिते,
क्लीवे च पतिते पतौ
पंचास्ववस्थासु नारीणां
पतिरन्यो विधीयते।।''

—(पराशरस्मृति)

और कौटिल्य ने भी त्याज्य पति के दो और प्रकारों—(1) राजद्रोह के कारण देश-निष्कासित और (2) पत्नी के प्राणों के प्यासे—को जोड़ कर इसका अनुमोदन किया है—

''नीचत्वं परदेशं वा
प्रस्थितो राजकिल्विषी,
प्राणाभिहंता पतिस्त्याज्यः
क्लीवोऽपि वा पतिस्ततथा।।''

—(अर्थशास्त्र)

उक्त शास्त्रीय विधानों का उपयोग करते हुए 'प्रसाद' ने संस्कृत के सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटककार विशाखदत्त के अप्राप्त ऐतिहासिक नाटक 'देवीचन्द्रगुप्त' के नाट्यदर्पण, शृंगार प्रकाश आदि ग्रन्थों में उद्धृत अंशों एवं 12वीं

शती के इतिहासकार अबुलहसन अली में मुजमलुत तवारीख में उल्लिखित 'वर्कमारीश' (विक्रमादित्य) के जीवनवृत्त के आधार पर 'ध्रुवस्वामिनी' की दिग्विजयाभियान में चन्द्रगुप्त को प्राप्ति, अग्रज रामगुप्त द्वारा छल से उसके साथ विवाह, रामगुप्त से उसका 'मोक्ष' और चन्द्रगुप्त से पुनर्लग्न की कथावस्तु का ताना-बाना बुना है। उनके गहन इतिहासबोध, प्रकृष्ट राष्ट्र प्रेम और नव नवोन्मेषशालिनी कवि प्रतिभा ने उसे अधिक आकर्षक, अभिराम और हृदयावर्जक बना दिया है।

'ध्रुवस्वामिनी' की स्थिति—'ध्रुवस्वामिनी' राजकन्या थी। राजकन्याओं के विवाह की तीन विधियाँ प्रचलित थीं—(1) स्वयंवर प्रथा, जिसमें राजकन्या, उससे विवाह करने के इच्छुक उपस्थित राजाओं और राजकुमारों में से अपने इच्छानुसार वर का चयन करती थी अथवा स्वयंवर में वीरता प्रदर्शन की कोई विशेष शर्त होती थी। (2) माता-पिता स्वयं ही योग्य वर का चुनाव करके कन्या का पाणिग्रहण करा देते थे। (3) विजित राजा विजेता राजा को अन्य बहुमूल्य उपहारों के साथ 'कन्योपायन दान' करते थे। 'ध्रुवस्वामिनी' इसी श्रेणी में आती है।

'ध्रुवस्वामिनी' चन्द्रगुप्त की वाग्दत्ता थी। उसके पिता (सम्भवतः कुन्तलेश्वर) ने उसे सम्राट समुद्रगुप्त के दिग्विजयाभियान में निकले गुप्त-साम्राज्य के प्रतिनिधि राजकुमार चन्द्रगुप्त को 'कन्योपायन दान' के रूप में सौंप दिया था। किन्तु इसी बीच सम्राट का अकस्मात् निधन हो गया और उनके द्वारा घोषित साम्राज्य के उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त को उसके बड़े भाई रामगुप्त ने धूर्त मन्त्री 'शिखरस्वामी' के सहयोग से षड्यन्त्र करके न केवल राजसिंहासन से वंचित कर उस पर अपना अधिकार जमाया, अपितु 'ध्रुवस्वामिनी' से भी छल से विवाह कर लिया। किन्तु सुरा और सुन्दरी में आसक्त कायर रामगुप्त से 'ध्रुवस्वामिनी' को घृणा हो गई और वह भी उसके प्रखर नारीत्व का सामना नहीं कर पाया। इसलिए दोनों में शारीरिक सम्बन्ध तो दूर रहा, समीपता भी स्थापित नहीं हो पाई।

रामगुप्त को सन्देह बना रहता है कि 'ध्रुवस्वामिनी' उससे परिणय हो जाने पर भी चन्द्रगुप्त से ही प्रेम करती है। चन्द्रगुप्त की शूरता, राजनीतिक दूरदर्शिता और प्रशासनिक क्षमता से भी उसे ईर्ष्या है। वह उसे अपने मार्ग का रोड़ा समझता है। उसके दिग्विजयाभियान के लिए निकलने और अपने से शक्तिशाली शत्रु शकराज पर आक्रमण करने का कूट उद्देश्य यह था कि चन्द्रगुप्त सहित उसके समस्त विरोधी युद्ध में मारे जाएँ। किन्तु युद्ध होने के पूर्व ही शकों ने उसके स्कन्धावार को चारों ओर से घेर लिया, राजधानी से उसका सम्पर्क कट गया और शकराज ने स्वयं अपनी ओर से 'खिंगिल' द्वारा सन्धि-प्रस्ताव भेजा कि 'ध्रुवस्वामिनी' और सामन्त-स्त्रियों को उपहार में पाकर ही वह अवरोध हटायेगा। रामगुप्त इसे अन्यानुरागिनी से प्रतिशोध और मुक्ति का सुअवसर मानकर उसे शकराज को सौंपने के लिए राजी हो जाता है।

इस तरह रामगुप्त पर-पुरुष को पत्नी सौंपने के निन्दनीय आचरण के कारण महर्षि पराशर के विधानानुसार न केवल 'पतित' है, अपितु कौटिल्य के अनुसार 'राज-किल्विषी' (राष्ट्रद्रोही) भी है, क्योंकि राष्ट्ररक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगाने के स्थान पर उसने अपनी प्राण-रक्षा के लिए राष्ट्र की स्वतन्त्रता को दाँव पर लगा दिया था। इसलिए महादेवी 'ध्रुवस्वामिनी' का उसे विवाह-विच्छेद शास्त्रानुमोदित, संगत और अनिवार्य हो गया था। राजपुरोहित 'प्रसाद' का उद्भावित पात्र है, जिसके मुख से उन्होंने शास्त्रीय विधान का युगानुरूप एवं समयोचित निर्वचन किया है।

पुनश्च राष्ट्रोद्धारक चन्द्रगुप्त की हत्या के प्रयास में सामन्तकुमार द्वारा रामगुप्त के मारे जाने पर 'ध्रुवस्वामिनी' सामाजिक नियमानुसार विधवा हो जाती है। अतः 'ध्रुवस्वामिनी' के स्त्रीत्वरक्षक, पूर्वप्रणयी, गुप्तराज्य के पूर्वघोषित उत्तराधिकारी और राज्य-रक्षा में समर्थ होने से—'राजा' पद के सर्वथा योग्य चन्द्रगुप्त से महादेवी 'ध्रुवस्वामिनी' का पुनर्लग्न शास्त्रानुमोदित है एवं अन्योन्यानुरागाश्रित होने से सुरुचिपूर्ण भी। वास्तव में रामगुप्त का विलक्षण और कुरुचिपूर्ण घृणित व्यक्तित्व है, जो गौरवपूर्ण भारतीय राजतन्त्र के माथे पर कलंक है।

पारिवारिक मर्यादा की अवधारणा—गुरुजनों (अपने से बड़ों) का सम्मान करना, उनकी निःस्वार्थ सेवा करना, उनकी आज्ञा का बिना उचितानुचित के विचार का पालन करना और उनके हित के लिए अपने अधिकारों का सहर्ष त्याग कर देना, यही छोटों के लिए भारत का पारिवारिक विधान रहा है। छोटों से असीम स्नेह रखना और उनके सर्वांगीण विकास और हित साधन के लिए बड़े-से-बड़े त्याग के लिए तैयार रहना बड़ों का कर्त्तव्य माना गया है। वास्तव में भारत का सांस्कृतिक इतिहास दोनों पक्षों के त्याग और कर्त्तव्यपालन की प्रतिस्पर्धा का इतिहास है, जिसमें स्वार्थों का कालुष्य और अधिकारों का द्वन्द्व नहीं। राम और भरत की प्रतिस्पर्धा मानवता की उच्चतम साधनाभूमि की पराकाष्ठा है, जहाँ दोनों अयोध्या के राजसिंहासन का एक-दूसरे के लिए त्याग करने को कटिबद्ध हैं। किन्तु गुप्तबन्धुओं का यह इतिहास कालिमा के पृष्ठ खोलता है, जहाँ पिता द्वारा राज्य का उत्तराधिकारी घोषित होने पर भी चन्द्रगुप्त तो अग्रज रामगुप्त के लिए सिंहासन खाली करके अपने उत्कृष्ट अनुजत्व का परिचय

देता है, वहीं रामगुप्त सिंहासन के साथ-साथ उसकी वाग्दत्ता और शौर्यार्जित परिणेया राजकुमारी 'ध्रुवस्वामिनी' को छल से छीनकर अधम अग्रज का उदाहरण बनता है।

त्याग के आदर्श, कुलगौरव के रक्षक, राष्ट्र के उद्धारक और शूरत्व के साकार विग्रह चन्द्रगुप्त को रामगुप्त से त्याग के बदले स्वार्थ, सम्मान के बदले तिरस्कार, प्रेम के बदले घृणा, विश्वास के बदले सन्देह और राष्ट्रप्रेम के बदले राष्ट्रद्रोह का अभियोग मिलता है। तब इस समस्या का क्या समाधान हो? 'कुरुक्षेत्र' के भीष्म के शब्दों में चन्द्रगुप्त के लिए ऐसी परिस्थिति में यही एक वीरोचित निदान है—

''छीनता हो स्वत्व कोई और तू त्याग-तप से
काम ले, यह पाप है।
पुण्य है विच्छिन्न कर देना उसे बढ़ रहा तेरी
तरफ जो हाथ है।।''

तथापि भारतीय संस्कृति के अनन्य पुजारी 'प्रसाद' जी अनुज के हाथों रामगुप्त की हत्या नहीं दरसाते।

भारतीय संस्कृति में राजत्व की अवधारणा— भारतीय संस्कृति मूलतः समष्टिवादी है। स्वार्थ-परायण आत्मकेन्द्रित व्यक्तिवाद को उसमें हेय माना गया है। त्याग व्यक्तित्व का प्रतिमान है, इसलिए जो जितना बड़ा होता है, उससे उतने ही बड़े त्याग की अपेक्षा की जाती है। राजा राष्ट्र का शीर्षस्थ व्यक्ति होता था जो आत्मसंयम और त्याग से राष्ट्र की रक्षा करता था—''ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति।''

रामगुप्त कैसा राजा था यह निम्नोद्धृत कथोपकथन से स्पष्ट हो जाएगा—

रामगुप्त : ××××। अपने लिए मैं स्वयं कितना आवश्यक हूँ, यह कदाचित् तुम नहीं जानतीं।

ध्रुवस्वामिनी : मेरी रक्षा करो। मेरे और अपने गौरव की रक्षा करो। ×××।

रामगुप्त : ××××। जाओ, तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तुम्हें किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें क्यों आपत्ति हो?

निष्कर्ष—मूलतः नारी-समस्या पर केन्द्रित होते हुए भी 'ध्रुवस्वामिनी' में 'प्रसाद' का बहुआयामी सामाजिक, राष्ट्रीय और राजनीतिक चिन्तन युग की चुनौतियों को स्वीकारते एवं युगचेतना को आत्मसात् करते हुए प्रकट हुआ है। वर्तमान राजनेताओं के लिए आचार्य मिहिरदेव के माध्यम से वे 'राजनीति के पीछे नीति (जीवन मूल्यों) से हाथ न धो बैठने' का शाश्वत सन्देश दे रहे हैं।

महाराज बाग, भैरवगंज, सिवनी,
जिला-सिवनी-480661 (म.प्र.)

रचनाकारों से अनुरोध

- **कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप कराकर भेजें। रचना यदि ई-मेल से भेज रहे हों तो साथ में फॉन्ट भी अवश्य भेजें।**
- **रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हों। शब्द-सीमा 3000 शब्दों तक है।**
- **रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन परिचय भी प्रेषित करें।**
- **रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियां (हाई रेज्योलेशन फोटो) अवश्य भेजें।**
- **रचना भेजने से पहले उसे अच्छी तरह अवश्य पढ़ लें।**
  यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं तो वर्तनी को कृपया भली-भांति जांच लें।
- **ध्यान रखें कि भेजी गई रचना के पृष्ठों का क्रम ठीक हो।**
- **यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो यह सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।**
- **रचनाएं किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएंगी। अतः उसकी प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।**
- **स्वीकृत रचनाएं यथासमय प्रकाशित की जाएंगी।**
- **रचना के अंत में अपना पूरा पता, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।**
- **आप अपने सुझाव व आलोचनाएं कृपया ddgnk.iccr.nic.in पर संपादक को प्रेषित कर सकते हैं।**

आलोचक दिनकर का मूल्यांकन

डॉ. जयपाल सिंह

डॉ. जयपाल सिंह युवा आलोचक एवं दिल्ली विश्वविद्यालय के दयाल सिंह कॉलेज (प्रातः) में हिन्दी के प्राध्यापक हैं। दिनकर पर केंद्रित दो पुस्तकें सद्यः प्रकाशित। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा, लेख का निरंतर प्रकाशन। लेखक हैदराबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय के कई कॉलेजों में अध्यापन कार्य के साथ-साथ पुस्तक-वार्ता पत्रिका के सहायक संपादक रह चुके हैं।

किसी रचनाकार का समुचित मूल्यांकन और आलोचना उसके जीवित रहते संभव नहीं होता क्योंकि उसके सामने अपने ईर्ष्यालु मित्रों, प्रतिपक्षियों की एक लम्बी जमात होती है। रचनाकार की मृत्यु के पचास या सौ वर्षों बाद ही उसका सही मूल्यांकन हो पाता है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म 23 सितम्बर, 1908 को बिहार के बेगूसराय जिले के सिमरिया गाँव में एक मध्यवित्त किसान परिवार में हुआ था। उत्तर छायावादी काव्यधारा के प्रतिनिधि एवं सर्वाधिक लोकप्रिय कवि की प्रतिभा की व्याप्ति और विशालता का पता इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि वे हिंदी कविता के इतिहास में कविता एवं जनता के रिश्ते के उज्ज्वल पड़ाव हैं। कुछ लोगों का मानना है कि उनके साहित्य का ताप नेहरू के सामीप्य के कारण क्षीण हुआ तो कुछ लोगों का मानना है कि वे सत्तावादी कवि थे। कुछ आलोचकों की राय है कि वे आधुनिक कवि नहीं थे और कुछ लोगों का कहना है कि दिनकर हिन्दी आलोचना की कमजोर आँखों के कारण समीक्षा-संकट के

शिकार रहे या अवमूल्यित हुए।

दिनकर का कवि जनता को अपनी असली पूँजी मानता है क्योंकि साहित्य हृदय का व्यापार है। भक्त कवि आज तक अपनी लोकप्रिय कविताओं के कारण ही कई कालखण्डों तक का अतिक्रमण करते आ रहे हैं। लोकप्रियता सामूहिकता की देन होती है। दिनकर व्यावहारिक चतुर सुजान कवि और अंततः सांसारिक मनुष्य थे। भौतिक वस्तुएँ या भौतिकता अगर अपनी बड़ी अर्थवत्ता नहीं रखती तो संसार में उसकी चर्चा नहीं होती। लेकिन स्वार्थ और लोभ से वशीभूत प्राणी प्रायः भौतिकता का महत्त्व स्वीकारते हैं।

दिनकर कवि-आलोचकों की परम्परा के रचनाकार हैं जिनमें ऐतिहासिक परिदृश्य को सूक्ष्मता से जानने-देखने की योग्यता थी। उनके आलोचना साहित्य को 'सर्जनात्मक आलोचना' की श्रेणी में रखा जा सकता है। गद्य के सर्जक अथवा रचनात्मक साहित्य के सर्जक दिनकर हिन्दी साहित्य की छायावादोत्तर पीढ़ी के उन चुने हुए लोकप्रिय कवियों में शीर्ष पर रखे जा सकते हैं जिनकी कविता आज भी चौपालों पर गूँजती है।

दिनकर के आलोचना साहित्य का मुख्य सरोकार देश के इतिहास और संस्कृति के नकारात्मक एवं सकारात्मक प्रश्नों के प्रति चिंता और जागरूकता पैदा करना है।

दिनकर के काव्य में जनता और लोकतंत्र के स्वप्नों की अन्विति दिखाई देती है। छायावादोत्तर कविता को दिनकर और बच्चन ने अपनी-अपनी तरह से प्रभावित किया लेकिन दिनकर के अवदान का महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि उन्होंने गाँव से लेकर दिल्ली तक के संघर्षों को देखा, भोगा और सामाजिक विषमता, अभाव और पीड़ा को लेकर वह इस संसार से विदा हा गए। वर्ष 2007-2008 दिनकर के जन्मशतवार्षिकी रूप में मनाया गया जिनमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी मूल्यांकन प्रो. मैनेजर पाण्डेय, स्व. प्रो. कृष्णदत्त पालीवाल, प्रो. नित्यानंद तिवारी, कवि आलोचक अशोक वाजपेयी, प्रो. नामवर सिंह, डॉ. ज्योतिष जोशी, प्रो. अपूर्वानंद, प्रो. नन्द किशोर नवल, डॉ. तरुण कुमार, प्रो. स्व. विजयेन्द्र नारायण सिंह एवं डॉ. रामेश्वर राय, विश्वनाथ त्रिपाठी, स्व. प्रभाष जोशी एवं प्रो. निर्मला जैन एवं प्रो. गोपेश्वर सिंह आदि प्रज्ञावान-ज्ञानवृद्ध, अध्यापक आलोचकों ने किया।

आलोचक मैनेजर पाण्डेय ने लिखा—''पंडित जवाहरलाल नेहरू यदि राजनीति में युवा हृदय सम्राट थे तो हिन्दी कविता के युवा हृदय सम्राट दिनकर थे।'' इस उद्धरण की पुष्टि और व्याख्या में प्रज्ञावान लेखक प्रो. गोपेश्वर सिंह का कहना प्रसंगानुकूल है कि ''पंडित नेहरू राजनीति में जिस तरह गाँधीवाद और समाजवाद का मेल कर नया राजनीतिक रसायन तैयार करते थे, उसी तरह दिनकर अपने समय के प्रमुख साहित्यिक वादों-प्रतिवादों, प्रयोगवाद और नई कविता में किसी एक के हिमायती न होकर अपने लिए नया काव्य मार्ग ढूँढते हैं। आलोचक मैनेजर पाण्डेय का कहना है कि दिनकर का मार्क्सवाद के साथ सम्बन्ध राग-विराग दोनों का है। दिनकर मार्क्स के लाल रंग में गाँधी का सफेद रंग मिलाकर अपना वैचारिक रंग तैयार करते हैं। रवीन्द्र और इकबाल ही दिनकर के दो बड़े साहित्यिक आदर्श थे।

कवि-आलोचक श्री अशोक वाजपेयी ने लिखा है—''दिनकर की कविता में हिंदी साहित्य के कई काल पुनः अवतरित देखे जा सकते हैं। राष्ट्रीयता, छायावाद, छायावादोत्तर काल, नई कविता, रीतिकाल और भक्तिकाल। वे 'हुंकार' से 'रश्मिरथी', 'कुरुक्षेत्र' होते हुए 'नीलकुसुम' और 'उर्वशी' तक गए। छायावादोत्तर कवियों में वह एकमात्र प्रबंध कवि थे। उस युग में दिनकर जैसी प्रतिभाशाली शख्सियत ने कविता के साथ-साथ आलोचनात्मक और वैचारिक गद्य भी लिखा। 'पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण', 'शुद्ध कविता की खोज' और 'संस्कृति के चार अध्याय' हिंदी में सभ्यता-समीक्षा में दिनकर एक उजला नाम है।

दिनकर का मानस उपनिवेशवाद के विरोध, धर्मनिरपेक्ष मूल्यों और भारतीय बहुलता के प्रति गहरी सहजता और जिम्मेदारी के भाव से गढ़ा था। वे भारतीय सामासिकता के नेहरू युग की सांस्कृतिक दृष्टि के, देश की स्वतंत्रता और धर्म के आधार पर विभाजन के बाद के युग के उज्ज्वल प्रखर प्रवक्ता बने। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि वे गाँधी और मार्क्स, रवीन्द्रनाथ और इकबाल तथा मैथिलीशरण गुप्त की भाषिक स्वच्छता और सुमित्रानंदन पंत की स्वप्नशीलता के बीच कहीं अपने को अवस्थित करने की चेष्टा में लगे रहे। दिनकर ने अपनी कविता में निजता का विरोध किया और कविता को सार्वजनिक बनाया। वह उस पीढ़ी के कवि हैं जिन्होंने विचारों की दुनिया बदल दी।

गंभीर एवं विधिवत आलोचना लिखने के कारण वे सच्चे अर्थों में छायावाद के उत्तराधिकारी आलोचक भी हैं। कुछ लोग यह कहते हैं कि दिनकर जैसे कवि प्रगतिशील और प्रयोगशील आलोचना प्रत्ययों के शिकार हुए। यह कोई अंतिम और प्रामाणिक सत्य नहीं है। जब नई कविता की आभा अपनी किरणें बिखेर रही थी तब दिनकर अपनी प्रतिभा के बल पर नया कीर्तिमान स्थापित कर रहे थे। 'उर्वशी' उसी दौर की उनकी उपलब्धि है जिसे नामचीन आलोचकों के विरोध के बाद भी ज्ञानपीठ पुरस्कार से नवाजा गया।

दिनकर हिन्दी कविता के अन्तिम सार्वजनिक कवि थे, जिनकी आवाज और कविता जवाहरलाल नेहरू और जयप्रकाश नारायण से लेकर साधारण लोग हर कोई सुनते-गुनते थे।

वरिष्ठ आलोचक प्रो. नित्यानन्द वितारी ने लिखा है—''संस्कृति के चार अध्याय', 'शुद्ध कविता की खोज' और 'चक्रवाल' की भूमिका में दिनकर का चिंतक और आलोचक रूप प्रखर होकर उभरा है। उनका एक आहत चिंतक, कवि और आलोचक रूप 'दिल्ली' नामक रचना में भी है।

दिनकर की विशेषता है कि वे कविता के लोकप्रिय विधानभाषा और निरूपक विन्यास की खोज करते हैं। यह लोकप्रियता उनकी कविता की विशेषता तो है ही वह उनकी आलोचनात्मक युक्तियों का स्त्रोत भी है।

हिंदी की आलोचना में एक शब्द प्रचलित है 'प्रांजल'। इस प्रांजल को दिनकर ने धारणा के रूप में विकसित किया है। भक्त कवियों की परम्परा में नाथ और सिद्धों के यहाँ भी प्रांजलता दिखाई देती है। जैसे लोहिया की दृष्टि में 'समझ' शब्द समझने की प्रक्रिया भर नहीं हे, वह एक धारणा है, उन्होंने 'समझ' शब्द को धारणा के स्तर पर लिया है। अर्थात् ऐसी योग्यता, जो अनेक दिशाओं से आने वाले दवाब को झेलते हुए जीवन निर्मित करती है। इसी प्रांजलता से भक्त कवियों ने सीधी राह पाई। यह बड़ी गहरी साधना से उन्हें मिली होगी। आज प्रांजलता सतहीपन का पर्याय है। संभवतः प्रांजलता या सीधापन जीवन में दोष माना जाता है और जिनके पास प्रांजलता होती है संभवतः वह जीवन में धोखा पाए लेकिन अगर प्रांजल का शाब्दिक अर्थ Simplicity है तो दिनकर ने प्रांजलता (simplicity) अर्जित करने के लिए विचारों और भाषा को काफी गहराई से साधा होगा। दिनकर की प्रांजलता 'गहराई का आयाम' (dimension of depth) ही है। कविता और आलोचना में 'जटिल' की धारणा के समानान्तर दिनकर इस 'प्रांजल' को प्रस्तावित करने लगते हैं।

दिनकर की एक और विशेषता है कि वे अपने रचनाकार और चिंतक के रूप को आखिरी दिनों तक हिन्दी में चलने वाली रचनात्मक और आलोचनात्मक बहसों से उलझते रहे। यह उनकी कविता के साथ उनकी आलोचना का स्त्रोत है।''

कुछ प्रज्ञावान आलोचकों की राय है उनकी 'संस्कृति के चार अध्याय' पुस्तक आलोचना की श्रेणी में नहीं आती है। ऐसे अध्येता की

उक्त पुस्तक की भूमिका को पढ़ने की जरूरत है। जिसमें दिनकर लिखते हैं—''यह पुस्तक साहित्य और दर्शन का महल है और इतिहास की हैसियत किराएदार की भूमिका में है, इतिहास को कब्जा जमाने का अधिकार मैं नहीं दे सकता।'' दिनकर संस्कृति से संवाद करते हैं। गुण-दोषों को रेखांकित करते हैं। अगर साहित्य और आलोचना सांस्कृतिक विमर्श को प्रस्तावित न करें तब ही यह आलोचना पुस्तक नहीं कहला सकती है। अंततः वे संस्कृति के निर्माणकर्त्ता नहीं व्याख्याता हैं।

दिनकर वादमुक्त कवि-आलोचक हैं, किसी विचारधारा के न तो अनुवर्ती हैं और न अनुगामी।

विचारधाराओं की अंधी हथकड़ी में बंधना मानसिक गुलामी मानते हैं। जैसे फूल हरेक दिशा से हवा ग्रहण करता है, खिलता अपनी शर्तों पर ही है। दिनकर अपनी शर्तों पर जीने वाले व्यक्ति थे। नेहरू के प्रति सम्मान और 'लोकदेव नेहरू' पुस्तक के रचयिता दिनकर उनकी गलत नीतियों का विरोध करने का साहस रखते थे। 'परशुराम की प्रतीक्षा' और 'कुरुक्षेत्र' इसके प्रमाण हैं। रचनात्मक व्यक्ति केवल अपनी रचना से संबद्ध होता है। किसी गलत चीज का विरोध करना बुद्धिजीवी होने का पहला प्रमाण होता है। संशय, तर्कशीलता, सत्य के स्वीकार और असत्य के अस्वीकार का साहस बुद्धिजीवी के लक्षण होते हैं। यह दिनकर के व्यक्तित्व और साहित्य में पर्याप्त मिलते हैं।

आज जिस तरह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के नाम पर दिनकर जैसे लेखकों को भूमिहार जाति की चौहद्दी में कैद किया जा रहा है। वोट के नाम पर उनका इस्तेमाल किया जा रहा है, वह अनुचित कदम है। लेखक जाति, गोत्र, क्षेत्र, कालखण्डों का अतिक्रमण करते हैं। हुंकार, रश्मिरथी, परशुराम की प्रतीक्षा, उर्वशी सहित 27 आलोचनात्मक पुस्तकों के रचयिता दिनकर के कवि-कर्म की परिधि जितनी बड़ी है उतनी ही विपुल और विस्तृत आलोचना कर्म भी।

साहित्य अकादमी और ज्ञानपीठी दिनकर के संदर्भ में मीडिया विशेषज्ञ प्रो. सुधीश पचौरी के शब्दों से उधार लूँ तो मैथिलीशरण गुप्त और दिनकर के बाद तीसरे राष्ट्रकवि की तलाश जारी है और यह तलाश तभी पूरी होगी जब किसी रचनाकार के साहित्यिक अवदानों का पुनर्पाठ पूर्वग्रह मुक्त मन से हम कर सकें। 23 सितम्बर, 1974 को तिरूपति में अपनी इच्छा मृत्यु को प्राप्त करने वाले दिनकर की यह पंक्तियां—

- कागज कितना भी चिकना लगाओ, जिंदगी की किताब खाली की खाली रह जाती है।
- सरस्वती की जवानी का नाम कविता है तो बुढ़ापे का नाम दर्शन।
- जवानी में क्रोध से और बुढ़ापे में लोभ से बचना चाहिए।
- बड़ी कविता वह जो इस भूमि को सुंदर बनाती है, बड़ा वह ज्ञान जिससे व्यर्थ की चिंता नहीं होती। बड़ा वह आदमी जो जिंदगी भर काम करता है, बड़ी वह रूह जो रोए बिना तन से निकलती है।

हमें मानव जीवन की संपूर्णता की समझ पैदा करती है। वे देशभक्त कवि हैं और उनकी देशभक्ति उस बूटी के समान है जिससे हमारे रुधिर में राष्ट्रवादी विचारधाराओं का जन्म होता है। उनकी पावन स्मृति को विनम्र श्रद्धांजलि।

36, डूप्लेक्स, द्वितीय तल,
गुड़मण्डी, दिल्ली-110007

कवि भवानी प्रसाद मिश्र का काव्य-दर्शन

डॉ. विजय बहादुर सिंह

सुप्रसिद्ध आलोचक, सहृदय वाग्मी एवं मासिक पत्रिका 'वागर्थ' के पूर्व संपादक तथा भवानी प्रसाद मिश्र, नंद दुलारे वाजपेयी एवं दुष्यंत कुमार रचनावली के संपादक।

''गाँधीवादी साहित्यकार में इतनी मर्दानगी होनी चाहिए कि मौका पड़ने पर इस जनता की राजसभा का भी दरबारी न बने और यदि जनमत के विपरीत जाने से उत्तरकालीन मानव का मंगल-साधन हो, तो वह साहसपूर्वक अपनी अकेली आवाज को ही बुलन्द करें। यदि साहित्य का चीर हरण जनता करने लग जाए तो साहित्यकार जनता के राज-दरबार में दरबारी की तरह ''वाह-वाह क्या बात है! क्या नजारा है!'' कहकर तालियाँ न पीटें। ××× साहित्यकार यदि राजा-रईस-पूँजीपति का चाटुकार नहीं है, तो तथाकथित जनता का भी चाटुकार नहीं हो सकता।'' (कुबेरनाथ राय—पत्र मणिपुतुल के नाम, पृष्ठ 70)

यही कुबेरनाथ राय अपने इसी निबंध में यह सार वाक्य भी लिखते हैं—''गाँधी जी की साहित्य-दृष्टि के पीछे 'सत्य' का दर्शन यानी सत्य का ज्ञानयोग और सत्य का आचार योग है।'' सीधा और साफ मतलब है कि कवि का सच बोलना। तुलसीदास ने इसे ही घोषित किया जैसे--''सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे।''

कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने अपने लिए कुछ और भी शर्तें तय कीं—पहली—लोगों

के बोलने जैसा लिखना। यानी कवि की बोली में व्यक्ति-सत्य की जगह लोक-सत्य की मौजूदगी। दूसरी यह कि वह अनुभूति सार्वजनिक और सार्वभौमिक हो। (यह कि तेरे भर न हो तो कह)। और तीसरी है—कविता की अनलंकृत सादगी।

आलोचक कृष्णदत्त पालीवाल को साक्षात्कार देते हुए कवि ने कहा—''मेरी आस्था गाँधी और खादी में जो है—मुझे तो आज भी खादी का दर्शन अच्छा लगता है—चाहे कोई मुझे पिछड़ा ही क्यों न कहे। खादी, जो काते सो पहने/श्रम की शक्ति जीवन की गरिमा का प्रतीक। कार्य और कर्मठता की फिलॉसफी है—खादी/फिर खादी मेरा दिखावा नहीं है, संस्कार है, आत्म-निर्भरता का भाव है। लेकिन मेरी कविता/खादी की कविता नहीं है—यद्यपि खादी का दर्शन उसमें बोलता है। तौल कर कहूँ तो मेरी कविता वनस्पति-जगत की संवेदना से बनी-रची कविता है। इस संवेदना के विकास को ही मैं अपनी कविता का विकास मानता हूँ।... फूल-पत्ती, नदी-घास, झरना, गाय, चिड़िया का मेरा संसार है—मैं उसी में खुश रहता हूँ, उसी को गाता हूँ।''

''मुझे भारतीय चिंतकों की वह विचार-वाणी भाती रही है कि पेड़-पौधे भी मनुष्य के समान हैं... भारतीय साहित्य में मनुष्य और प्रकृति का अलगाव आरम्भ से ही नहीं रहा। बल्कि प्रकृति और मनुष्य दो न रहकर एक ही रहे। धीरे-धीरे औद्योगिकीकरण और शहरीकरण की यह प्राणलेवा संस्कृति जो पनपी है—वह मनुष्य को प्रकृति से दूर कर रही है... प्रकृति के अलगाव की पीड़ा को हम झेल रहे हैं।

यहीं कवि की यह आत्मस्वीकृति कि कवि बनने के दौरान उसने पश्चिम को कम और भारतीय साहित्य को खूब पढ़ा। उसकी मानें तो इस पढ़ाई ने उसके कवि को ढंग से गढ़ा। भारतीय काव्य-परम्परा में इस संवेदना ने ही उसके कवि को इस तरह विकसित किया है कि प्रारम्भिक काल में ही सन्नाटा, सतपुड़ा के जंगल, कमल के फूल तथा कुछ और भी आगे की कविताएँ—पहिला पानी आदि आती चली गईं। 'कमल के फूल' कविता पर अपना मन खोलते हुए उसने कहा—''मेरा मन ही इसमें उतर आया। फिर सोचा-विचारा कि भारतीय रचनात्मकता में सर्वाधिक महत्व का और प्रसिद्धि का उपमान है—कमल का फूल। यह महत्व इतना अधिक है कि विराट पुरुष अपनी शोभा से कमलनयन है, कमलासन

है, करकमल है, चरणकमल है।... कमल में पूरी भारतीय संस्कृति समायी हुई है।... हमारा साहित्य कमल सरोवरों से पटा पड़ा है—भारतीय संस्कृति का पूरा महाभाव यहाँ महामौन होकर कमल में समा गया है।''

कवि के इन वक्तव्यों पर गौर करें तो वह अपने तमाम समकालीनों से भिन्न भावभूमि पर खड़ा है। यह भूमि शुद्ध और ठेठ देशी और भारतीय भावभूमि है। जिस पर वाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, कबीर-सूर-तुलसी ही नहीं, आधुनिक हिन्दी कविता का महान काव्यान्दोलन छायावाद भी है। इस रूप में यह कवि न तो प्रगतिवादियों के कुल-खानदान से जुड़ता है, न प्रयोगवादियों के। मुक्तिबोध ठीक ही कहते हैं कि भवानी मिश्र दोनों में से किसी एक भी विचार-सम्प्रदाय और काव्यधारा से नहीं जुड़ते। खुद भवानी प्रसाद मिश्र भी इस सवाल पर कोई खामोशी नहीं बरतते। भारतीय काव्यधारा और काव्यचेतना की चर्चा करते हुए कवि ने कहा—''पश्चिम ने आदर्श बनकर हमें भौतिकता के पीछे ऐसा भगाया कि हम कहीं के नहीं रहे... मिली एक बासी आधुनिकता, संत्रास, कुंठा, पराजय-बोध की भावना। अस्तित्ववाद की फिलासफी, जिसने हमारी काव्य-परम्परा में जहर घोल दिया।''

भाारतीय संस्कृति के स्वभाव पर बातचीत करते हुए कवि ने कहा—''असल में, यह आधुनिकता के पीछे भागने वाली संस्कृति नहीं है, मानव में मानवीयता के परिष्कार-संस्कार की संस्कृति है। यदि ऐसा न होता तो यहाँ वेदों की पीठ पर बौद्ध धर्म और जैन धर्म की संस्कृतियाँ पैदा नहीं हो सकती थीं।'' यह भी कि 'भारतीय संस्कृति भारतीयता के प्रवाहधर्मी संस्कारों की संस्कारात्मक परिणति है... यहाँ अध्यात्म एवं भौतिक का द्वन्द्व रहा है। इसलिए न तो यह भौतिकवादी हो सकती है, न आध्यात्मिक। भारतीय संस्कृति को आध्यात्मिक कहकर प्रचारित करने का काम विदेशों में चल रहा है, लेकिन यह एक सुनियोजित षड्यंत्र है, जिसे कुछ नासमझ लोग अपने स्वार्थों के लिए चला रहे हैं' जबकि 'हमारी संस्कृति तो बुद्ध-महावीर, कबीर, नानक, नामदेव, गाँधी की संस्कृति है, जो तप, त्याग, करुणा, सहानुभूति एवं प्रेम पर केन्द्रित है। मानव से पशुता को हटाकर मानवीयता के विकास की संस्कृति है।... यह संस्कृति लोकपीड़ा और लोक-चिंता के दर्द से जुड़ी है... गाँधी ने इसी संस्कृति की कामधेनु को दुहकर कहा—सत्य ही ईश्वर है।'

इस संदर्भ में कवि का कथन है—''गाँधी का चिन्तन एक सम्प्रदाय का चिन्तन नहीं है—एक अखंड विचारधारा से जुड़ा, बढ़ा सांस्कृतिक विकास का प्रवाहमान चिन्तन है। इस देश में किसी सम्प्रदाय या जाति-विशेष का इस पर अधिकार नही है। विचार जब 'वाद' में बदल जाता है तो संप्रदायगत रूप ले लेता है और थोड़े से लोग उस पर एकाधिकार कर लेते हैं। सबसे बुरी बात यह होती है कि विचार विकसित होना बंद कर देता है। गाँधी विचार-दर्शन मेरे लिए सत्य पर आधारित जीवन-दर्शन की खोज है।... गाँधी-विचार का सार है—सत्य, अहिंसा, सर्वोदय और सत्याग्रह। सत्याग्रह सीधे युद्ध का विकल्प है, सर्वोदय केवल आर्थिक सर्वोदय नहीं है, उसमें मानव जाति की सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक उन्नति का आधार निहित है। इसलिए सर्वोदय एक प्रकार से अंत्योदय भी है।'' इसीलिए वह कहता है—''गाँधी विचारधारा की तुलना में मार्क्सवाद अधूरा, अपर्याप्त एवं एकांगी जीवन-दर्शन प्रतीत हुआ है मुझे। और यह मार्क्सवाद एक ढंग से हिंसा सिखाता है और हिंसा की राह मानव और प्रेम की राह नहीं है—पशु की राह है। खूब सोच-समझकर मैं गाँधी की शरण में गया और मुझे विचारधारा के स्तर पर बड़ी शक्ति मिली। पूरी भारतीय मनीषा के चिंतन का निचुड़ा हुआ अमृत है—गाँधी का चिंतन।' किन्तु कवि को यह पसन्द नहीं कि लोग-बाग उसे गाँधीवदी कवि कहकर 'वाद' के घेरे में पहचानें। उसका कथन है—''पर मैं कोरा गाँधीवाद नहीं हूँ, मेरे चिन्तन पर अन्य प्रकार के अनेक विचार प्रभाव कार्य करते हैं।'' भारत का अद्वैतवादी चिन्तन और दर्शन, जयप्रकाश और लोहिया के प्रभाव भी कवि की चेतना पर खूब है। इस संदर्भ में उसका व्यक्तित्व अतिक्रमण ही कहा जा सकता है।

तब ठीक ही कहा गया कि प्रतिभा होने पर बड़ा कवि कैसी भी विचारधारा हो, उसका अतिक्रमण करता ही है। सगुणवादी तुलसी ही तो लिख सके ''अनुगनहि सगुनहि कछु नहि भेदा।'' हमारे अपने जमाने के कवि नागार्जुन ने लिखा कि उनके नास्तिक को उनके आस्तिक ने पछाड़ दिया और कवि (अहिंसावादी) भवानी प्रसाद मिश्र ने इसी लेखक को इण्टरव्यू देते हुए कहा—अगर गाँधी से काम नहीं चला तो मार्क्स को आने से कोई नहीं रोक पाएगा। एक अन्य बातचीत में उसने यह भी कहा कि जरूरत पड़ने पर हिंसा की आपात् स्थिति को भी स्वीकारा जा सकता है।

राष्ट्रीय आन्दोलन के एक जगजाहिर कार्यकर्त्ता के रूप में वह स्वभावतः कांग्रेसी कहा जा सकता है किन्तु इस सन्दर्भ में उसका यह वक्तव्य गौर करने लायक है—

''मैं राजनीति के क्षेत्र में अंग्रेज सरकार से लड़ाई के दिनों तक ही रहा। स्वतन्त्रता पाने की हद तक हाथ बँटाना मेरी विवशता थी। उसके बाद राजनीतिज्ञों पर निगाह जरूर रखता रहा और उनके काम मुझे तकलीफ देते रहे, उन्हें गलत कामों से विरत भी नहीं कर पाया, अनेक तो इनमें मित्र ही थे। अनेक राजनीतिज्ञ मित्र गलत राजनीति के खिलाफ लड़ते रहे, मैं उसमें भी नहीं पड़ा लेकिन लिखने

के माध्यम से जो कर सकता था, किया।''

मैंने माना कि कविता लिखना और राजनीति के क्षेत्र में सक्रिय रूप से लड़ते रहना साथ-साथ नहीं चल सकता। राजनीति का क्षेत्र गाँधी जी की राजनीति की तरह त्याग और साफ-सुथरेपन का क्षेत्र होता तो कविता वहाँ भी निखर सकती थी, किन्तु जब भारत की राजनीति भी संसार की राजनीति की तरह ही बनी रही तो मैं उसे अपना क्षेत्र कैसे मानता?''

तब भी 1974 के सर्वोदय विवाद में, आपातकाल के विरुद्ध कवि अपने पूज्य विनोबा का रास्त छोड़ संपूर्ण क्रान्ति के स्वप्नदर्शी जय प्रकाश के साथ आ खड़ा हुआ। विनोबा को पत्र लिखकर उसनेअपना अभिमत दर्ज कराया—''दुःशासन को आपने अनुशासन आदि कहा। इससे बुद्धि भेद होगा। हम सबमें एक बुद्धि पड़ी है—अज्ञ तो हैं, तथापि हर अज्ञ में बुद्धि तत्व भी होता है, इससे उस तत्व का चूरा बनता है। आपने मौन काल में 'गुह्य' पर ही विचार किया होगा और कर रहे होंगे, ऐसी श्रद्धा है। 'गुह्य' को ही आपने 'सूक्ष्म में प्रवेश' कहा था न? यह विचार सूक्ष्म तत्वदर्शन का रसाल है, ऐसा मानना कठिन हो रहा है। मैं व्यक्तिगत रूप से इतना अनिवार्य लगने पर कह रहा हूँ। इसे बच्चे का माँ के आगे सत्याग्रह मानें।'' भवानी प्रसाद मिश्र 7.7.75।

इसके पहले सर्वोदय के साथियों में मतभेद और अलगाव हो चुके थे। विनोबा से असहमत और प्रत्यक्ष सत्ता-राजनीति में हस्तक्षेप करने को लेकर परस्पर सहमत सारे सर्वोदयी जयप्रकाश नारायण के साथ चले आए थे। 21 अगस्त, 1974 को कवि ने इस लेखक को लिखा—''मैं जे.पी. के पास तीन दिन से पटना में हूँ।'' स्पष्ट है कि कवि जीवन के प्रौढ़ उत्तरार्ध में फिर प्रतिरोध की राजनीति में उतरा और सक्रिय हस्तक्षेप किया। इससे यह तो सूचित होता ही है कि आपात स्थितियों में प्रत्यक्ष राजनीति में उतरने पर उसे तब भी कोई परेशानी नहीं हुई जब वह खुद हृदयाघात से पीड़ित था।

आजादी के बाद उसकी कविताओं में जो उदासी और आलोचनात्मक तीखापन आया निश्चय ही उसमें नेहरू की शासन नीतियों की बड़ी भूमिका थी। नागार्जुन जैसे कवि तो अत्यन्त मुखर होकर नेहरू की तीखी आलोचना कर रही रहे थे किन्तु भवानी प्रसाद मिश्र भी कोई कम उदास और क्षुब्ध नहीं थे।

एक और बातचीत में कवि ने कहा—''भारत ने गाँधी को राष्ट्रपिता तो कह दिया... पर उन्हें प्रेरणास्रोत नहीं माना... स्वयं नेहरू जी गाँधी जी से दूर ही चलते गए। नाम उनका लेते रहे और काम अपने मन का करते रहे। इसीलिए गाँधी पत्थर के भगवान बनते चले गए—इस देश में। भारत ने गाँधी की बार-बार हत्या की, उन्हें बाहर धकेला और 'स्वदेश' के स्वाभिमान को छोड़कर हम विज्ञान के पीछे अंधे पश्चिमी राष्ट्रों की ओर भाग खड़े हुए। पश्चिम के धन और विज्ञान ने हमारी बुद्धि भ्रष्ट कर दी है। इसलिए बुद्ध की तरह गाँधी इस देश में असफल हो गए। लेकिन गाँधी विचार-दर्शन अभी भी असफल नहीं हुआ है। आज की विज्ञान-पीड़ित युद्ध-त्रसित मानवता के लिए गाँधी विचार के अतिरिक्त दूसरा उपाय क्या है?''

नेहरू को लेकर कवि की आपत्तियाँ कुछ और भी थीं जैसे कि जयप्रकाश और लोहिया जैसे समाजवादियों के सन्दर्भ में कवि का यह कहना कि—''गाँधी जी समाजवादियों को देश के कार्यों में लगाना चाहते थे—बड़े दायित्व सौंपना चाहते थे—पर नेहरू जी का मन ऐसा बर्दाश्त न कर पाता था। उनकी नीतियों ने लोहिया और जयप्रकश को कभी एक नहीं होने दिया। यह बात 1946 में जब तीसरी बार नेहरू जी कांग्रेस के अध्यक्ष बने थे, उनके आचरण एवं व्यवहार से साफ हो जाती है कि लोहिया को अलग और जयप्रकाश नारायण को अलग रखना चाहते थे—बाद में यह अलगाव बढ़ता ही गया और जीवन भर लोहिया-जयप्रकाश एक न हो सके। यह भारत की आजादी के बाद के इतिहास का सबसे दुर्भाग्यपूर्ण अध्याय है...।''

जय प्रकाश से अपने भावनात्मक जुड़ाव की बात याद करते हुए कवि ने कहा—''जीवन में बढ़ती बेईमानी और स्वार्थपरता को देखकर जयप्रकाश नेहरूवाद तथा कांग्रेसवाद को जड़ से उखाड़ने के लिए तैयार हो गए—बस यहीं पर मेरे मन का उनसे तालमेल बैठा क्योंकि मैं भी कांग्रेस सरकार की बेईमानियों से परेशान था। यही कारण है कि आपातकाल में मैंने कांग्रेस सरकार के जुल्मों का खुलकर विरोध किया।'' कवि की यह दृढ़ मान्यता भी रही कि—''रचनाकार व्यवस्था क्रतिदास नहीं बनसकता है। वह व्यवस्था के 'प्रोटेस्ट' में खड़ा रचनाकार होता है। साहित्य और साहित्यकार का यह सबसे बड़ा दायित्व है कि उसमें रचना में वृहत्तर समाज को वाणी मिली हो।'' इतना ही नहीं, उसने यहाँ तक जाकर सोचाऔर किया भी। आपातकाल में लिखी गईं उसकी कविताएँ इसका जीता-जागता प्रमाण हैं। उसने कहा भी ''कठिन से कठिन समय हो—सब घबरा गए हों—डर गए हों—तब भी कवि चुप नहीं बैठता। वह बिल्कुल अचूक और ठीक-ठीक बोलता है... कवि तो विद्रोही—जन्मजात विद्रोही जीव होता है—ऊपर से लापरवाही दिखाता है—पर लापरवाह वह नहीं होता।''

कवि का शब्द-दर्शन भी कुछ कम नहीं है—''मैं ऐसे शब्द को चाहता हूँ जो गीता में अर्जुन को कर्मप्रेरित करते हैं। कर्मप्रेरित शब्द जिस कवि में उतरते हैं तो निराशा का संहार करते हुए आते हैं। इन शब्दों में कवि का सागर हरहराता है। किसान की तान गाती है, अंकुर हँसता है, कोयल का गान रस घोलता है... ऐसे ही

शब्दों की कलम लगाना चाहता हूँ...।'' कवि की दृष्टि में यही 'वाणी का बड़प्पन' है। इसी कवि ने तो लिखा—वाणी की दीनता/अपनी मैं चीन्हता। तथापि उसने शब्दों की जो धारा बहाई उसमें अचूक को भी बिना कहीं चूके कहने की दक्षता और समर्थता थी। वह जब यह कहता है कि वह तो शब्द का कवि है तब संकेत यह भी है कि शब्द में ही तो सारी सृष्टि समाई हुई है। इन शब्दों तक पहुँच पाना ही तो कवि का पुरुषार्थ है।

मुक्तिबोध जैसे साथी कवि अगर भवानी प्रसाद मिश्र को शैली-सिद्ध और जनवादियों का अग्रणी कवि कहते हैं तो आशय यही है कि कवि ने अपनी कविता में सृष्टि का वह संगीत पकड़ लिया है जिससे वह पहचानी जाती है। 'कवि' शीर्षक उसकी अति प्रसिद्ध कविता की पंक्ति है—''फल लगें ऐसे कि सुख, रस, सार और समर्थ/प्राण-संचारी की शेभा-भर न जिनका अर्थ।'' ऐसे ही प्राण-संचरणकारी शब्दों की एक समृद्ध विरासत लेकर आती है कवि भवानी प्रसाद मिश्र की कविता। सृष्टि और समाज का अन्तःसंगीत उसमें प्रतिपल सुना जा सकता है। सन्नाटा हो या सतपुड़ा के जंगल, पहिला पानी हो या घर की याद सबमें ऐसे शब्दों की भरमार है जो कविता को बहुत पीछे छोड़ सृष्टि की भाषा बन जाते हैं। जरा इन पंक्तियों पर गौर करें—

''सात-सात पहाड़ वाले
बड़े-छोटे झाड़ वाले
शेर वाले बाघ वाले
गरज और दहाड़ वाले
कंप से कनकने जंगल
नींद में डूब हुए-से
ऊँघते अनमने जंगल।''

या फिर

''मेंढक ने शोर बाँधा,
चिड़ियों ने चहक खोली
मुश्किल से लोग सुनते थे
जिनकी कभी बोली
वह मोर वह पपीहा
थकते नहीं हैं जैसे
सुध है कि सुध नहीं है,
खोये हुए हैं ऐसे
ठंडी हवा ने आकर
जब से इन्हें छुआ है
भगवान जाने तबसे
झाड़ों को क्या हुआ है
पत्ती हर-एक भर कर
मस्ती में हिल रही है
डाली कि आम वाली
पीपल से मिल रही है
सूखी पड़ी थी नदिया,
सो भदभदा गयी रे
बरसात आ गई रे, बरसात आ गई रे!''

'प्यार की याद' कविता में इन पंक्तियों पर निगाह फेंकें—

''गिर रहा पानी झरा-झर
हिल रहे पत्ते हरा-हर
बह रही है हवा सर-सर
काँपते हैं प्राण थर-थर।''

यहाँ जो झरा-झर, हरा-हर, सर-सर और थर-थर का संगीत है वह प्रकृति का अपना मौलिक संगीत है जो कविता में ज्यों का त्यों चला आया है। पिता का चित्रण करते हुए कवि ने कमाल किया है—

''मौत के आगे न हिचकें
शेर के आगे न बिचकें
बोल में बादल गरजता
काम में झंझा लरजता।''

अपने आदरणीय साथी लेखक कान्तिकुमार जी से शब्द उधर लेकर कहूँ तो ''यह जबान न शब्दकोश की मदद से गढ़ी जा सकती है, न गलियों या झुग्गियों से उठाई जा सकती है। इसे तो अपनी रोजमर्रा की जिंदगी में आपको एक तीसरी आँख और तीसरा कान लगाकर सीखना होता है।''

कवि भवानी प्रसाद मिश्र को पढ़ते हुए यह नहीं भूलना होगा कि वे बुन्देलखण्ड में जन्मे, पले और बढ़े हैं। बुन्देलखण्ड का लोकजीवन और उसकी प्रकृति उनकी कविता की साँस है। लिखते हुए वे शायद ही कभी इसे भूलते हों अन्यथा कभी न लिख पाते—''सूखी पड़ी थी नदिया, सो भदभदा गई रे।'' इसी कविता में वे ऐसी भी पंक्तियों को लिख गए हैं—''ऐसी घड़ी में उठकर, जीने का फल उठा ले,/अमरत की बीज गठरी, बढ़कर सकल उठा ले/होठों पै गीत जीने के, घर के हल उठा ले..।'' इनमें अमरत (अमृत) का प्रयोग ठेठ बुन्देली प्रयोग है।

बरसात के पानी का चित्र भी इसी कवि का अपना खास हुनर है—

''मैदान, खेत, नद्दी, नाले में बह गया है
तालाब में रुका है, आँगन में रह गया है।''

तालाब में 'रुकने' और आँगन में 'रह' जाने का जो बिम्ब है, वह कवि की सामर्थ्य की गवाही देता है। सृष्टि यहाँ जैसे खुद अपना रिपोर्ताज लिख रही हो। कान्ति कुमार जी की यह बात भी इस सन्दर्भ में मुझे खूब जँचती है कि ''रचनात्मकता के लिए व्याकरण के अति आचार से बचना चाहिए। हिन्दी को हम 'किंग्स इंग्लिस' या 'क्वींस इंग्लिस' नहीं बना सकते।... वास्तव में आंचलिकता, क्षेत्रीयता की प्रवृत्ति हिन्दी को घुट्टी में मिली है... किसान जब देखता है कि उसके शरबती गेहूँ की पैदावार कम हो रही है तो वह शरबती के साथ खेत में कठिया गेहूँ भी बोता है। इससे उसकी फसल की उत्पादक क्षमता बढ़ जाती है। हिन्दी की शरबती में बिहारी, पंजाबी, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी की कठिया मिलाने का हुनर जिनको आता है, वही हिन्दी गद्य का शैलीकार हो सकता है... पीने वाले जानते हैं

कि काकटेल में कुछ ज्यादा ही नशा होता है... हिन्दी का यही तो कमाल है।''

विस्तृत जीवनानुभूति, प्रबल भावावेग, उदात्त विचार-बोध और चहक से भरी काव्य-भाषा लिए यह कवि जिस स्पष्टता और सादगी की कामना करता है, उसने इसकी कविता को उन सारे औपचारिक कला-सरंजामों से बचाया है जिनसे कविता की स्वाभाविक सहजता बाधित होती है। गाँव-देश की आबोहवा और बोली-बानी में अपादमस्तक रचा और डूबा यह कवि शास्त्र-अनभिज्ञ न होकर भी लोक-विज्ञ और लोकसिद्ध है। महानगरीय सभ्यता की आयात की गई श्रम-विरोधी, असहज, अप्राकृतिक, भोगवादी और कृत्रिम जीवन-दृष्टि से स्वयं को मुक्त रखते हुए इसने उस सादगी और सच्चाई को बचाकर रखने की प्रतिज्ञा सी ली है जो तमाम तरह की बंकिम और जटिल काव्यधाराओं की चपेट में आ चुकी है। 'जाहिलबाने' शीर्षक कविता में जब वह तमाम सभ्य लोगों को लेकर लगभग ललकारता हुआ लिखता है—''आप बहुत चिंतित हैं मेरे पिछड़ेपन के मारे/आप सोचते हैं कि सीखता ये भी ढंग हमारे/धोती-कुरता बहुत जोर से लिपटाए हूँ याने।'' तब गाँधी का वह बाना याद आता है जिसे देख चर्चिल छड़कता था। वह 'हिन्द स्वराज' याद आता है जो अपनी स्पष्टता और सादगी के चलते ब्रिटिशों और उनके साम्राज्यवाद के लिए एक खतरनाक विचारागार प्रतीत हुआ। बहुत कुछ ऐसी ही स्थिति प्रगतिवादी, प्रयोगवादी और नयी कविता के बीच कवि भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य की है जो इन सबसे असहमत और अलग होकर भी नकारी नहीं जा सकी कभी। उसका कारण केवल कवि की असाधारण प्रतिभा नहीं, वह विश्व-बोध भी है जिसकी नाल गाँधी से साथ ही भारत के पारम्परिक लोक-बोध और जीवन-बोध से जुड़ी है। कई स्थलों पर कवि ने इसे रेखांकित करते हुए कहा है कि उसकी कविता उस अर्थ में राष्ट्रीय कविता नहीं है जिन अर्थों में मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी आदि की है। विपरीत इसके यह उस लोक की कविता है जो सदियों से इस देश और समाज की पहचान रहा है। इसी देश और समाज को आत्मसात् कर उसने जो रचा और कहा है वह जितना स्थानीय है, उतना ही वैश्विक भी है। जितना सहज और सरल है, उतना ही सादा और गंभीर भी है।

गाँधी की रस-दृष्टि पर विचार करते हुए कुबेरनाथ राय लिखते हैं—''गाँधी जी की दृष्टि संत दृष्टि थी। उसके लिए जो सरल है, ऋजु है, अतीक्ष्ण है, कोमल है, साथ ही अविकल और शान्त है, बिना किसी घाव या अवदमन का है, वही सुन्दर है।'' पत्र मणिपुतुल को लिखते हुए कुबेरनाथ की तुलनात्मक दृष्टि मुखर हो उठती है—''सच पूछ तो रवीन्द्रनाथ की रस-दृष्टि वैसी ही स्वादिष्ट है जैसे छप्पन भोग और छत्तीस व्यंजन। पर गाँधी जी की रस-दृष्टि सादा सरल दूध-भात या गरमागरम ताजी रोटी जैसी है। पहली दृष्टि उपादेय है विशिष्ट व्यक्तियों के लिए, दूसरी है जन-सामान्य के लिए। गाँधी जी का आग्रह सदैव विशिष्टता पर नहीं सामान्यता पर था।'' कुबेरनाथ राय के शब्दों में यह शान्तम् सरलम् सुन्दरम् हमें हमारी वैदिक प्रार्थना के निकट ले जाता है। हमारी सनातन प्रार्थना यही रही है कि हे भगवन, बाह्य सौन्दर्य, बाहरी रौब-दाब, बाहरी चमक-दमक हमें पराभूत न करे, हम भीतर निहित सच्चाई को पहचानें।''

कवि भवानी प्रसाद मिश्र की रस-दृष्टि या फिर काव्य-दृष्टि अगर कुछ है तो यही है।

29, निराला नगर, दुष्यन्त कुमार मार्ग,
भोपाल-462003

जीवन का यथार्थ या घोर निराशावाद : 'पचपन खंभे लाल दीवारें'

वनिता उप्पल

वनिता उप्पल युवा लेखिका एवं दिल्ली विश्वविद्यालय में पीएच.डी. शोधरत।

सन् 1962 में पहली बार प्रकाशित उषा प्रियम्वदा की 'पचपन खंभे लाल दीवारें' पारिवारिक जिम्मेदारियों और निजी आकांक्षाओं के द्वन्द्व में फँसी एक नारी की व्यथा-कथा है। 'सुषमा' अपने परिवार की सबसे बड़ी बेटी है, पढ़ी-लिखी, होनहार और खूबसूरत है। पिता परिवार का बोझ ठीक से उठा नहीं पाते, इसलिए सुषमा की एक गर्ल्स कॉलेज में नौकरी लगने पर परिवार की आर्थिक जिम्मेदारी पूरी तरह सुषमा पर आ जाती है। छोटे भाई-बहनों की पढ़ाई और घर का खर्च चलाने के लिए सुषमा काम करती है। उसकी माँ एक व्यावहारिक नारी है, वह जानती है कि अगर घर की इकलौती कमाऊ सदस्य की शादी कर दी तो बाकी सब भूखों मर जाएंगे, क्योंकि शादी के बाद सुषमा पर पूरा अधिकार उसके ससुराल का होगा। ऐसी सूरत में शायद वह अपने घर का खर्च न चला सके। इसी व्यावहारिक दृष्टि से सुषमा की माँ उसके विवाह की बात हमेशा टाल देती है। सुषमा भी अपने विवाह की आस छोड़ चुकी है और जीवन की इस कड़वी सच्चाई से समझौता कर अब सिर्फ अपने काम और पारिवारिक जिम्मेदारियों पर ध्यान देती है। कॉलेज में उसकी परिश्रमी और ईमानदार प्रकृति के कारण ही उसे कॉलेज गर्ल्स होस्टल की वार्डन बना दिया जाता है, जिससे उसकी

तनख्वाह में 100 रुपये का इजाफा भी होता है।

सुषमा ठहरे हुए पानी जैसे अपने जीवन की आदी हो चुकी थी कि तभी उसके जीवन में नील आता है जो कि उसकी मौसी की पहचान का लड़का है। नील और सुषमा पहली मुलाकात में ही एक-दूजे की ओर खिंच जाते हैं, ज्यों-ज्यों इनकी पहचान बढ़ती है, इनकी करीबी भी बढ़ती जाती है। नील सुषमा से शादी करना चाहता है पर सुषमा इन्कार कर देती है। सुषमा के लिए उसकी निजी कामनाओं की तृप्ति इतना महत्व नहीं रखती जितना उसकी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ। अपने माता-पिता और भाई-बहनों के लिए वह अपनी खुशियों की आहूति दे देती है। नील के बहुत कहने पर भी जब सुषमा उससे शादी के लिए तैयार नहीं होती तो नील उसे छोड़कर हालैण्ड चला जाता है और वह अपने कॉलेज की बिल्डिंग के पचपन खंभों और लाल दीवारों की बन्दी बनकर रह जाती है।

उषा प्रियम्वदा एक स्त्री लेखिका हैं और एक स्त्री होने के नाते उन्होंने स्त्री-पात्र 'सुषमा' के जीवन की त्रासदी की सटीक व्यंजना तो की है, पर जहन में एक सवाल उभरता है—अगर उपन्यास की प्रधान पात्र 'सुषमा' न होकर 'सुशील' यानि एक पुरुष होता तो क्या उषा प्रियम्वदा उसके जीवन की त्रासदी को भी उसी ईमानदारी से दिखलातीं जैसे कि उन्होंने 'सुषमा' के जीवन का चित्र खींचा है? कहने का मतलब यह है कि एक समीक्षक के रूप में मुझे इस उपन्यास में एक मार्मिक कथा से ज्यादा स्त्रीवाद का प्रभाव दिखाई देता है। कहीं-न-कहीं लेखिका 'नारी-जीवन' को दुःखों की एक लम्बी कड़ी दिखाने पर उतारू नजर आती है।

उपन्यास में एक बात और ऐसी है जो बेहद अखरती है—''अगर सुषमा विवाह करने की स्थिति में नहीं है तो आखिर वह नील से रिश्ता जोड़ती ही क्यों है? क्या वह नहीं जानती नर-नारी रिश्ते की मंजिल 'वैवाहिक बंधन' है। जिस वक्त सुषमा नील के साथ घूमती है, उससे एकांत में मिलती है, अपने आस-पास नील की बाँहें महसूस करती है, उस वक्त उसे अपनी उम्र और पारिवारिक जिम्मेदारियाँ

याद क्यों नहीं आती? उसे यह याद क्यों नहीं रहता कि वह नील से शादी नहीं कर सकती, यानि वह इस रिश्ते में उलझती ही क्यों है, क्यों वह शुरू में ही नील से नहीं कह देती कि वह नील तो क्या किसी से भी विवाह करने की स्थिति में नहीं है। यहाँ सुषमा के पक्ष में यही दलील दी जा सकती है कि वह पारिवारिक जिम्मेदारियों और व्यक्तिगत आकांक्षाओं के द्वन्द्व में उलझी हुए नारी है जिस पर कभी व्यक्तिगत कामनाएँ हावी होती हैं, तो कभी पारिवारिक जिम्मेदारियों का एहसास, वह नील के साथ घर बसाना तो चाहती है, पर इसके लिए अपने परिवार को मंझधार में छोड़ देना उसे मंजूर नहीं। नील सुषमा की इस स्थिति को समझता है, इसीलिए वह सुषमा से शादी कर उसके परिवार का बोझ अपने कंधों पर लेना चाहता है, पर सुषमा एक खुद्दार नारी है, अपने परिवार का बोझ नील के कंधों पर डालना उसे मंजूर नहीं। सुषमा की व्यक्तिगत आकांक्षाओं और उत्तरदायित्वों के द्वन्द्व में जीत उत्तरदायित्वों की होती है, क्योंकि वही सुषमा की मूल प्रकृति है—'एक जिम्मेदार नारी' की प्रकृति।

इस उपन्यास को पढ़कर मन में एक सवाल यह भी उठता है, ''क्या सचमुच जीवन इतना निराशामय है जितना कि इस उपन्यास में दिखाया गया है?'' जो लोग अपने परिवार का बोझ उठाते हैं, क्या सचमुच उनके जीवन में 'पचपन खंभों' के सिवा कुछ नहीं बचता? एक बात और, जब व्यक्ति को अपने दायित्वों का भार वहन करना ही है तो फिर इसके लिए रोना क्यों? अफसोस क्या करना? क्या जीवन में कुछ भी ऐसा नहीं जो जीवन को सकारात्मक दृष्टि दे सके? क्या सचमुच सुषमा का जीवन उतना अन्धकारमय है जितना कि उपन्यास में दिखाया गया है? क्या सुषमा के लिए जीवन में उदासी और निराशा के सिवा कुछ नहीं है?

आजादी के बाद जिस तरह हमारे देश में बेरोजगारी की समस्या ने पैर पसारे अगर उस तरफ देखें तो पाएंगे कि ऐसे बहुत से लोग हैं जिनके पास तो नौकरी तक नहीं, जो पढ़े-लिखे होने पर भी अपने परिवार को पालने के लिए चूना-पत्थर तक उठाने का काम करते हैं, फिर भी अवसाद और निराशा में नहीं डूबते। इस बिनाह पर कह सकते हैं कि उषा प्रियम्वदा का यह उपन्यास पारिवारिक जिम्मेदारियों के बोझ तले दबी एक नारी की व्यथा-कथा की मार्मिक व्यंजना तो अवश्य करता है, पर जिस तरह उपन्यास में जीवन को अवसादमय दिखाया गया है, उससे यह कृति 'जीवन की निस्सारता' दिखाने के सिवा कुछ नहीं करती, उपन्यास को पढ़ने के बाद पाठक के हाथ 'घनीभूत पीड़ा' के सिवा कुछ नहीं आता।

पाकेट-ई-20, हाउस नं. 3, सेक्टर-3,
नजदीक रेमाल पब्लिक स्कूल,
रोहिणी, दिल्ली-110085

पहला पुरस्कार निराला जी के हाथों मिला

(आलोचक नामवर सिंह से महावीर अग्रवाल की बातचीत)

महावीर अग्रवाल

जाने-माने साहित्यकार एवं 'सापेक्ष' पत्रिका के संपादक हैं।

महावीर अग्रवाल—नामवर जी, प्रणाम स्वीकारें। पिछले वर्ष नवम्बर 2014 में आपको हिन्दी आलोचना में विशिष्ट योगदान के लिए 'कुवेन्पु राष्ट्रीय पुरस्कार' प्रदान किये जाने की घोषणा की गई। दिल्ली में सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश गोपाल गोवड़ा के हाथों मार्च 2015 में सम्मानित किया गया। बहुत बहुत बधाई आपको। आप कैसा महसूस करते हैं?

नामवर सिंह—महावीर जी, बधाई के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। उम्र कितनी भी हो पुरस्कृत होना अच्छा लगता है, क्योंकि किसी न किसी रूप में यह साहित्य समाज में 'कलम' का सम्मान है, स्वीकृति है। मैं सोचता हूं, सम्मानित होना सभी को अच्छा लगता होगा। एक बात और—अब जीवन के इस मोड़ पर 88 साल की उम्र में पुरस्कार को लेकर वैसा कोई थ्रिल नहीं है, जैसा निराला जी के हाथों पुरस्कार मिलने के समय मेरे मन में था। उमंग की हलचल तो थी ही, मैं उत्साह और खुशी से भरा हुआ था। सच तो यह है कि हमारा लेखक समुदाय सामान्यतः अभावों में जीवन जीता है, लेकिन लेखक भाव के करीब होते हैं और यह भाव-ताव और मोल-भाव न होकर हृदय का भाव है। यह भी देखना चाहिए कि पुरस्कार देने वाले की, और पुरस्कार पाने वाली की प्रामाणिकता कितनी प्रामाणिक

है। रचनाकर्म की प्रामणिकता ही पुरस्कार के प्रति विश्वास और आकर्षण को जन्म देती है। कुल मिलाकर यह प्रसंग सुखद है।

महावीर अग्रवाल—आपके विचार सुनते हुए मुझे, ज्ञानपीठ पुरस्कार के अवसर 28 नवम्बर 1983 को महादेवी वर्मा द्वारा दिये गये वक्तव्य की ये पंक्तियां याद आ रही हैं, ''आप सभी जानते हैं पुरस्कार के लिए साहित्य नहीं लिखा जाता और न कोई पुरस्कार उसे महत्वपूर्ण बनाने में समर्थ है, परन्तु पुरस्कारों की पृष्ठभूमि में जो सुधीजनों की स्वीकृति होती है वही लेखक के संतोष का कारण होती है।''

नामवर सिंह—मेरी भावना को आपने पूरी तरह समझा है। आप कहां-कहां से इतने सार्थक प्रसंग जुटा लेते हैं? आपने अभी कहा पुरस्कारों के संबंध में महादेवी जी के विचार बहुत ही मूल्यवान हैं।

महावीर अग्रवाल—साहित्य जगत में यह माना जाता है, कि हिन्दी के अधिकांश महत्वपूर्ण पुरस्कार आपकी इच्छा के अनुसार प्रदान किए जाते हैं। इस बात में कितनी सत्यता है?

नामवर सिंह—पुरस्कारों की दुनिया में किसी के ऊपर भी आरोप लगाना बहुत सरल है महावीर जी। सच तो यह है कि पुरस्कारों पर निर्णय लेने के लिए कमेटियां बनती हैं। मुझे भी कहीं-कहीं पुरस्कार की कमेटियों में एक सदस्य रखा जाता है। और लोग भी होते हैं। मैं अकेला निर्णायक नहीं रहता। पुरस्कार देने में पुरस्कार समिति के सभी सदस्यों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। भारतीय साहित्य की दुनिया के अनेक महत्वपूर्ण नाम हैं जिनको ज्ञानपीठ पुरस्कार मिलना चाहिए। मैं भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार समिति में वर्षों रहा हूं, इसके बाद भी उनको अपनी इच्छानुसार पुरस्कार नहीं दिलवा सका। कहने का अर्थ यह है कि पुरस्कार समिति में निर्णय या चीजें पूरी तरह किसी एक व्यक्ति के हाथ में नहीं रहतीं। इसके बाद भी यदि मुझे श्रेय दिया जाता है, तो यह मुफ्त में मिलने वाला यश ही है।

महावीर अग्रवाल—सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार साहित्य में बहुत प्रतिष्ठित पुरस्कार रहा है। सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार में तो आप ही की मोनोपली हमेशा बनी रहती थी, ऐसा आज भी कहा जाता है। क्या यह सही है?

नामवर सिंह—यह जरूर सच है कि सोवियत

लैंड नेहरू अवार्ड में लम्बे समय तक मेरी निर्णायक भूमिका रही है। उस दौर की सूची देखने से पता चलेगा कि जिन लोगों को मैंने पुरस्कार दिलाया था, वह उचित था या नहीं? पुरस्कार की दुनिया में सारे अन्तर्विरोधों को देखने और जानने के बाद भी मैं यह जरूर कहूंगा कि पुरस्कार का महत्व उसकी राशि से नहीं आंका जाना चाहिए, बल्कि उसकी गुणवत्ता का, मूल्य दृष्टि का व उसकी चयन प्रक्रिया का महत्व अधिक है।

महावीर अग्रवाल—वर्ष 2008 में 'परम्परा' के विशिष्ट सम्मान के अवसर पर कुछ बातें अधूरी रह गई थीं। पुरस्कारों की संख्या और राशि लगातार बढ़ती जा रही है। पुरस्कार देने वालों की इस प्रवृत्ति पर तात्कालिक रूप से आप क्या कहना चाहेंगे?

नामवर सिंह—हिन्दी में पुरस्कार समूची ताकत के साथ उफान पर है। पुरस्कार देने वालों की सदाशयता लगातार विकास की ओर अग्रसर है। सदाशयता से मेरा आशय बढ़ती हुई पुरस्कार राशि से है। दुर्भाग्य से या सौभाग्य से आज पुरस्कारों की संख्या इतनी अधिक हो गई है कि सभी पुरस्कारों की जानकारी होना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है। किसी तरह जानकारी हो भी जाए लेकिन सभी पुरस्कारों के नाम याद रखना संभव नहीं है। पुरस्कारों की बंदरबांट में अब लाख, दो लाख रुपए के पुरस्कार भी अब सामान्य लगने लगे हैं। इसके बाद भी अनेक पुरस्कार हैं जिनकी राशि लाख से कम है परन्तु उनकी मान्यता लखटकिया पुरस्कारों से कम नहीं है।

महावीर अग्रवाल—नामवर जी साहित्य अकादमी पुरस्कार जब भी किसी को मिलता है कोई न कोई बात ऐसी उठती है कि उस पर विवाद होने लगता है।

नामवर सिंह—यह मनुष्य का स्वभाव है महावीर जी। पुरस्कार की एक सामान्य प्रक्रिया होती है। जहां तक मेरा संबंध है, साहित्य अकादमी के एक्जीक्यूटिव बोर्ड का मैं 1972 से 1977 तक सदस्य था। उस समय एक्जीक्यूटिव बोर्ड का सदस्य जूरी का भी मेम्बर हुआ करता था। आज मैं स्वीकार करता हूं कि मेरे पास एक सूची थी। वह सूची ऐसे लोगों की थी जिन्हें मेरी दृष्टि में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिलना चाहिए था, लेकिन नहीं मिला था। मेरी इच्छा थी कि राही मासूम रजा को पुरस्कार मिले लेकिन ऐसा नहीं हो सका था। उस सूची में यशपाल का नाम सबसे ऊपर था क्योंकि उनके उपन्यास 'झूठा सच' को न देकर अज्ञेय या दिनकर को तब साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया था। उस समय मेरी अपनी सूची में शमशेर, त्रिलोचन, हजारी प्रसाद द्विवेदी, धूमिल, केदारनाथ अग्रवाल, कृष्णा सोबती, रघुवीर सहाय सहित अनेक रचनाकारों के नाम थे। ऐसा काम करने के बाद भी मुझे यदि अपयश मिलता है तो मुझे अपयश भी शिरोधार्य है।

महावीर अग्रवाल—साहित्य अकादमी पुरस्कार का संबंध तथाकथित गणित से है अथवा रचनाकार की श्रेष्ठता से माना जाता है?

नामवर सिंह—यह बात काफी पुरानी हो गई है, लेकिन जरूरी है। मंगलेश डबराल, अरुण कमल और राजेश जोशी को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिले थे। युवाओं की इस श्रृंखला में अलका सरावगी के उपन्यास 'कलिकथाःवाया बाई पास' को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला तो अनेक वरिष्ठ लेखकों की त्योरियां चढ़ गई थी। वहीं अनेक वरिष्ठ और अपने को सुपात्र मानने वाली लेखिकाएं ठगी सी देखती रह गईं थी। मैं कहना यह चाहता हूं कि पुरस्कार का उम्र और वरिष्ठता से कोई सीधा संबंध नहीं है। 'रचना' की विशिष्टता तथा रचनात्मक श्रेष्ठता से है। आप देख ही रहे हैं, पिछले कई वर्षों से हिन्दी में जो साहित्य अकादमी पुरस्कार दिए गए हैं उनमें उदय प्रकाश के पुरस्कृत होने के समय भी कहीं लिखित या मौखिक आपत्ति नहीं देखी गई। ऐसा माना गया कि उदयप्रकाश पुरस्कार के सही हकदार हैं। एक जिनाइन रचनाकार को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है। यही बात वर्ष 2011 में काशीनाथ सिंह के पुरस्कृत होने के समय भी मानी गई। सबसे कम आपत्ति 'काशी का अस्सी' पर हुई थी। इसी तरह 2012 में यह पुरस्कार कवि चन्द्रकांत देवताले को, 2013 में मृदुला गर्ग को और 2014 में रमेशचन्द्र शाह को दिया गया है। पिछले कुछ वर्षों से साहित्य समाज में व्यापक विरोध के स्थान पर स्वीकृति और अनचाही प्रसन्नता का भाव देखा जा रहा है। यह मनुष्य का स्वभाव है। वर्ष 2015 तक की रचना यात्रा में विशिष्टताओं के साथ रचनात्मक श्रेष्ठता की व्यापक स्वीकृति के बाद भी हिन्दी में मुक्तिबोध से लेकर नई पीढ़ी के कई अनूठे रचनाकारों तक अनेकानेक हैं, जिन्हें अभी तक साहित्य अकादमी पुरस्कार नहीं मिला है।

महावीर अग्रवाल—साहित्य अकादमी पुरस्कार जिन्हें नहीं मिला, ऐसे कुछ नाम मुझे भी याद आ रहे हैं—वृंदावन लाल वर्मा, फणीश्वरनाथ रेणु, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मार्कण्डेय, विद्यानिवास मिश्र, नेमिचंद्र जैन, कृष्ण बलदेव वैद्य, मन्नू भंडारी, नासिरा शर्मा, चित्रा मुद्गल, ज्ञानरंजन, संजीव और अखिलेश, आलोक धन्वा, देवीप्रसाद मिश्र सहित पचासों विशिष्ट रचनाकार हैं जिन्हें अभी तक यह पुरस्कार नहीं मिला है। इस संबंध में आप क्या सोचते हैं?

नामवर सिंह—मेरे सोचने और कहने का कोई अर्थ नहीं रह गया है। मैं पुरस्कारों के मामले

में प्रूफ रीडर हूं, जो भूल सुधार का काम करता है। मैने यह काम जीवन भर किया है। उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के संस्कृति विभाग के पुरस्कारों से भी मैं समय-समय पर जुड़ा रहा हूं। उस दौर के पुरस्कार पाने वालों की सूची देखकर साहित्य समाज पता लगा सकता है कि मैं अपने निर्णय में व्यक्तिगत दुश्मनी और विरोध को किनारे रखकर अपने विचार व्यक्त करता हूं। पुरस्कारों के लिए सुपात्र का चयन करते समय हमेशा साधुमत और लोकमत के अनुसार ही मैंने काम किया है। पुरस्कार से जुड़ी एक पुरानी बात जरूर लिखिए—अपने जीवन में साहित्य के लिए पहला पुरस्कार एक सौ रुपए का मुझे निराला जी के हाथों मिला था। यह पुरस्कार उन्होंने मुझे मेरी कविता पर दिया था। यह लगभग सात दशक पुरानी बात है, आनन्द और खुशी की वह तरंग अनोखी थी महावीर जी। उस तरंग की स्मृति मुझे आज भी पुलकित कर देती है।

महावीर अग्रवाल—स्मरण हो तो तनिक विस्तार से बताइए निराला जी के हाथों वह पहला पुरस्कार आपको कब और किस संबंध में प्राप्त हुआ था?

नामवर सिह—जहां तक मुझे स्मरण है, यह 1947 की बात है। उन दिनों मैं उदय प्रताप कालेज में बारहवीं कक्षा का विद्यार्थी था। काशी की सभी साहित्यिक संस्थाओं द्वारा मिलकर सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी की स्वर्ण जयन्ती मनाई गई थी। उस आयोजन में निराला जी के मुख से 'राम की शक्ति पूजा' सुनने का सौभाग्य मिला था। 'हर धनुभंग को उठा हस्त' पढ़ते हुए निराला जी के दाहिने हाथ का ऊपर उठना और स्वरों का वह अनोखा आरोह-अवरोह मैं आज तक नहीं भूला हूं। महाकवि का अभिनन्दन करते हुए एक बड़ी धनराशि निराला जी को उस सभा में अर्पित की गई। वह धनराशि 'औघड़दानी' ने वहीं तत्काल दस युवा लेखकों को पुरस्कार स्वरूप दान कर दी। संयोग से इन भाग्यशाली दस युवकों में एक नाम मेरा भी था। निराला जी की कितनी सार्थक पंक्तियां हैं—

''तुमने जो दिया दान-दान वह
हिन्दी के हित का अभिमान वह
सच्चा कल्याण वह अकथ है।
यह सच है।''

**सम्पादक-सापेक्ष, ए-14 आदर्श नगर,
दुर्ग-491003 (छत्तीसगढ़)**

संस्मरणात्मक लेख

पूरी एक शताब्दी बीत गई कामगाटा मारू की घटना को

डॉ. महीप सिंह

जाने-माने कथाकार और सचेतन कहानी के पुरोधा/संचेतना पत्रिका के संपादक।

सितम्बर 1914 में घटी थी कामगाटा मारू की घटना जिसने भारत के स्वतन्त्रता संघर्ष को एक नई दिशा दी थी। अपने पिछले कनाडा प्रवास के दौरान मैं वैंकुवर के उस समुद्री तट पर भी गया जहाँ सितम्बर 1914 में कनाडा में बसने को इच्छुक भारतीयों को लेकर 'कामगाटा मारू' नामक समुद्री जहाज ने लंगर डाला था। इस जहाज में 376 यात्री थे जिनमें 359 सिख थे। उस समय इन यात्रियों को कनाडा की सरकार ने समुद्र तट पर उतरने नहीं दिया था।

इस देश में अंग्रेजों का राज्य स्थापित हो जाने के बाद अंग्रेज व्यापारी देश का कच्चा माल इंग्लैंड ले जाने लगे और वहाँ से अपनी मिलों द्वारा निर्मित वस्तुओं को भारत भेज कर भरपूर लाभ उठान लगे। सका परिणाम यह हुआ कि भारत का कुटीर उद्योग नष्ट होने लगा। चारों ओर बेकारी और भुखमरी का बोलबाला हो गया। देश के अनेक भागों से मजदूर बनकर संसार के विभिन्न भागों में यूरोपीय जातियों द्वारा बसाई गई बस्तियों में जाने लगे। यह सिलसिला उन्नीसवीं सदी के मध्य और अंतिम वर्षों में प्रारंभ हुआ था। आज ऐसे प्रवासी भारतीय उन बस्तियों में, जो अब विदेशी दासता से मुक्त हो चुकी हैं, बड़े समृद्ध दिखाई देते हैं। किंतु प्रारंभिक वर्षों में उन्होंने उन देशों में जो कष्ट झेले थे, उसकी कहानी बहुत दारुण है। कामागाटा मारू की कहानी भी ऐसी ही है।

पंजाब से निकल कर विदेशों में बसने की इच्छा रखने वाले अधिसंख्य लोगों का रुझान कनाडा और अमेरिका की ओर जाने का था। प्रारंभ में ये भी ब्रिटिश उपनिवेश थे। उस समय इन प्रदेशों में, वहाँ के मूल निवासियों को जंगलों में खदेड़ कर, गोरी चमड़ी वालों ने अपना आधिपत्य जमा लिया था। बाद में इन क्षेत्रों का विकास करने और अपनी समृद्धि के साधनों को बढ़ाने के लिए इन्हें गुलामों/मजूदरों की जरूरत पड़ी। इस काम के लिए असंख्य लोग अफ्रीकी और एशियाई देशों से ले जाए गए। वैधानिक रूप से कनाडा भी ब्रिटिश सम्राट/साम्राज्ञी के अधिकार क्षेत्र में था। इस दृष्टि से भारत सरकार से भी प्रार्थना की गई, किंतु उसका भी कोई परिणाम नहीं निकला। उल्टे, कनाडा सरकार ने अपना एक युद्धपोत, जिस पर तोपें लगी हुई थीं, भारतीय जहाज के पास लाकर खड़ा कर दिया और चेतावनी दी कि बिना बुलाए यहाँ आए भारतीयों, यहाँ से चले जाओ, नहीं तो तुम पर गोली चलाई जाएगी।

इस समाचार से कनाडा और अमेरिका में बसे भारतीयों में भयंकर तनाव फैल गया। वैंकुवर के भारतीयों ने निश्चय किया कि यदि कामागाटा मारू पर कनाडा सरकार गोली चलाए तो नगर को जलाकर राख कर दिया जाए। इस निश्चय के अनुसार वहाँ तैयारियाँ की जाने लगीं।

वैंकुवर के भारतीयों की इस योजना का पता कनाडा सरकार को लग गया और उसने कामागाटा मारू जहाज के साथ किसी प्रकार की ज्यादती करने का इरादा छोड़ दिया। कनाडा सरकार के दुराग्रह को देखते हुए बाबा गुरदित्त सिंह ने अपने जहाज को भारत वापस ले जाने का निश्चय किया। उन्होंने वहाँ की सरकार के सामने यह शर्त रखी कि वापसी के लिए यात्रियों को भोजन सामग्री और जहाज के ईंधन का प्रबंध करें तो वे वापस चले जाएंगे। कनाडा सरकार ने यह शर्त मान ली। लगभग दो महीने तक समुद्र के पानी में खड़े इस जहाज के कई सौ यात्री अनेक यातनापूर्ण घटनाओं के पश्चात् भारत की ओर वापस चल पड़े और दो मास की यात्रा के बाद यह जहाज कोलकाता से 17 मील दूर बजबज बंदरगाह पर आ गया।

कामागाटा मारू जहाज के यात्रियों के प्रति कनाडा की गोरी सरकार ने जिस प्रकार का व्यवहार किया था, उससे लोगों के मन बहुत व्यथित हुए थे। पंजाब के अनेक भागों से जो लोग अमेरिका गए थे, उन्हें भी यह बात बहुत सालती थी कि वहाँ आने वाले चीनियों और जापानियों के प्रति गोरों का इतना उपेक्षा और निरादर भरा व्यवहार नहीं रहता था जितना उनके प्रति। अमेरिकी लोगों ने कुछ समय पूर्व ही अंग्रेजी पराधीनता से मुक्ति पाई थी। चीन और जापान भी स्वतंत्र राष्ट्र थे। अमेरिकी लोग यह कहकर ताना भी मारते थे कि तीस करोड़ भारतीयों पर केवल एक लाख अंग्रेज

शासन करते हैं। इसी का परिणाम था कि अमेरिका में बसे भारतीयों ने अपनी अनेक संस्थाएं गठित कर लीं। फिर सभी ने मिलकर वहाँ गदर पार्टी बनाई और गदर नाम से हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और गुजराती में साइक्लोस्टाइल किया हुआ साप्ताहिक पत्र निकाला और सशस्त्र क्रांति द्वारा देश को स्वतन्त्र करने का अभियान चलाया।

कनाडा की स्थिति भी ऐसी ही थी। जिस वर्ष कामागाटा मारू के यात्रियों को बलात् भारत लौटाया गया था, उसी वर्ष लगभग बारह हजार चीनी और तीन हजार जापानी कनाडा जाकर बसे थे। कनाडा की गोरी सरकार ने उनका स्वागत किया था।

कामागाटा मारू जहाज की वापसी की लंबी यात्रा की अवधि में यात्रियों के मन अंग्रेजी शासन के विरुद्ध पूरी तरह भर चुके थे। एक आकांक्षा सबमें बलवती हो गई थी कि देश लौटकर वे विदेशी सरकार को समाप्त करने में अपना पूरा योगदान दें। अमेरिका में उभरी गदर पार्टी और उसके द्वारा प्रकाशित साहित्य से भी वे पूरी तरह परिचित थे।

भारत की अंग्रेजी सरकार भी इन यात्रियों के प्रति बहुत सशंक थी। कनाडा से वापसी यात्रा के दौरान इनमें से किसी यात्री को मार्ग में पड़ने वाली किसी बंदरगाह पर उतरने नहीं दिया गया। बजबज बंदरगाह पर इन्हें वहाँ से सीधे पंजाब ले जाने के लिए विशेष रेलगाड़ी की व्यवस्था की गई। अधिसंख्य यात्री पंजाब से अपनी जमीन-जायदाद बेचकर सुनहरे भविष्य की आशा में कनाडा के लिए निकले थे। वे चाहते थे कि उन्हें कोलकाता जाने दिया जाए वहाँ से वे अपने पंजाबी भाइयों की सहायता से किसी रोजगार की तलाश कर सकें। बहुत से सिख यात्री कोलकाता के गुरुद्वारे में पहुँचकर स्थानीय सिखों से मिलना चाहते थे। बाबा गुरदित्त सिंह को उस जापानी कंपनी से अपना हिसाब-किताब भी करना था, जिनके जहाज को उसने पट्टे पर लिया था।

कुछ यात्री तो विशेष रेलगाड़ी में सवार हो गए। किंतु अधिकतर यात्री एक जुलूस की शक्ल में कोलकाता की ओर चल पड़े। बाबा गुरदित्त सिंह ने गुरु ग्रंथ साहब की प्रति को अपने सिर पर उठाया हुआ था।

शाम का समय था। सभी सिख यात्री एक स्थान पर बैठकर पाठ कर रहे थे कि पुलिस ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। पिछले अनेक महीनों से यातना झेलते हुए तनावग्रस्त यात्रियों से उनकी तकरार हो गई। वहाँ उपस्थित अंग्रेज अधिकारी की आज्ञा से पुलिस ने इन पर गोलियों की वर्षा कर दी। इससे 18 लोग वहीं मारे गए और 25 बुरी तरह घायल हुए। बाबा गुरदित्त सिंह और उसके अनेक साथी किसी प्रकार उस अराजक स्थिति से बच निकले। बहुत से लोगों को बंदी बनाया गया और उन्हें जबरन पंजाब भेज दिया गया।

बाबा गुरदित्त सिंह की गिरफ्तारी के लिए दस हजार का इनाम घोषित किया गया। वे सात वर्ष तक अज्ञातवास में रहे। फिर 15 नवंबर, 1912 को उन्होंने गुरु नानक देव के जन्म स्थान 'ननकाना साहब' में आत्मम्समर्पण कर दिया।

अमेरिका का गदर आन्दोलन, कामागाटा मारू का दुखांत, फिर पंजाब में उभरा बब्बर अकाली आन्दोलन, असंख्य लोगों का बलिदान, कालापानी और जेल यात्राओं की मंजिलों को पार करता हुआ हमारा स्वतन्त्रता आन्दोलन अपनी परिणति तक पहुँचा। अब संसार के किसी भाग में किसी भारतीय को देखकर कोई यह ताना नहीं दे सकता कि यह किसी स्वतन्त्र देश का नागरिक नहीं है।

किंतु क्या आज तक यह आवश्यक नहीं है कि हम अपनी पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से अपनी युवा पीढ़ी को 'कामागाटा मारू' जैसी रोमांचक घटनाओं से परिचित कराएं।

(गगनांचल के लिए अप्रकाशित आखिरी लेख।)

सी-1/407, पालम विहार, गुड़गांव-122017 (हरियाणा)

तांत्रिक लामा की खोज

बल्लभ डोभाल

लेखक जाने-माने साहित्यकार हैं। 'तिब्बत की बेटी' प्रसिद्ध उपन्यास। दो कविता-संग्रह, 12 कहानी-संग्रह, तीन संस्मरण विशेष रूप से प्रसिद्ध हुए। अध्यात्म धर्म-दर्शन पर तीन पुस्तकें और छह पुस्तकें बाल-साहित्य पर। कुल 36 पुस्तकें प्रकाशित।

उन दिनों बुश्शेल नाम के एक अंग्रेज लेखक की पुस्तक कहीं से मेरे हाथ आई थी, जिसमें पश्चिमी तिब्बत के एक तांत्रिक लामा के आसमान में उड़ने का आंखों देखा वर्णन किया गया था। लेखक का कहना था कि अपनी तिब्बत यात्रा के दौरान जब मैं एक दुर्गम पहाड़ी पर सीधी चढ़ाई तय कर रहा था, तभी अचानक लाल वस्त्रों वाला एक साधु मेरे साथ कदम बढ़ाता दिखाई दिया। पूछने पर उसने बताया कि इसी चढ़ाई को तय कर उसे भी अपने गंतव्य तक पहुंचना है। एक जगह विश्राम के बाद जब मैंने उसे चलने को कहा तो उसने साथ चलने से इंकार कर दिया। मैं अकेले चल पड़ा। आधे से ज्यादा सफर तय करने के बाद जब वह दूर तक पीछे कहीं नजर न आया तो सोचा, इतने कम समय में वह यहां तक भी कैसे पहुंच सकता है, जबकि हमारा गंतव्य अभी कुछ दूर था और शाम घिर आई थी। तभी देखा कि हाथ के पंजों से हवा को चीरता हुआ वह मेरे ऊपर से उड़ा जा रहा है। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैंने पूरी तरह से पहचानने की कोशिश की, लेकिन पहचान न सका। निश्चित पड़ाव पर पहुंचने के बाद वहां लोगों ने बताया कि वही साधु काफी देर पहले से वहां एकांत, पत्थर पर आ बैठा था।

संयोग से उन्हीं दिनों की बात है, जब तिब्बत पर चीन की अवांछनीय घुसपैठ के विरोध में विद्रोह हुआ और हजारों तिब्बतियों को चीनी फौजों द्वारा मौत के घाट उतार दिया गया और अपने कुछ अनुयायियों के साथ दलाईलामा को भारत की शरण लेनी पड़ी।

तिब्बत पहाड़ी प्रदेश है, अतः रहने के लिए शिमला, नैनीताल, मसूरी आदि स्थानों को ही इन लोगों ने चुना। दलाई लामा को हिमाचल प्रदेश में धर्मशाला का जंगलों से घिरा वातावरण अच्छा लगा और अपने धर्मावलम्बी लामाओं के साथ वे यहीं रहने लगे।

यह स्थान प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर है। देश में अंग्रेजी शासन के चलते उन्होंने पहाड़ की इन ऊँचाइयों पर अपने हेडक्वार्टर बना लिए। धर्मशाला पर लॉर्ड मेकलोड की सूबेदारी थी, इसलिए उसके नाम से मेकलोडगंज एक छोटा-सा बाजार तभी बस गया था। वह समय था जब इन गिनी-चुनी दुकानों के बरामदे गोरे अफसर और मेमों से भरे रहते थे। आधी रात के वक्त भी ये अंधेरे जंगल और घाटियां गैस के उजालों से जगमगाया करती थीं। अपने साम्राज्यवादी विस्तार के साथ देश के पहाड़ी प्रदेशों में अपनी सुख-सुविधा बनाए रखने में गोरे शासकों ने जरा भी चूक न आने दी।

सन् 1947 में अंग्रेजों के चले जाने पर यह स्थान सूना पड़ गया। किन्तु 1962 में फिर यकायक तिब्बती शरणार्थियों के आने से घाटियों का मौन टूटा और हजारों की संख्या में आकर इन लोगों ने जंगलों के बीच दूर-दूर तक डेरा डाल दिया। पेड़ों की आड़ लेकर कईयों ने तम्बू गाड़ दिए। कई परिवार पत्थरों का सहारा ले बैठे और कइयों ने अंधेरी गुफाओं और तंग दरारों में रहने का निश्चय कर लिया। जंगल में दूर-दूर तक रंगीन पताकाएं फहराने लगीं। सुबह-शाम घंटे-घड़ियाल और नाना वाद्ययंत्रों की गूंज घाटियों को गुंजाने लगी। जैसे किसी बड़े समारोह का आयोजन किया गया हो।

बच्चे, बूढ़े और महिलाएं अपने परिवार के साथ जगह-जगह बैठे नजर आने लगे। इस तहर बेपनाह रहने की मजबूरी बन आई थी। वहां पहुंचने के बाद ही मालूम हो सका कि उनके बहुत से साथी पीछे छूट गए हैं या मारे गए हैं। लेकिन अपने देश-द्वार से बिछुड़ कर जो लोग यहां पहुंच सके हैं, वे भी इन पेड़ों का आतिथ्य कितनी देर तक पा सकेंगे। जंगल में कौन इन्हें खाना-कपड़ा देगा... बर्फ और बरसात से बचने का क्या उपाय है?... इन लोगों के पास कुछ भी तो नहीं है। मालूम हुआ कि तन पर कपड़ा डालने का अवसर भी उन्हें नहीं मिला।

मैंने देखा, यहां आसपास के ग्रामवासी (गद्दी लोग) इनके प्रति गहरी संवेदना से जुड़कर इनका साथ देने के लिए हर वक्त तैयार हैं। एक दर्शक के नाते मैं उनके लिए क्या कर सकता था। जंगलों में घूमकर उन्हें देख आना, उनके प्रति सहानुभूति प्रकट करना अथवा इशारों से उन्हें धैर्य बनाए रखने तक ही सीमित रह जाना पड़ा। इसी बहाने जंगल-

गुफाओं और दुर्गम स्थानों तक पहुंचने की मेरी इच्छा पूरी होने लगी।

एक दिन जब मैं जंगल से लौट रहा था तभी एक आदमी मेरे रास्ते में आया। खाकी नेकर के ऊपर खाकी रंग की बनियान और बगल में बेंत की डंडी दबाए वह सीधा मेरे पास पहुंचा और पूछा, ''यहीं रहते हो?'' उसकी कद-काठी को देखकर लगा कि तिब्बत का शरणार्थी वह नहीं है। बातचीत में जब मालूम हुआ कि यही सज्जन महापंडित राहुल सांकृत्यायन हैं तो मैं विनम्र हो गया। तिब्बत पर इनके लेख धारावाहिक पढ़े थे... और भी कई एक पुस्तकें मैं पढ़ चुका था। काफी हद तक तिब्बत पर इनकी लेखनी ने मेरी जिज्ञासा को उत्तेजित किया था। इनके यायावर जीवन और खोजी लेखन से प्रभावित हो मैंने स्वयं तिब्बत देखने की इच्छा बना ली। इस बीच तिब्बत पर कनिंघम, ए.एच. फ्रेंके और तिब्बती विद्वान टी. नमग्याल की पुस्तकें पढ़ डालीं। मेरे अध्ययन का एकमात्र प्रयोजन तिब्बत की प्रकृति और उस वातावरण से साक्षात्कार करना था, उस धरती के भीतर छिपे आश्चर्यों को देखना और उसके रहस्यों को जानना था। तिब्बत देखने की लालसा इसलिए भी बनी रही कि इसे 'त्रिविष्टप' देवताओं का 'पंचजन' स्वर्ग कहा है। निश्चय ही वह सर्वाधिक सुन्दर और पवित्र-भूखंड है।

उसके बाद इस स्वर्ग को देखने का एक बार जब मैंने प्रयास किया तो मालूम हुआ कि सीमावर्ती देश चीन और पाकिस्तान के साथ अपने संबंध तनावपूर्ण चल रहे हैं और भारत सरकार ने अपने ही देश के हिस्से लेह-लद्दाख को भी पर्यटकों के लिए बन्द कर दिया है।

सन् 1974 में जब यह पाबंदी हट गई तभी मैं लेह-लद्दाख तक जा सका। सन् 1834 तक यह प्रदेश भी तिब्बत में शामिल था। इसी दौरान जम्मू के महाराजा गुलाब सिंह के वीर सेनापति जोरावर सिंह ने तिब्बत के इस हिस्से को जीत कर अपने अधीन कर लिया था।

इधर राहुल जी से मुलाकात के बाद एक दूसरी तरह की खोज शुरू हुई। उस दिन सुबह से शाम तक मैं उन्हें आसपास कई स्थानों की सैर कराता रहा। धर्मशाला का ऊपरी भाग जो घने जंगलों से घिरा है और जिसके पीछे लगभग बीस हजार फिट से भी अधिक ऊँचाई लिए धौलाधार पर्वतमाला बारहों महीने बर्फ से ढकी रहती है, उसके बारे में मैंने बताया कि जहां से बर्फीली चट्टानें शुरू होती हैं, वहां भी इन लोगों ने डेरा डाल दिया है। बर्फ और बरसात में उनकी मुश्किलों की बात उठी तो राहुल जी बोले, ''ये लोग बर्फीले इलाके के रहने वाले हैं। पहाड़ों पर अधिक से अधिक ऊँचाइयों पर रहना इन्हें पसंद है, इसलिए कोई फर्क नहीं पड़ता।... इनमें कुछ तो लामा हैं। प्रत्येक परिवार की सबसे बड़ी संतान का घर छोड़कर लामा बन जाने का नियम है। ये लोग लाल या पीला चोगा पहने मिलेंगे। इनके बीच कोई पहुंचा हुआ तांत्रिक भी तुम्हें मिल जाएगा। ऐसे किसी तांत्रिक की तलाश तुम करना... और मिल जाए तो मुझे सूचित कर देना।''... उस दिन मेरी डॉयरी पर वे अपने हैप्पी वैली, मसूरी का पता लिख गए।

तांत्रिक लामाओं की तंत्रशक्ति का चमत्कार मैंने कई जगह पढ़ा था। किन्तु बौद्ध-तांत्रिकों से भी पहले नाथों और सिद्धों के समय में... और उससे भी पूर्व आदिकाल में ही तंत्रशक्ति के ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। सारा उत्तर और मध्यकाल तंत्र-मंत्रों के चमत्कार से भरा पड़ा है। बाद में बौद्ध-तांत्रिकों ने भी इस विद्या को अपनाया। फर्क इतना है कि यहां शैली और साधनों की भिन्नता दिखाई देती है, किन्तु सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में किसी प्रकार की भिन्नता नहीं है।

लोगों का मानना है कि तंत्रविद्या की अनेक शक्तियां तांत्रिक लामाओं के पास आज भी सुरक्षित हैं। किन्तु यह सच नहीं है। बौद्ध-धर्म की मंत्रयान शाखा को लेकर राहुल सांकृत्यायन लिखते हैं—

''तिब्बत में बहुत पहले ही तब इस विद्या का लोप हो गया था जब निजी स्वार्थों और क्षुद्र-वासनाओं की पूर्ति के लिए इसका उपयोग किया जाने लगा। भोग-विलास के लिए तंत्र को साधन बनाकर अपार धनराशि मठों में जमा होने लगी। श्रद्धालुओं को उनकी श्रद्धा की पराकाष्ठा तक पहुंचाने या उन्हें पूरी तरह हिप्नोटाइज करने के लिए ये लोग नित नए आविष्कार करने लगे। तांत्रिकों को अच्छी तरह मालूम हो गया था कि उनके तंत्र-मंत्रों की सफलता का अधिक दारोमदार अन्धविश्वासी श्रद्धालुओं की उत्कट इच्छा पर निर्भर करता है। कहना चाहिए कि वह तंत्र और साधना तिब्बत में अब तक जितनी सुरक्षित रह सकी हो, प्रथम तो 1950 में चीनी हस्तक्षेप ने उसे बेअसर किया, उसके बाद जो बचा, वह सन् 1959 के विद्रोह में पूरी तरह बिखर गया। इस बिखराव के बावजूद कोई चमत्कार देखने को मिल जाए, सोचकर मैं कई वर्षों तक इन लोगों से जुड़ा रहा।''

मेरी तलाश घने जंगलों के बीच, नदियों के किनारे अथवा चट्टानों पर पड़ी अंधेरी दरारों के बीच से आरंभ होती है। इन लोगों का मानना था कि तांत्रिक यदि मिल सकता है तो ऐसी ही किसी दुर्गम घाटी अथवा अंधेरी गुफा में बैठा हुआ मिलेगा। किन्तु एक दिन बिना प्रयास के ही तांत्रिक लामा दिखाई दिया।

मैंने देखा कि एक लामा अपने हथेलियों से जांघों को पीटता हुआ भीड़ में आ खड़ा हुआ। नंगी जांघों पर हथेलियों की थाप देने के साथ-साथ वह कुछ बोलता चला जा रहा है। उसे देखकर दूसरे लोग एक किनारे हट गए, परन्तु कुछ तिब्बतियों ने वहां आकर उसे घेर लिया। वे इसे पकड़ना चाहते थे, लेकिन हिम्मत नहीं जुटा पाए। जब काफी भीड़ आसपास जमा हो

गई तो कुछ ने आगे बढ़कर फुर्ती से उसकी बाहें पकड़ लीं। मजबूती से पकड़ में आने के बावजूद वह जांघों को पीटता रहा। लगा कि कोई दैवी-शक्ति उसके बदन में आ गई है। इतनी मजबूती से पकड़े जाने के बावजूद वह जांघों पर हाथ मारता ही रहा। इतने में दूसरे लोग भी उस पर झपट पड़े। अब कई हाथों की पकड़ से वह अपने को छुड़ाने की चेष्टा करने लगा। उसके प्रयत्नों को देखते हुए लगता था कि वह पकड़ से छूट गया तो कइयों को नोच डालेगा। शायद इसी कारण उस पर मजबूत पकड़ की गई। इस बीच वह पूरी तरह गुस्से से भर आया। अब उससे हिलते न बना तो वह लोगों के मुँह पर थूकने लगा। वह दांतों से काटने की हरकतें करने लगा। वह क्रोध में आकर अपनी भाषा में चीखने लगा, ''छोड़ दो मुझे... छोड़ो... तुम सब कायर हो... तुमने हानों (चीनियों) का मुकाबला नहीं किया... छोड़ दो!...''

लेकिन तब उसे छोड़ देना खतरे से खाली नहीं था। इसलिए पकड़ और मजबूती से की गई। तब तो वह जोर से उछलने लगा और उछलते हुए वहीं पेशाब छोड़ दी। शायद ऐसा करने से लोग उसे छोड़ देंगे। किन्तु हाथ-पैर गीले हो जाने के बावजूद साथियों ने उसे छोड़ा नहीं... और वैसे ही उठाकर जंगल की ओर ले गए।

बाद में एक ने बताया कि वह हमारा तांत्रिक लामा है, उसका नाम छांवा है। वह अपनी तंत्र-विद्या से सबका इलाज करता आया है। भूत-प्रेत और प्रेत-बाधाओं से लड़ने की शक्ति उसके पास है।

किन्तु उसकी बातों से लगता था कि हानों (चीनियों) से बदला लेने की इच्छा उसे पागल बनाए है। कायरों की तरह भागने वाले अपने ही लोगों के प्रति उनका मन घृणा से भर उठा है। भगवान बुद्ध की भूमि में नरसंहार और अत्याचार देख तांत्रिक लामा को मतिभ्रम हो गया है।

उस आदमी ने बताया कि तांत्रिक लामा का स्वभाव पहले उतना ही कोमल था, जितना अब वह उग्र है। बचपन से ही वह सेवा-कार्य में लगा रहा। भगवान की चिट्ठियां पढ़कर लोगों को सुनाता रहा। उसके पास भगवान की चिट्ठियों का ढेर लगा है। उसका गुरु ग्यामछल लामा तिब्बत का सबसे बड़ा तांत्रिक था। वह किसी को अपना उत्तराधिकारी नहीं बनाना चाहता था, पर छांवा के पास भगवान की चिट्ठियां देखकर उसने उसे शिष्य बना लिया और तंत्र-विद्या की सारी शक्ति उसे सौंप दी।

पहली बार तांत्रिक लामा का ऐसा रूप देखकर मैं भयभीत हो गया। उन्हीं लोगों ने बताया कि अब वह पूरी तरह विक्षिप्त हो चुका है और नंग-धड़ंग वहीं जंगलों में घूमता रहता है।

इस घटना के बाद कुछ दिनों तक मेरे घूमने-फिरने का कार्यक्रम बंद हो गया। डर था कि कहीं अकेले में वह सामने आ गया तो मार ही डालेगा। किन्तु सोचकर संतोष था कि यह अकेले मेरा सिरदर्द नहीं है, यहां आसपास गांवों की औरतें भी घास-लकड़ी के लिए जंगल जाया करती हैं, उनका क्या होगा?... इस बीच मालूम हुआ कि तांत्रिक लामा को इलाज के लिए अमृतसर भेज दिया गया है। लोगों को तत्काल खतरे से बचाने का शायद यही एक उपाय था।

उन दिनों इस तरह की घटनाएं अक्सर वहां घटने लगीं। एक बार जंगल से लौटते हुए एक झाड़ी के अंदर गुनगुनाने की आवाज सुनाई दी। देखा कि कुछ लामा एक घेरा बनाकर झाड़ी के अंदर बैठे हुए हैं और उनके बीचोंबीच एक लाश खुली पड़ी है। लाश घेरकर बैठे लामाओं के पास पुस्तकें थीं और सभी उनसे पढ़कर एक स्वर में मंत्रोच्चार करते जा रहे थे।

झाड़ी की ओट लेकर सांसे बंद किए मैं उस दृश्य को देखने लगा। तभी एक लामा की नजर मुझ पर पड़ी। देखते ही वह डंडा उठाकर मेरी ओर लपका। उसकी क्रोध-मुद्रा देखकर मैं समझ गया कि वह क्यों बाहर आ रहा है। यदि मैं भागता नहीं तो वह निश्चित ही हमला कर देता। जब तक वह झाड़ियों से उलझता-बचता पगडंडी पर पहुंचा, मैं वहां से फूट चुका था। बाजार में भीड़ के बीच आकर ही दम लिया।

लोगों से पूछने पर मालूम हुआ कि अपने रीति-रिवाजों के तहत लामा लोग मृतक का अंतिम संस्कार कर रहे थे। ऐसे समय पर किसी अन्य का वहां उपस्थित होना शुभ नहीं माना जाता। यहां सबका अंतिम संस्कार भी एक जैसा नहीं होता।

लामा लोग मृतक को बीच में रखकर मंत्रोच्चारण करते हैं। इन्हीं मंत्रों के बीच से उनकी अंतिम-संस्कार की क्रिया-विधि का उल्लेख मिलता है। किसी के लिए जल-प्रवाह का विधान है तो किसी को अग्नि को अर्पण करना है और किसी के टुकड़े कर पेड़ों पर लटका देना और पशु-पक्षियों के हवाले करना अथवा मिट्टी में गाड़ देना आदि, अनेक तरह से मृतक का संस्कार किया जाता है।

कोई महापुरुष मर जाए तो दवाइयों द्वारा उसके मांस को गला दिया जाता है। फिर किसी धातु अथवा पैरिस-प्लास्टर से उसके अस्थि-पंजर को ज्यों का त्यों भर दिया जाता है। इसे कायाकल्प कहते हैं। दलाई लामा के गुरु का कायाकल्प भी इसी तरह किया गया था। अपर धर्मशाला में जिस कोठरी के अंदर वे रहते थे, कायाकल्प के बाद वहीं उनका स्थान बना दिया गया है।

अपने रीति-रिवाजों के बारे में ये लोग किसी को कुछ बताना नहीं चाहते। तिब्बत यों भी दुनिया से कटकर अलग-थलग रहा है। इसलिए अपने समुदाय के बाहर वहां का आदमी आज भी किसी प्रकार की अंतरंगता

स्थापित नहीं करना चाहता। इस प्रकार की जानकारियां भी तब सामने आ सकीं, जब जंगल में जगह-जगह पेड़ों पर मांसपिंड लटके दिखाई दिए और नदियों के किनारे बोरियों में बंद सड़ी-गली लाशें मिलने लगीं। इस तरह अनेक शिकायतें जब जिलाधीश (कांगड़ा) के पास पहुंची तो छानबीन के बाद वे दलाई लामा से मिले और आपसी बातचीत द्वारा समस्या का हल खोजा गया।

इन्हीं दिनों एक लामा के आसमान में उड़ने की चर्चा सामने आई। लोगों का मानना था कि तांत्रिक ही एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी तक उड़कर जा सकता है। लेकिन वह कहां से उड़ा और कहां पहुंचा, इसकी सूचना किसी ने नहीं दी। ऊँचाई पर चट्टानों और अंधेरी दरारों के बीच कुछ लामा रहते तो हैं, पर वे आसानी से दिखने में नहीं आते। यह भी सच है कि जंगली जानवरों, बाघ-भालुओं के रहने की जगह पर वे जबरन कब्जा किए बैठे हैं।

मैंने सोचा, पहले इन्हीं लोगों को देखा जाए, जिन्होंने जानबूझकर ऐसे बीहड़ स्थानों को चुना है। ऐसी जगह रहने के लिए उनके पास क्या साधन है। हो सकता है इन्हीं के बीच कोई तांत्रिक मिल जाए। मैंने दुर्गम घाटियों और खाई-खन्दकों के बीच उन्हें खोजना शुरू कर दिया।

एक दिन वहां ऊंची चट्टान पर धुएं की लपट दिखाई दी। समझने में देर न लगी कि कोई वहां रह रहा है। सीधी चढ़ाई का रास्ता तय कर मैं वहां पहुंच तो गया, किन्तु धुएं वाली जगह तक पहुंचना संभव न था। वहां रहने वाले ने मौके की जगह चुनी थी। उसका यह चुनाव इसलिए भी ठीक था कि आसानी से कोई वहां पहुंच न पाए। किन्तु मेरी उत्सुकता कब चूकने वाली थी। किसी तरह घास के ऊपर मजबूती से पैर जमाता हाथों से चट्टान का सहारा लेकर मैं वहां पहुंच गया। देखा, दरार के अंदर एक नंग-धड़ंग लामा धूनी रमाए बैठा है। अचानक मुझे वहां आया देख उसकी आंखें आश्चर्य से फैल गई और भौंहें तन गईं। देखते ही उसने पूछा, 'तुम कौन?'

उसका इस तरह पूछ लेना बड़ी बात नहीं लगी। समझने की बात यह कि परिस्थितियां आदमी को बहुत कुछ सिखाती हैं। यहां आने के बाद ये लोग टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी बोलने लगे थे। फिर थोड़े ही समय के अंदर इन्हें हर विषय पर सीधे बोलने की महारत कैसे हासिल हो गई। पिछले सत्ताईस वर्षों में अपने लोगों ने इनकी भाषा को मोटे तौर पर समझने की भी कोशिश नहीं की, जबकि यहां आने के तुरंत बाद ही इन्होंने भाषाओं के साथ उन देशों की रीति-नीति को भी जान लिया।

अपने पूछे गए प्रश्न का उत्तर न पाने पर लामा ने इस तरह घूर कर देखा जैसे अभी कुछ कर बैठेगा। देखकर अनायास मेरे हाथ जुड़ गए। मैं कुछ कहने की स्थिति में न रह गया। जैसे कि लामा ने कुछ कर दिया है। वहां से हट जाने की अपेक्षा में चुपचाप उसके धूने पर जा बैठा। यकायक मेरी नजर धूने के पास पड़ी हुई खोपड़ियों पर जा टिकीं। इनमें कुछ पानी से भरी हुई थीं, कुछ खाली और कुछेक नई-पुरानी खोपड़ियां अंधेरे कोने की ओर लुढ़की नजर आ रही थीं। धूने के पास ही आदमी के हाथ-पैरों की लम्बी हड्डियों का ढेर लगा देख मैं भीतर तक कांप गया। लगता था अभी-अभी इन हड्डियों से मांस नोंचा गया है। वहीं पत्थर पर हाथों का समूचा अस्थि-पंजर देख मैं आतंकित हुआ। देखा कि लामा ने लंबे बालों का आसन बनाया है। सोचा, इतने लम्बे बाल स्त्री के ही हो सकते हैं। गुफा के अंदर हड्डियां और बालों के गुच्छे जगह-जगह बिखरे देख मैं सोच न सका कि यह सब क्योंकर है। मुझे लगा कि लामा जरूर मांस खाता है। उसकी खुरदरी काली चमड़ी वाले चेहरे पर बकरे जैसी दाढ़ी, मूंछों की जगह भूरे बालों के गुच्छे और आड़े-तिरछे दाँत... कुल मिलाकर वह मुझे खूंखार जंगली जात का लग रहा था। मन ही मन एक दहशत से मेरा अंतर कांप गया। लगा कि यहां आने का दुःसाहस कर मैंने स्वयं को मौत के हवाले कर दिया है। क्या पता अब वह मुझे यहां से निकलने भी देगा या नहीं।

इन चंद क्षणों के अंदर मैं कितना टूट गया, कितना निरीह और निराश हो गया, यह भांपकर उसने एक मुस्कान भरी। उसे देखकर लगा कि अब साक्षात् मृत्यु ही सामने मुस्कुरा रही है। इतनी लंबी मुस्कान कि उसके भद्दे और पैने दाँत बाहर निकले दिखाई दिए। उस क्रूर और हिंसक मुस्कान के मैं कई-कई अर्थ निकालने लगा। मेरे दिल की धड़कन तब और बढ़ गई जब उसने लोहे की एक तलवारनुमा चीज को धूने के भीतर घोंस दिया और उठकर बाहर की ओर झांका। अपने दाहिने और बाएं बाजू झांकते हुए वह दरार के मुख पर आ खड़ा हुआ। फिर झटके से बाहर निकल गया। जैसे किसी ने जबरन उसे बाहर खींच लिया हो।

मैं भीतर धूने के पास बैठा सोचने लगा, जाने अब वह क्या करेगा। वह बाहर गया तो किसलिए?... धूने के अंदर लोहा तपाने के पीछे क्या राज है। क्या वह मुझे मार डालना चाहता है, आदि... कई तरह की आशंकाएं मुझे कचोटने लगीं। निश्चय ही आज कुछ होने वाला है। इसी का नाम चमत्कार है, जब आदमी को कुछ नहीं सूझता। सभी कुछ अदृश्य और अस्पष्ट रूप से घटने लगता है।

किसी तरह देर के बाद वहां से निकलने की बात मन में आई। मैंने बाहर की ओर झांका, फिर दरार के मुख पर आकर इधर-उधर देखा, कहीं कुछ दिखने में नहीं आया। इतनी फुर्ती के साथ वह कहां निकल गया। सोचा, यहां से निकल भागने का इससे अच्छा अवसर फिर न मिलेगा, लामा जाने कहां चला गया था।

मैं यह सब सोच तो गया, पर आसानी से निकल भागने का कोई रास्ता वहां न था। वहां सुरक्षित से निकलने के लिए समय और सबसे अधिक धैर्य की जरूरत थी। मैं इस तरह आतंकित हो चुका था कि मेरी सारी शक्तियां क्षीण पड़ गईं। बदन में कंपकपी हो आई। सोचा, ऐसी हालत में यहां से भागते हुए कहीं हाथ-पैर रपट गए तो पहाड़ के नीचे हजारों फीट खाई तक पहुंचने में वक्त नहीं लगेगा।

लेकिन ऐसी मौत से खाई में कूद जाना अच्छा है, सोचकर मैंने बचे-खुचे साहस को समेटा और वहां से निकलने की युक्ति बना ली। कुछ ही देर बाद मैं उस जगह से दूर निकल आया। सामने वाली पहाड़ी पर आकर देर तक उसके वापस लौटने की प्रतीक्षा करने लगा। सोचता रहा कि अब वह लौटकर वापस दरार में पहुंचेगा... और मुझे वहां से गायब पाकर उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, यही मैं देखना चाहता था। लेकिन वापस लौटते हुए वह दिखाई न दिया।

पिछली गर्मियों में एक लंबे अंतराल के बाद जब मैं वहां पहुंचा, तो देखा दरार में उतरने के लिए वहां रास्ता जैसा बना हुआ है। शायद अब आम आदमी वहां आने-जाने लगा है। एक बार फिर उसे देखने के लिए मैं दरार में उतर गया। लेकिन अब लामा वहां नहीं था। उसकी जगह कोई दूसरा अवधूत ही वहां बैठा हुआ पाया। आज से दस वर्ष पहले लाम ने उसे अपना शिष्य बनाया था। तांत्रिक लामा के साथ चौबीस वर्ष पहले की घटना का वर्णन उससे किया तो बोला, ''तांत्रिक किसी को नुकसान नहीं पहुंचाता। आदमी के अंदर अपनी ही कमजोरियां उसे डराती हैं। हमें देखो। हम भी मरघट में रहते हैं। हरिद्वार में कनखल शमशान को चेताया, बनारस में हरिश्चन्द्र-घाट में रहे, जहां महाशमशान है, उस शमशान की आग कभी बुझती ही नहीं। अब यहां बैठे हैं। हम लोग शमशानों में ही रहते हैं।'...

''तो यहां भी कोई शमशान है?'' मैंने पूछा।

''है न! तभी तो बैठे हैं।''

''कहते हैं शमशान में भूतों का वास रहता है।''

''हां, भूत-प्रेत रहते हैं। यहां भी गई बार आ जाते हैं। लेकिन दरार के अंदर नहीं आते।'' कहकर बाबा जोर से हंस देता है, ''भीतर कैसे आ सकते हैं, जानते हैं कि उनसे भी बड़ा भूत अंदर बैठा है।''

सचमुच यह भी किसी भूत-प्रेत से कम नहीं। आम बाबा लोगों की तरह बिगड़ैल प्रकृति का आदमी वह नहीं लगा। इसलिए उससे कुछ बातें भी हो सकीं। तंत्र-मंत्र और साधना के बारे में पूछने पर वह बोला कि इन सब बातों को समझने और समझाने के लिए समय चाहिए... और फिर आदमी के लिए हर बात का समझना जरूरी नहीं है। जिस दिशा में जाना नहीं, उसका रास्ता पूछने से भी क्या... कहते हुए बाबा ने मेरी कई बातों को टाल दिया।

''लेकिन आप जो तंत्र साधना करते हैं, उसका कोई तो उद्देश्य होगा?'' मैंने पूछा।

उत्तर में वह बोला, ''उद्देश्य है केवल कर्म करना। वैसे उद्देश्य का मतलब फल की इच्छा रखना ही होता है। हम लोगों को न फल की इच्छा होती है न उद्देश्य से ही कोई मतलब है, हमारा उद्देश्य वक्त काटना है, समय को व्यतीत करना।''... वह कैसे कटता है, बाबा वही बताने लगता है।

सचमुच बड़ी बेढब दिनचर्या है। कभी सुबह से शाम तक... और रात-रात धूने के पास बैठकर निकाल देना, कभी घंटों तक समाधि में बैठ जाना, अन्न-जल के बिना कई-कई दिन रह जाना... कड़कती ठंड, बर्फ और बरसात को नंगे शरीर पर झेलना... आदि बातें साधना के अंतर्गत आती हैं। देह के स्तर की यह साधना कहीं न कहीं भीतर से साधक को मजबूत करती है।

तंत्र-मंत्र में अपना विश्वास नहीं के बराबर है। बाबा लोगों की तंत्र-शक्ति का चमत्कार आश्चर्य में डाल देने वाला भले साबित हो, किंतु मेरे लिए एक आदमी का दुनिया के प्रपंचों से हटकर बीहड़-बियावानों में जीवन की संपूर्ण सुविधाओं को नकारते हुए सुरक्षित रह पाना सबसे बड़ा आश्चर्य का कारण बनता है। यही साधना है तो इसकी चरम उपलब्धि तब सामने आती है, जब विषम स्थिति और वातावरण में भी कोई अपने को निर्द्वंद्व और निस्पृह छोड़ देता है। इतना साहस और धैर्य पा जाना क्या बहुत कुछ पा जाने के बराबर नही है?... अपने आप में क्या यही एक बड़ा चमत्कार नहीं?

डब्ल्यू-46, सैक्टर-12,
नौएडा-201301 (उ.प्र.)

लोक कलाकार भिखारी ठाकुर का जीवनी अंश

लागल झुलनी के धक्का, बलमु कलकत्ता...

अंकुश्री

लोक साहित्य की जानकार अंकुश्री की रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

आज जिस तरह समाज भ्रष्टाचार और असंतोष से ग्रस्त है, उसी तरह एक शतक पूर्व समाज में रुढ़िवाद और ढकोसला बुरी तरह प्रभावी था। बेरोजगारी उस समय भी थी, आज भी है। लोग उस समय भी गरीब थे, आज भी हैं। एक शतक पूर्व रुढ़िवाद और ढकोसले के कारण समाज में अनेक बुराइयां फैली हुई थीं। उन स्थितियों को भिखारी ठाकुर ने बहुत गहराई और मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। उनमें आमजन की बातों को आमजन की भाषा में आमजन के लिये प्रस्तुत करने की अद्‌भुत क्षमता थी।

नाचना और गाना बहुत आसान है। कई लोग नाचने-गाने में लगे हुए हैं। इसमें लोग शौकिया भी लगे हुए हैं और व्यावसायिक तौर पर भी। लेकिन पहचान उन्हीं की बन पाती है, जिनकी प्रस्तुति जन-समस्याओं पर आधारित रहती है। भिखारी ठाकुर एक शतक से भी अधिक समय से लोगों की याद में इसीलिये समाये हुए हैं कि उन्होंने आम जनों के बीच की बातों को अपनी कला के माध्यम से प्रस्तुत किया था।

बेटी के जन्म को समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता था। इसका एक प्रमुख कारण दहेज जुटाने की परेशानी थी। गरीबी से त्रस्त पिता दहेज-दैत्य से घबरा कर अपनी बेटी

को विवाह के अयोग्य वर से भी ब्याह देते थे। बेमेल विवाह में नाबलिक लड़कियों का विवाह उसके पिता से भी अधिक आयु के पुरुष से कर दी जाती थी–

''पति कर देखि गति,
पागल भइल मति।
रोई-रोई करीला बिहान मोर बाबूजी।।
हुकुर-हुकुर छाती,
करत बाटे दिन राती।
अधजीव दुलहा पसंद कल बाबूजी।।''

बेटी के विवाह का ही एक और घृणित रूप था, बेटी को बेच देना। यह भी बेमेल विवाह ही था–

''रोअत बानी सिर धुनि,
इहे छछनल सुनि।
बेटी मति बेचे देही
केहू के हो बाबूजी।।''

विवाह के बाद बेटी तड़पने लगती है। वह कहती है–

''रुपया गिनाई लिहल,
पगहा धराई दिहल।
चेरिया के छेरिया
बनवल हो बाबूजी।।''

× × ×

''बर खोजे चलि गइल,
माल लेके घरे धइल।
दादा लेखा खोजल
दुलहवा हो बाबूजी।।''

पहले बाप-दादा के नाम और पैतृक सम्पत्ति के आधार पर लोगों का विवाह हो जाता था। आज की तरह तब रोजगारोन्मुखी सोच नहीं थी। लेकिन विवाह के बाद पत्नी के आते निजी आवश्यकताएं जब सामने उभर कर आती थीं तो नवविवाहित युवा के मन में रोजगार की लालसा शुरू हो जाती थी। वह रोजगार की तलाश में चल पड़ते थे। वे अपने ग्रामीण या संबंधी के शहरी निवास पर पहुंचते थे और उन्हीं के माध्यम से देर-सबेर किसी रोजगार में लग जाते थे। पिछले शतक में बिहारवासियों के लिये कलकत्ता एक बहुत बड़ा पनाहगार था–

''लागल झुलनी के धक्का

बलमु कलकत्ता पहुंच गइलन।''

रोजगार की तलाश में बाहर गये मर्दों की पत्नी घर में आशा और निराशा के बीच जीवन जीती थी—

''करि के गइलन बलमुआं निरासा।
गवना करा के संइया घरे छोड़ि दिहलन।
गइलन बिदेस हमें करि के बेकासा।।''

पत्नी अपने पति को उलाहना देती हे कि परदेश में आखिर ऐसी क्या बात है कि यहां उसे तरपती छोड़ कर वहां लुभा गये हैं—

''गवना कराइ सैंया घर बइठवले से
अपने लोभइले परदेस से विदेसिया।
चढ़ली जवनिया बैरन भइली हमारी से
के मोर हरिहें कलेस रे बिदेसिया।।''

परदेश गये पति की याद में पत्नी हमेशा घुलती रहती है। दिन हो या रात, काटे नहीं कटती है। पति के वियोग में वह व्याकुल रहती है—

''दिनवा ना बीते राम
तोरी इन्तजरिया में,
नरिया नयनवा ना नीर रे विदेसिया।
धरी राति गइली राम
पिछली पहरवा से
लहरे करेजवा हमार रे विदेसिया।।''

अपने बिदेसिया के लिये बटोहिया (पथिक) का सहारा लेती है। उससे कहती है—

''पिया अइतन बुनिया में,
राखि लिहतन दुनिया में,
अखड़ेला अधिक सावनवां बटोहिया।

× × ×

पलंग बा सुनवा, का कइलीं अवगुनवां? से
भारी त महीना ह फगुनवा बटोहिया।

× × ×

चढ़ी बइसाख जब, लगन पहुंची तब, जेठवा
दबाई मोरा हेठवा बटोहिया।

मंगल करी कलोल, घर-घर बाजी ढोल, कहत
भिखारी खोज पिया के बटोहिया।''

विरह की ज्वाला में दहकती पत्नी सोचती है—

''काह कइलीं चुकवा कि छोड़ल मुलुकवा,
कइल ना दिलवा के हलिया अलमुआं!
सामली सुरतिया सालत बाटे छतिया में,
एको नाहीं पंतिया भेजवल बलमुआ!
घर में अकेले बानी ईश्वर जी राख पानी,
चढ़ल जवानी माटी मिलता बलमुआं!
विरह के कूपवा में, जोगिनी के रूपवा में,
तोहरे पर अलख जगइबो बलमुआं!
ताक तानी चारू ओर पिया आके कर सोर,
लवटो अभागिनी के भगिया बलमुआं!
कहत भिखारी नाईं, आस नइखे एको पाई,
हमरा से होखे के दीदार हो बलमुआं!''

परदेश गये पति को अपना संदेश पहुंचाने के लिए पत्नी व्याकुल रहती है। गांव के जो लोग भी परदेश से आते-जाते हैं, अवसर पाकर उस बटोहिया से वह संदेश भिजवाती है। वहां परदेश में पति मेहनत-मजदूरी के अपने दैनन्दिन जीवन में बुरी तरह व्यस्त है। दिन भर इतना खटता है कि रात में सोते ही नींद की गोद में समा जाता है। किन्तु जब उसे बटोहिया से अपनी प्रेयसी का संदेश मिलता है तो वह बेचैन हो जाता है। घर जाने के लिये वह व्याकुल हो जाता है। वह घर की ओर चल पड़ता है। दूर की यात्रा, साधन का अभाव, विदेशिया को घर पहुंचते रात हो जाती है। रात के सन्नाटे में वह दरवाजा खटखटाता है तो पत्नी दूसरा ही सोच बैठती है। चित्रण देखा जाये—

''रात कुछ बीति गइले दुअरा बिदेसी अइलें।
कहलन खोलि द केवाड़ी प्यारी धनियां।।
चोरवा समुझ कर लोरवा गिरन लागे।
रोई-रोई सोरवा करेली प्यारी धनियां।।
नाहीं हम हईं राम ठग बटमुरवा से।
नाहीं हम हईं डाकू-चोर रे सांवरिया।।
पिया घरे रहित त धई बान्हि मरते से।
केकरा से कहीं कर जोर से बिदेसिया।।
खोलु-खोलु धनिया से बजर केवड़िया हो।
हम हईं पियवा तोहार रे सांवरिया।।
अतना सुनत धनी खोलली केवरिया से।
दुअरा पर देखे पिया ठाढ़ रे सांवरिया।।''

समाज की विसंगतियों पर भिखारी ठाकुर ने खुल कर कलम चलायी है और उसे मंच पर भी उतारा है। बढ़े हुए फैशन के कुत्सित रूप पर वे कहते हैं—

''सोना चानी देहे में भरल,
बीता भर के झुला।
छव गज के साड़ी पहिरली,
तबहूं गतर खुला।।''

× × ×

''देखि के भइली निखार,
जियरा जरत बा हमार।
नीहखे तनिको अखतियार,
दिहतीं देस से निकार।।''

नशा परिवार और समाज के लिये कितना बुरा है यह जगजाहिर है। भिखारी ठाकुर लोगों को बताते हैं—

''बेटा-बेटी भूखे मुअसु,
माई-बाबू भइलन सूर।
मेहर के तन पर बस्तर नइखे,
बबुआ नसा में चूर।।''

जवानी के जोश में लोग होश खो बैठते हैं। लेकिन बुढ़ापा आते शरीर की क्या गति होती है, इसका चित्रण प्रस्तुत है—

''बनल बा जवानी तबले करत बाड़ मजवा।

थाकला पर दांत से ना टूटी नरम खजवा।।
लरिका बजा के भागी थपरी के बजवा।
गावत भिखारी नया गीत के तरजवा।।''

शिशु-जन्म से घर-परिवार में खुशी व्याप्त हो जाती है। लेकिन भिखारी ठाकुर ने समाज की सच्चाई को यों उजागर किया है—

''मने मन गाज बाड़ भइली लरकोरवा।
बबुआ के बोली लागी पत्थल के कठोरवा।।''

× × ×

''थाक जाई देह चाम होई ढकढोला।
नांव परी दोसर, पुकार के भकोला।।''

भिखारी ठाकुर का जन्म 18 दिसम्बर, 1887 को सारण जिला बिहार के कुतुबपुरा गांव में हुआ था। यह गांव दियारा (नदियों की दो या अधिक धाराओं के बीच का) क्षेत्र था। सामान्य गांव की तुलना में दियारा क्षेत्र का जन-जीवन अधिक उद्यमतापूर्ण होता है। इनके पिता जी का नाम दलसिंगार ठाकुर ओर माता का नाम शिवकली देवी था। नौ वर्षों तक उन्होंने विद्यालय का मुँह नहीं देखा था। जब विद्यालय गये तो एक वर्ष में भी कुछ पढ़-लिख नहीं पाये। विद्यालय जाना छोड़ कर वे अपने जातिगत पेशे में लग गये। वे जाति के हज्जाम थे। लोगों की हजामत बनाने लगे—

''माथ कमाई दीहीं बोलाहटा,
छुटे ना कइची कर से।
खाय मजूरी मांगे का बेरिया,
झगरा होत नारी नर से।।
जहां रेल के सुबहित रास्ता,
भारा ना मांगे डर से।
ग्रीष्म ताप के चिट्ठी नेवतीं,
गिरे पसीना गतर से।।''

गरीबी और भूख को बहुत निकट से देखने वालों के जीवन पर भिखारी ठाकुर ने अच्छा प्रकाश डाला है—

''खाये के ना घर में
हवहिस जव-मटर मसूरिया।
हमरा के कइली जे जाके कहिह,
कवन कइनी हम कसूरिया।।''

कोई अमीर या गरीब हो सकता है, पढ़ा-लिखा या अनपढ़ हो सकता है, लेकिन रचनाशीलता इससे बिलकुल अलग गुण है। भिखारी ठाकुर गरीब और अनपढ़ थे। उन्हीं के शब्दों में—

''जाति के हजाम मोर कुतुबपुर मोकाम,
छपरा से तीन मील दियरा में बाबूजी।
पुरुब के कोना पर गंगा के किनारे पर,
जाति पेशा बाटे विद्या नाहीं बाटे बाबूजी।।''

× × ×

''भिखारी नीपढ़ नाई नदाना,
कहते दंगल के दरम्याना।
एक दूई तीन चार ककहरा,
ना पाठ पढ़ली ना पहाड़ा।।''

बिहार में, विशेषकर सारण जिला में मकई की खेती अधिक होती है। मकई गरीबों का मुख्य आहार है। मकई का प्रसंग देखिये—

''मकइया हो तोहार गुन गूथब माला।
भात से तरत भव, लावन गरीब लव।
पूरा-पूरा पानी दिआला।।
भूंजा भरी झोरी झोरी,
जहां-तहां खोरी-खोरी।
खात बाड़न बाल गोपाला।
मकइया हो तोहार गुन गूथब माला।।''

कम आयु में विवाह, पति परदेशी, घर में भोजन एवं अन्य सुविधाओं का अभाव जैसी परिस्थितियों के कारण सामान्य और निम्न परिवारों की महिलाओं का जीवन बहुत अच्छा नही था। बीमारी की चिकित्सा सुलभ नहीं थी। ऐसे में जो बीमार पड़ता था, झाड़-फूंक, ओझा-गुणी से ठीक हुआ तो ठीक, नहीं तो भगवान के प्यारे हो जाना आम बात थी। पुरुष भी बेरोजगारी तथा कुपोषण के शिकार हो जाते थे। बच जाती थी उनकी पत्नी, जो विधवा-जीवन जीने के लिए बाध्य होती थी। यदि अपनी संतान नहीं हुई तो विधवाओं को और कष्ट था। भिखारी ठाकुर लिखते हैं—

''कवन कसूर कइली,
घर से निकालल गइलीं,
छूटल जात बा नइहर-
ससुरवा हो बबुआ।
पर-पति साथ रति,
कबहूं ना भइल मति,
धनवां करनवां तेयाग मत हो बबुआ।
बबुआ समझ मन, तोहरे ह सब धन,
काकी करिहन जूठवा के
आसरा हो बबुआ।।''

लीक पर चलने वालों का अपना दैनन्दिन जीवन बीत जाता है। लेकिन उसकी पहचान नहीं बन पाती। हर बच्चे का अभिभावक उसे अनुशासन में रह कर नियमित जीवन जीने की सीख देता है। भिखारी ठाकुर को भी विद्यालय भेजा गया। लेकिन जब एक साल तक वे पढ़ना-लिखना नहीं सीख पाये तो उन्हें घरेलू काम में लगा दिया गया। परिवार में चार मवेशी थे। वे उनकी चरवाही करने लगे। बीच-बीच में वे जातिगत पेशा हजामत बनाने का काम भी करने लगे। वे गांव के लोगों का नेवता बांटने का भी काम करते थे।

नेवता बांटने का काम करने में पढ़ा-लिखा नहीं होने से उन्हें कठिनाई होती थी। वे दूसरों से पढ़वा-पढ़वा कर नेवता बांटने या नेवता देने का काम करते थे। शायद यह घटना उनकी जिन्दगी का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गयी। दूसरों से नेवता का नाम पढ़वाना उन्हें बड़ा नागवार गुजरता था। उन्होंने भगवान नामक एक बनिया को अपना गुरु मान कर उनसे पढ़ना-लिखना शुरू कर दिया। ककहरा

आदि पढ़ कर वे पुस्तक बांचने लगे। वहीं थोड़ी-सी पढ़ाई उनके जीवन भर साथ रही। वे विधिवत शिक्षा-ग्रहण नहीं कर पाये—

''जब कुछ लगलीं माथ कमाये,
तब लागल विद्या मन भावे।
माथ कमाई नेवतीं चिट्ठी,
विद्या में लागत रहे दीट्ठी।
बनिया गुरु नाम भगवाना,
इहे ककहरा साथ पढ़ाना।
अलप काल में लीखे लगलीं,
तेकरा बाद खड़गपुर भगलीं।
ललसा रहे जे बहरा जाईं,
छुरा चला के दाम कमाई।।''

गांव में हजामत बनाने से भिखारी ठाकुर को जो आमदनी होती थी, उससे वे खुश नहीं थे। वे घर से भाग कर खड़गपुर (पश्चिम बंगाल) चले गये। वहां रह कर वे अपने जातिगत पेशे में लग गये। लेकिन कुछ दिनों तक ही वहां रह पाये थे कि मेदिनीपुर चले गये। मेदिनीपुर (पश्चिम बंगाल) जाना उनके जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि बन गयी।

मेदिनीपुर में भिखारी ठाकुर को रामलीला देखने का अवसर मिला। रामलीला आदि तो पहले भी देख चुके थे। लेकिन वहां उनको लगा कि यह काम तो वे भी कर सकते हैं। वे वहां से अपने गांव आ गये। गांव के रामानन्द सिंह के साथ मिलकर रामलीला करने लगे। वे स्वयं बाली बनते थे और रामानन्द सिंह सुग्रीव।

रामलीला के साथ नाच-गाना भी जुड़ गया था। यह काम वे घर से छिप-छिपा कर करते थे—

''गइली मेदनीपुर के जीला,
ओजिजे कुछ देखलीं रामलीला।
ठाकुर दुअरा उहां से गइलीं,
चनन तालाब समुद्र नहइलीं।
दरसन करि डेरा पर आईं,
खोलि पोथी देखीं चउपाई।
फुलवारी के जगह बुझाइल,
तुलसीकृत में मन लपसाइल।
अरथ पूछि-पूछि के सीखी,
दोहा छनद निज हाथ से लिखीं।।''

× × ×

''निजपुर में करिके रामलीला,
नाच के तब बन्हली सिलसिला।
बरजत रहलन बाप मतारी,
नांच में तू मत रह भिखारी।
तनिको न आवे गावे बजावे,
काहें दो लागल लोग के भावे।।''

रामलीला मंचीय काव्याभिव्यक्ति है। भिखारी ठाकुर रामलीला के अलावा मंच पर तरह-तरह के प्रसंगों पर आधारित अन्य लीलाओं की भी मंचीय प्रस्तुति किया करते थे। उनका कार्यक्रम देखने के लिये मीलों-मील पैदल चल कर लोग आते थे और रात-रात भर जाग कर कार्यक्रम देखते थे।

भिखारी ठाकुर की नाच मण्डली बहुत लोकप्रिय हो गयी थी। उनकी नाच मण्डली बिहार से निकल कर कोलकाता जैसी महानगरी में भी प्रसिद्धि पा रही थी। ''भोजपुरी जिनगी' (अक्तूबर, 2009, नई दिल्ली) के एक आलेख के अनुसार भिखारी ठाकुर की नाच मण्डली सन् 1963 में कोलकाता में थी।

नाटक की विशेषता उसके लिखने में नहीं, उसकी मंचीय प्रस्तुति में है। लोक कलाकार भिखारी ठाकुर इसके पूर्ण उदाहरण हैं। रंगमंच पर खेले गये नाटकों में किसी एक कला का नहीं, वरन् विभिन्न कला का समन्वय दिखाई देता है।

भिखारी ठाकुर को मेदिनीपुर में रामलीला देख कर रंगमंचीय प्रस्तुति की प्रेरणा मिली ही, सारण जिला में चली आ रही मंचीय कला से भी वे प्रभावित हुए बिना नहीं रहे होंगे। अविभाजित सारण जिला (अभी गोपालगंज) के हथुआ के महाराजा यहां एक इरानी परिवार रंगमंचीय प्रस्तुतीकरण कर रहा था। वस्तुतः वह परिवार मुगल काल में दिल्ली दरबार में था और बाद में लखनऊ के नवाब ने उस परिवार को अने यहां शरण दी थी। अंग्रेजों के आगमन के बाद जब लखनऊ के नवाब की चलती कम हुई तो उस परिवार को हथुआ महाराज के यहां शरण मिल गयी थी। उसी परिवार की दो बहनें 'सुन्दरी बाई' और 'दुनियाबाई' की नाट्यमंडली बहुत प्रसिद्ध हुई थी, जो मंचीय माध्यम से लोक-कला की गेय प्रस्तुति कर रही थी।

विद्यालय में ज्ञान नहीं मिलता। वहां लिखना-पढ़ना सिखाया जाता है। ज्ञान तो आंतरिक चीज है। तभी तो विद्यालय का एक सहपाठी ऊंचाइयों की सीमा लांघ जाता है तो दूसरा सहपाठी पढ़ना-लिखना भी नहीं सीख पाता। ज्ञानार्जन के लिये अनेक सुविधाओं और संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है, जिसमें विद्यालय भी एक है। लेकिन विद्यालय जाने से ही ज्ञान मिलता है—यह आवश्यक नहीं है। इस तथ्य को कई अन्य रचनाकारों की तरह भिखारी ठाकुर ने भी प्रमाणित कर दिया है।

भिखारी ठाकुर द्वारा 29 पुस्तकों की रचना की गयी है, जो पुस्तिका रूप में मेला में या फुटपाथी दुकानों पर अधिक बिकती थीं। कम पृष्ठों की साधारण कागज पर मोटी छपाई में उनकी पुस्तिकाओं में प्रकाशकों का विज्ञापन भी छपा होता था। उनकी अधिकतर पुस्तकें दुधनाथ पुस्तकालय एण्ड प्रेस (63, सुतापट्टी, सलकियां, हावड़ा, कलकत्ता-7) से छपी थीं। उनकी पुस्तकों के नाम हैं— 'बिरहा बहार', 'कलियुग बहार' ('बहरा

बहार' बिवदेसिया), 'राधेश्याम बहार', 'बेटी बियोग', 'कलियुग प्रेम', 'गबर घिंचोर', 'भाई बिरोध', 'गंगा असनान', 'पुत्र-बध', 'भाई बहार', 'ननद भउजाई', 'नवीन बिरहा', 'भिखारी नाटक', 'भिखारी संका समाधान', 'भिखारी हरि कीर्तन', 'जशोदा सखी संवाद', 'भिखारी चौयुगी', 'भिखारी जयहिन्द खबर', 'भिखारी पुस्तिका सूची', 'भिखारी भजन माला', 'बुढ़शाला', 'रामनाम माला', 'नर नव अवतार', 'एक आरती दुनिया भर के', 'राम रतन', 'देवी कीर्तन' और 'अटपट'।

29 पुस्तकों की तुलना में भिखारी ठाकुर अपनी एक प्रस्तुति 'बिदेसिया' के कारण सर्वाधिक लोकप्रिय हुए। बिदेशिया एक ऐसा विषय है, जिस पर पूर्व में भी अनेक रचनाकारों ने अपनी प्रस्तुति दी है। भोजपुरी में प्रचलित 'जंतसार' के मुख्य गीत परदेश गये पति की याद में तड़पती पत्नी के विरह पर आधारित होते थे। विदेश गये पति की याद में विरहिनी पत्नी की तड़प पर आधारित दूसरी भाषाओं में भी रचनाएं रची गयी हैं। महाकवि कालीदास द्वारा संस्कृत में रचित 'मेघदूत' भी इसका प्रमाण है।

भिखारी ठाकुर लोक कलाकार थे। लोक कला निम्न मध्यम वर्गीय समाज का चित्रण करती है। उसी में अभिजात्य वर्ग का प्रसंग आ जाना अलग बात है।

सारण जिला में भिखारी ठाकुर के समकक्ष एक लोक गीतकार थे महेन्द्र मिसिर। तीसरे गीतकार अवतार नगर के निकटवर्ती गांव के वसुनायक सिंह थे। लेकिन भिखारी ठाकुर की लोक नाट्य के साथ रामायण की कुछ पंक्तियां और भजन भी प्रस्तुत किया करते थे। उनकी प्रस्तुतियां भी अधिक थीं और इसके लिये उन्होंने एक मण्डली बनाई हुई थी। इसी कारण से भिखारी ठाकुर की प्रसिद्धि अधिक हुई। उनके 'बिदेसिया' पर फिल्म भी बनी।

एक बात तो तय है कि मनोरंजन के साधनों की कमी के दौर में भिखारी ठाकुर ने आम जन को जो मनोरंजन दिया, वह अविस्मरणीय हो गया। इसीलिये वे लोकप्रिय भी अधिक हुए। राहुल सांकृत्यायन जैसे सत्रह भाषाओं के जानकार द्वारा भिखारी ठाकुर को 'भोजपुरी का शेक्सपियर' कहा गया था। अंग्रेजी हुकूमत द्वारा उन्हें 'राय बहादुर' और भारत सरकार द्वारा 'पद्मश्री' की उपाधि प्रदान की गयी थी। भिखारी ठाकुर का आविर्भाव भोजपुरी भाषा के लिये अति सौभाग्यशाली रहा। भोजपुरी भाषा को उन्होंने समृद्ध किया ही, अन्य भाषा-भाषियों के बीच उसे प्रचारित-प्रसारित कर लोकप्रियता भी प्रदान करायी।

सिदरौल (टांगर टोली), प्रेस कॉलोनी,
पोस्ट बॉक्स-28, नामकुम, रांची-834010
(झारखण्ड)

व्यंग्य लेख

सैर कर दुनिया की गाफिल

जसविंदर शर्मा

स्वतंत्र लेखन। 8 किताबें प्रकाशित। हरियाणा राज्य से साहित्य अकादमी पुरस्कार एवं सहारा कथा पुरस्कार।

हमारे खुशफहम पड़ोसी छेदी लाल एक दिन रेलवे प्लेटफार्म पर अपनी पत्नी के साथ खड़े बेमतलब चहक रहे थे। कभी उसे ठंडा पिलाते तो कभी किसी पत्रिका को खरीदने का आग्रह करते। उसे रिझाने का हर संभव प्रयास कर रहे थे। सामने उनके परिचित विनोदी लाल भी दिखाई दे गए जो अपनी पत्नी को लेने रेलवे स्टेशन आए हुए थे।

विनोदी लाल यूं तो विनोदी स्वभाव के हैं मगर आज पता नहीं क्यूं चुपचाप और उदास थे। उनकी पत्नी ने चुहल करते हुए कहा, ''वह देखो सामने, आपके मित्र छेदी लाल अपनी पत्नी को हर वक्त कैसे खुश रखते हैं और एक आप हैं कैसा मनहूस चेहरा बना रखा है जैसे अभी-अभी मरघट से लौटे हो।''

विनोदी लाल बोले, ''तुम नहीं समझ पाओगी। मेरी और उसकी स्थितियों में जमीन आसमान का अन्तर है। तुम मायके से लौटी हो और छेदी लाल चहक रहा है क्योंकि आज उसकी पत्नी मायके जा रही है।''

कभी किसी को किसी से मिलाती है तो कभी किसी को किसी से जुदा करती है। अजीब खेल है ये रेल के डिब्बों और पटरियों का, जो मिलाती है किसी से तो किसी से दूर करती है। शायर सच कहता है, ''चले तो थे दोस्तों का पूरा काफिला लेकर, मगर कुछ खुदा हो गए, कुछ जुदा हो गए, कुछ गुमशुदा हो गए और बाकी के सब शादीशुदा हो गए।''

एक मजेदार बात और है कि जिन्दगी में लाख दुख सही मगर शायर लोगों के लिए यह एक सुहाना सफर है और सयाने कहते हैं कि सफर का असली मजा लेना हो तो साथ में सामान कम रखिए और अगर जिन्दगी का भरपूर मजा लेना हो तो दिल में अरमान कम रखिए।

शायर यह भी कहता है, ''कुछ लोग जिन्दगी के ऐसे सफर में हैं, चलने को चल रहे हैं मगर घर की घर में हैं। बाज लोग हर वक्त यात्रा के मनसूबे बनाते रहते हैं मगर ऐन वक्त पर मन मसोस कर बैठ जाते हैं। सफर में धूप तो होगी चल को तो चलो। कंजूस लोग सारी उम्र योजनाएं बनाते रहते हैं कि इस बार यहां जाएं मगर दिलवाले तो एक सुहानी सुबह रेलगाड़ी में जा बैठते हैं। गाड़ी उन्हें ही बुलाती है जो उसकी आवाज को साहस के साथ सुनते हैं।

यह दुनिया किसी अजूबे से कम नहीं है। यहां घाट-घाट का पानी पीने वाले सयाने कहलाते हैं और कुएं के मेंढक दूर से ही पहचाने जाते हैं। समन्दरों के उछलते पानियों परचलना, बर्फ के आगोश में सरकना, मरुस्थल की शांत ठंडी चांदनी में रात बिताना, झरने में नहाना, ये कुछ ऐसे क्षण हैं जिनके कण-कण में अलौकिकता और प्रकृति की विविधता के दर्शन होते हैं। ऐसे अवसर सबको मिलते हैं मगर उनका आनन्द चन्द लोग ही ले पाते हैं।

आसपास की दुनिया देखने के लिए ढेरों पैसे नहीं चाहिए। गुणी और साहसी व्यक्ति तो अपने बूते पर विश्व विजय कर लेते हैं। एक व्यक्ति ने तो आठ डॉलर में ही सारी दुनिया देख ली थी। दुनिया में उतरो तो वह खुले दिल से आपका स्वागत करती है। दुनिया बहुत बड़ी है। उसे पाने से पहले अपने जिले में, अपने व पड़ोसी सूबे में और अपने देश के स्थानों में जाना होगा। सैर कर दुनिया की गाफिल, चार दिन की जिन्दगानी है। एक और कहावत है कि जिसने लाहौर नहीं देखा वो समझ लो इस दुनिया में आया ही नहीं।

कोलंबस, वास्कोडिगामा व फाह्येन किसी भी चीज की खोज में निकले हों मगर एक बात तय थी कि इन लोगों को यात्रा करने का चस्खा था, अजीब सनक थी उनके मन में अनजाने स्थान देखने की। उन दिनों अनजाने स्थानों पर जाना खतरे से खाली न था। लंबे व खोजी सफर के लिए सेना व रसद साथ रखनी पड़ती थी। अब तो एक एटीएम कार्ड जेब में डालकर आप अकेले दुनिया देखकर आ सकते हैं। यह न भी हो तो भी गम नहीं, बस बैंक में पैसा होना चाहिए।

संसार की हर शय सफर में है। एक जगह रहने वाले संकीर्णता का शिकार हो जाते हैं। पानी भी एक जगह ठहर जाए तो सड़ने लगता है। गुरु नानक ने बुरे लोगों को एक ही स्थान पर बसे रहने का उपदेश दिया और अच्छे लोगों को वरदान दिया कि तुम यहां से उजड़ जाओ और देश में जाकर अपनी अच्छाई फैलाओ।

स्वर्ग नरक और दूसरा जन्म किसने देखा है। दुनिया में जाकर देखो यहीं पर जन्नत है, यहीं दोजख है, यहीं सुकून है, यहीं आश्चर्य है, हवा गर्म है तो कहीं शांत, कहीं रात में ही सूरज दिख जाता है तो कहीं आठों पहर धुंध। दुनिया में अलग-अलग किस्म के क्षेत्र हैं, मजहब हैं, मान्यताएं हैं, किस्म-किस्म के लोग हैं, बोलियां हैं, खाना-पीना है, पहरावा है, करिश्मे हैं, कहीं जमीन काली है तो कहीं धरती लाल है, कहीं आसमान का रंग लाल है तो कहीं सफेद। ऐसी दुनिया को कौन अहमक नहीं देखना चाहेगा।

5/2डी, रेल विहार, मंसा देवी,
पंचकूला-134109 (हरियाणा)

कहानी

मेहमान

हरिनारायण गुप्त

लेखक भारतीय जीवन बीमा निगम मुजफ्फरपुर (बिहार) के पूर्व प्रशासनिक अधिकारी हैं।

नई दिल्ली जंक्शन से बाहर निकल कर अविनाश कुछ देर खड़े रहे। यहाँ उनका ज्येष्ठ पुत्र अपना मकान बनाकर रह रहा था। उसके अतिरिक्त भी कई सम्बन्धी एवं मित्र दिल्ली में थे पर वह किसी के यहाँ जाना नहीं चाहते थे। कुछ देर तक सोचते रहे और अन्त में किसी होटल में रहने का निर्णय लेकर आगे बढ़ गए। इसी समय पीछे से किसी ने कंधे पर हाथ डाल दिया। मुड़कर देखा तो उनके अनुज का साला मनोज खड़ा मुस्करा रहा था।

''किस ट्रेन से आये जीजा जी'', मनोज ने पूछा, ''घर पर सभी कुशल से हैं न?''

''मैं वैशाली से अभी कुछ देर पहले आया हूँ'', अविनाश ने उत्तर दिया, ''घर पर सभी कुशल से हैं। मेरे ही स्वास्थ्य में कुछ गड़बड़ी हो गई है इसीलिए एम्स में जाँच कराने आया हूँ। पहले भी मेरी चिकित्सा यहीं से हुई थी।''

''तो अब कहाँ जाने का विचार है?'' मनोज ने फिर पूछा, ''आशुतोष के यहाँ जाएंगे क्या?''

''नहीं, उसका घर बहुत दूर है'', अविनाश ने उत्तर दिया। ''मुझे रोज आने-जाने में बहुत दिक्कत होगी और बाह्य विभाग में जाँच कराने में समय भी बहुत लगता है। संभव है मुझे दस-पन्द्रह दिन लग जाएं। इसीलिए सोच रहा हूँ कि किसी पर बोझ बनने से होटल में रह लेना अधिक अच्छा होगा।''

''मेरा घर तो समीप ही है'', मनोज ने कहा। ''वहाँ से एम्स भी पास ही है और आपको कोई कठिनाई नहीं होगी। आपके रहने से हम लोगों पर किसी तरह का बोझ नहीं पड़ेगा।''

''लेकिन महानगर में कठिनाई तो हो ही जाती है'', अविनाश बोले

''अधिक औपचारकिता की आवश्यकता नहीं है'', मनोज ने आग्रहपूर्वक उनके हाथ से बैग लेते हुए कहा, ''अब चलिए। देर होने से भोजन की समस्या उठ सकती है।''

मनोज आगे बढ़ गया तो उन्हें भी मन मार कर पीछे-पीछे जाना पड़ा।

मनोज की पत्नी वन्दना ने भी उन्हें हाथों-हाथ लिया। यह जानकर कि वे होटल में रहने जा रहे थे वन्दना ने कहा, ''आपके आने से कितनी प्रसन्नता हुई है, मैं बता नहीं सकती। यदि आप होटल में रहते और बाद में हम लोगों को पता लगता तो बहुत दुःख होता। क्या महानगर में आकर मनुष्य अपनापन भी छोड़ देता है?''

अविनाश ने कोई उत्तर नहीं दिया। चुपचाप नल पर हाथ-पाँव धोने चले गए।

मनोज के यहाँ अविनाश को बिलकुल पारिवारिक वातावरण मिला। वन्दना एवं बच्चे भी उनका इतना ख्याल रख रहे थे कि उन्हें घर से बाहर रहने जैसा लग ही नहीं रहा था।

अपने पुत्र आशुतोष के यहाँ न तो इन्हें वह सम्मान मिलने की आशा थी न शान्ति, जो यहाँ अनायास ही उपलब्ध थी। आशुतोष की पत्नी बबीता अपने मायके वालों के अतिरिक्त किसी का भी आना-जाना पसन्द नहीं करती थी और आने पर उचित व्यवहार भी नहीं करती थी। आशुतोष स्वयं भी पत्नीभक्त, तद्नुरूप ससुराल भक्त हो गया था, अतः वह उसकी किसी बात का विरोध नहीं कर सकता था। वर्षो अपने परिवार से अलग रह कर वह पूर्णतः निरंकुश हो गई थी और अपने घर को तानाशाह की तरह चलाती थी। जिस परिवार में पति या पत्नी, किसी का एकाधिकार हो जाता है और उसी की मनमानी चलने लगती है, उस घर में सुख-शान्ति का लोप हो जाता है। कलह और संतोष ही उस परिवार की पूँजी हो जाती है। यहाँ भी आशुतोष की कोई बात नहीं चलती थी।

कभी-कभी पत्नी की जिद से आहत होकर वह उलझ भी जाता, बहस करता, विवाद करता, नाराज होकर घर भी छोड़ देता, लेकिन जैसे जहाज के मस्तूल पर बैठा पंछी लहराते सागर का एक-दो चक्कर लगाकर थका-माँदा वहीं आकर बैठ जाता है, वैसे ही वह भी दो-चार दिनों तक किसी मित्र या सम्बन्धी के यहाँ रह कर फिर लौट आता।

इस प्रकार बार-बार पराजित होकर वह अपना मनोबल खो चुका था और पत्नी के अनुरूप ही चलने को विवश हो चुका था।

इस तथ्य को जानने वाले आशुतोष के परिवार या सम्बन्ध के लोग दिल्ली आने पर उसके यहाँ जाने की सोचते भी नहीं थे। यदि कोई किसी परिस्थिति में पहुँच भी जाता तो परिवार में कलह का वह रूप उभरता कि वह दुबारा कभी नहीं जाने की शपथ खाकर ही वहाँ से लौटता था। इसके विपरीत उसकी ससुराल

के लोगों के लिए उसका दरवाजा हमेशा खुला रहता और उनकी भरपूर खातिरदारी होती। आशुतोष चाह कर भी विरोध नहीं कर पाता था। परिणामस्वरूप वह बराबर आर्थिक अभाव में रहता था लेकिन कुछ बोल नहीं पाता था।

दिल्ली प्रवास के क्रम में रविवार को मनोज ने पूछा, ''आशुतोष के यहाँ नहीं जाएंगे? रह तो यहाँ रहे ही हैं, भेंट तो कर ही लेना चाहिए। बेटा, बहू, पोते-पोतियाँ सभी आपसे मिलकर कितने आह्लादित होंगे?''

''मेरी इच्छा तो नहीं है'', अविनाश बोले, ''भय लगता है, कहीं अपमान न हो जाए।''

''कैसी बातें करते हैं जीजा जी'', वन्दना बोली, ''वे लोग आपका अपमान कैसे करेंगे? आप वहाँ न तो रहने जाएंगे, न कुछ मांगने। केवल भेंट करने में किसका क्या जाता है? नहीं जाने पर बाद में वे ही शिकायत करेंगे।''

''लेकिन फिर भी मेरी जाने की इच्छा नहीं होती।'' अविनाश ने दुहराया।

''ठीक है'', वन्दना बोली, ''आप अकेले नहीं जाएंगे तो हम लोग भी चलते हैं। बहुत दिनों से भेंट नहीं हुई है।''

वह अधिक विरोध नहीं कर सके। उन लोगों के साथ चलने को तैयार हो गए।

मनोज, वन्दना, दो बच्चे और स्वयं, कुल पाँच लोगों की टोली प्रातः नौ बजे आशुतोष के घर पहुँच गई।

आशुतोष घर पर नहीं था। बबीता इन लोगों को देख कर एक बार तो घबरा गई फिर औपचारिकतावश सभी जनों का अभिवादन कर बैठने की व्यवस्था की। मनोज ने रास्ते में कुछ फल ले लिये थे। वही फल काट कर बबीता ने इन लोगों को जलपान स्वरूप देना आरम्भ किया तो मनोज ने अपने लिए मना कर दिया। बबीता ने उन्हें एक प्लेट में दालमोठ दिया। अविनाश को न तो फल मिला न दालमोठ। वे कुछ देर तक बैठे रहे फिर चुपचाप कुर्सी से उठ कर बाहर निकल गए। भूख तो उन्हें भी लगी थी अतः बाजार जाकर एक होटल में जलपान कर लिया। कुछ देर तक वे बाजार में निरुद्देश्य भटकते रहे। मन भीतर से बहुत उद्वेलित था और वे संयत होने का प्रयास करते रहे।

एक घंटे बाद जब वे वापस पहुँचे तो सभी लोग भोजन कर रहे थे। उन्होंने बाहर से ही मनोज को सम्बोधित कर कहा, ''मैं चौक पर तुम लोगों की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। तुम लोग भोजन करके आ जाना।''

''आप कहाँ चले गए थे?'' मनोज ने पूछा, ''भोजन नहीं करेंगे?''

''यहां मुझे जलपान मिला नहीं'', अविनाश बोले, ''भूख लगी थी, सो बाजार जा कर होटल में खाना खा लिया। जब तक तुम लोग आओगे मैं बाजार में टहलता रहूँगा।''

''आप भी भोजन कर लीजिए न'', अब बबीता बोली, ''सब लोगों के लिए तो चिकेन बना था। आपके लिए सब्जी बन रही है।''

''जलपान भी सभी लोगों के लिए था, मेरे लिए नहीं'', अविनाश चुप नहीं रह सके, ''सब लोग भोजन कर चुके तो मेरे लिए सब्जी बन रही है। मुझे भूख लगी थी। जलपान नहीं मिला तो होटल में जा कर भोजन ही कर लिया। वैसे भी मैं दिन में दो बार ही खाता हूँ। अब रात में ही भोजन करूँगा।''

''आप मधुमेह के रोगी हैं, फल नहीं खाते, इसीलिए मैंने समझा कि आप मामाजी के साथ दालमोठ खा लेंगे। अब सब्जी केवल आपके लिए बन रही है, इसका क्या होगा?'' बबीता बोली। अविनाश के कुछ बोलने से पूर्व ही आशुतोष आ गया। वातावरण गंभीर देखकर उसने पूछा, ''क्या हुआ है?''

''कोई खास बात नहीं है'', अविनाश बोले, ''हम लोग देर से आए हुए हैं। अब चल रहे हैं। अच्छा हुआ तुम भी मिल गए, आने का उद्देश्य पूरा हो गया।''

''पिताजी भोजन नहीं कर रहे हैं'', बबीता ने कहा, ''सभी लोगों के लिए चिकेन बना था। इनके लिए सब्जी बनाने में देर हो गई इसी से नाराज हैं।''

अब अविनाश के लिए अपनी स्थिति स्पष्ट कर देना आवश्यक हो गया। यद्यपि वे जलपान या भोजन की बात को तूल देना नहीं चाहते थे, मगर चुप रहना भी उचित नहीं था। अतः बोले, ''हम लोग पाँच व्यक्ति सबेरे आए तो तुम नहीं थे। हम लोगों के लाए फलों को काट कर बहू ने चार व्यक्तियों को जलपान दिया, मुझे छोड़ दिया। मुझे भूख लगी थी, अतः होटल में जाकर भोजन कर आया। अब बहू यहाँ भी भोजन करने के लिए कह रही है जो संभव नहीं है। बस इतनी सी बात है।''

''पिताजी एवं मामाजी दोनों मधुमेह के रोगी हैं'', बबीता ने अपना तर्क दिया, ''मैंने एक प्लेट में दालमोठ मामाजी को दिया और सोचा कि ये भी उसी में खा लेंगे। फिर मैं भोजन बनाने में व्यस्त हो गई।''

यद्यपि अविनाश की इस बात को ज्यादा बढ़ाने की इच्छा नहीं थी क्योंकि बात अब घर के बाहर सड़क पर हो रही थी। किन्तु वर्तमान स्थिति में सारी बातें स्पष्ट कर देना ही उचित प्रतीत हुआ अतः बेटे को ही संबोधित करते हुए बोले, ''बहू ने पचास ग्राम दालमोठ का पैकेट फाड़ कर मनोज को प्लेट में दिया था और उम्मीद की थी कि उसी में मैं भी खा लूँगा। वह भी कहने की आवश्यकता उसने नहीं समझी। यदि उसने मुझे बता दिया होता कि उसी प्लेट से थोड़ा लेकर मुझे भी काम चला लेना था तो मैं वह भी कर लेता। लेकिन मुझसे तो बहू ने कुछ कहा ही नहीं और मैं दस मिनट तक उपेक्षित सा बैठा रहा। जब मनोज ने प्लेट खाली कर दिया तब मैं उठ कर बाजार की ओर चल पड़ा। तब भी किसी ने मुझे नही रोका।''

''आप भी पिताजी बहुत जल्दी नाराज हो जाते हैं'', आशुतोष ने पत्नी का पक्ष लेते हुए कहा, ''बीती बातों को छोड़िए, सब्जी आपके लिए बन रही है, रोटी भी बन जाएगी। भोजन

तो कर ही लीजिए। बबीता की बात भी रह जाएगी।''

''अब किस पेट में खाऊँ?'' अविनाश बोले, ''मैं तो प्रातःसंध्या दो बार ही भोजन करता हूँ। सब्जी तो कोई भी खा लेगा और तुम लोगों ने अभी खाया ही नहीं है। मैं चलता हूँ।'' कह कर वे आगे बढ़ गए। मनोज अपने परिवार के साथ पहले ही आगे बढ़ चुका था।

आशुतोष की पत्नी से कुछ नहीं कह सकता था अतः चुपचाप उन लोगों के साथ चलने लगा। कुछ दूर चलने के बाद एकान्त पाकर उसने अपने पिता से कहा, ''पिताजी, मामाजी को जाने दीजिए। आप आज रात यहीं रुक जाइए।''

''नहीं बेटा, मुझे कल सबेरे अस्पताल जाना है जो यहाँ से दूर है अतः देर हो जाएगी। वैसे भी मुझे सबेरे जलपान नहीं मिला तो मैंने होटल में भोजन कर लिया!'' उन्होंने अपने आक्रोश को सायास दबाते हुए कहा, ''तुम तो अपनी पत्नी को जानते हो, यदि मैं यहाँ रह गया और रात में सोने के लिए बिछावन का प्रबंध नहीं हो सका तो मैं सड़क पर सोऊंगा नहीं और यहाँ कोई आवासीय होटल भी नहीं है जहाँ रात्रि विश्राम कर सकूंगा। मैं मनोज के यहाँ बड़े आराम से रह रहा हूँ। यहाँ उतना अपनत्व कभी नहीं मिलेगा।'' आशुतोष उनकी बात सुनकर निरुत्तर हो गया और वहीं से वापस अपने घर की ओर लौट गया। रास्ते में मनोज की पत्नी ने बताया कि उनके लिए सब्जी उसके कहने पर बनाई जा रही थी। बहू की वैसी कोई योजना नहीं थी। दूसरे दिन जब वे एम्स में संध्या समय वापस आए तो मनोज ने बताया कि आशुतोष का फोन आया था। वह उनसे मिलना चाहता है।

''मिलने में क्या कठिनाई है? वह जब चाहे प्रातः नौ बजे से पहले या संध्या सात बजे के बाद किसी दिन यहाँ आकर मिल सकता है। दिन भर तो मैं एम्स में ही रहता हूँ। वहाँ की भीड़ में वह मुझे खोज नहीं पायेगा।'' अविनाश ने कहा।

मंगलवार को आशुतोष ने फिर फोन किया जिसे मनोज ने उठाया। ''मामाजी'', आशुतोष ने कहा, ''पिताजी से बता कराइए। मैं रविवार को उनसे ठीक से बात नहीं कर पाया।''

''वे तो दिन भर एम्स में रहते हैं और रविवार को घूमने निकल जाते हैं। उनसे सबेरे या रात में ही बात हो सकेगी।'' मनोज ने कहा।

''तो मेरा फोन नम्बर लिख लीजए, पिताजी को बात करने के लिए कहिएगा।'' कह कर वह फोन नम्बर बोलने लगा।

फोन नम्बर लिख लेने के बाद मनोज ने पूछा, ''तुमने घर में फोन कब लगाया?''

''यह मेरे मित्र के घर का फोन नम्बर है जहाँ मैं आजकल रह रहा हूँ'', आशुतोष ने कहा, ''मैं तो रविवार से ही घर में नहीं रह रहा हूँ।''

''घर में कुछ अधिक मेहमान आ गए हैं क्या?'' मनोज जानता था कि उसकी ससुराल के लोगों से अक्सर उसका घर भरा रहता है।

''कोई नया मेहमान नहीं आया'', आशुतोष ने उत्तर दिया, ''मामाजी! मैं रविवार की घटना से बहुत दुःखी और लज्जित हूँ। आप ही बताइए जिस घर में मेहमान का सम्मान नहीं हो वहाँ मैं कैसे रह सकता हूँ।''

''मेहमान! किस मेहमान का सम्मान नहीं हुआ? कहीं तुम अपने पिताजी की बात तो नहीं कर रहे हो?'' मनोज ने पूछा, ''वे तो वहाँ रहने गए नहीं थे, फिर उनके साथ वैसा व्यवहार क्यों हुआ?''

''इसी बात पर आप लोगों के जाने के बाद मेरी पत्नी से काफी बकझक हो गई। वह अपनी गलती मानने को तैयार ही नहीं है। अतः क्रोधित होकर मैंने घर छोड़ दिया है।'' कह कर उसने फोन रख दिया।

संध्या समय मनोज ने जब सारी बातें अविनाश को बताईं तो वे और दुःखी हो गए और एक उच्छ्वास लेकर बोले, ''कैसा जमाना आ गया? बेटा बाप को बाप न कहकर मेहमान कहता है।''

इसके बाद भी आशुतोष का फोन उनकी अनुपस्थिति में ही आता रहा मानो वह बात करने की खानापूरी कर रहा हो। एक दिन मनोज ने कह भी दिया, ''तुम लगातार दिन में फोन करते हो, जब वे रहते नहीं है। फोन पर बात भी कितनी होगी? यहाँ आकर आमने-सामने बात क्यों नहीं कर लेते? दो-तीन दिनों में वे चले भी जाएंगे।''

''मैं बहुत व्यस्त रहता हूँ। आना संभव नहीं है।'' आशुतोष ने उत्तर दिया।

''तुम दिन भर बाहर व्यस्त रहते हो। वे दिन-दिन भर एम्स में रहते है। रात तो अपनी है। जब समय मिले आ जाओ और रात में जितनी चाहे बात कर लो। हम लोगों की ओर से कोई हस्तक्षेप नहीं होगा'', कहते-कहते मनोज ने अचानक पूछ लिया, ''वैसे आजकल कहाँ रह रहे हो?''

''कल ही अपने घर आ गया हूँ'' उसने उत्तर दिया, ''पराए घर में कितने दिन रहा जा सकता है?''

''अपने घर वापस आ गए?'' मनोज ने व्यंग्यात्मक स्वर में पूछा, ''तो जिस मेहमान के अपमान के कारण तुमने घर छोड़ा था उन्हें सम्मान मिल गया?''

आशुतोष ने कोई उत्तर न देकर फोन रख दिया।

इसके बाद न तो आशुतोष उनसे मिलने आया, न फोन किया। इलाज करा कर अविनाश वापस घर लौट गए।

जयप्रकाश नगर, चंदवारा,
मुजफ्फरपुर-842001 (बिहार)

कहानी

आज मेरी शादी है

सुरम्या शर्मा

लेखिका दिल्ली विश्वविद्यालय, श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स में अर्थशास्त्र की छात्रा हैं।

आज मेरी शादी है।

मेरे कमरे में चहल-पहल है। मेरी ममेरी, मौसेरी और चचेरी बहनें सज-सँवर रही हैं। किसी के हाथों में शीशा है, कोई काजल लगा रही है, तो कोई झुमके पहन रही है। मामी-चाची, बच्चों को लहँगा-साड़ी पहना रही हैं। भतीजियाँ-भाँजियाँ यहाँ-वहाँ उछल-कूद कर रहे हैं।

आज मेरी शादी है।

बचपन में मेरा भी सपना था—परीलोक से एक सुंदर राजकुमार शाही रथ में आकर मुझे ले जाएगा। कल्पना की दुनिया किसे पसंद नहीं? पर जीवन गुड्डे-गुड़ियों का खेल नहीं—यह मुझे पिछले साल ही पता चला।

आज मेरी शादी है।

हर माँ की तरह मेरी माँ ने भी बचपन से ही मेरी शादी के लिए एक से बढ़कर एक सामान सँभाल कर रखा। पिता जी ने पैसे जमा किए। खुद साधारण से घर में रह कर मेरे लिए बड़ा घर खरीदा।

पर आज, मेरी शादी है।

माँ के चेहरे पर विवशता साफ दिख रही है। पिताजी की झूठी मुसकान सब बयाँ कर रही है।

दीदी को गुजरे पूरा डेढ़ साल हो गया है।

दो बेटियों के जन्म लेने पर हमारे माता-पिता ने हमारे पालन-पोषण में कोई कमी न छोड़ी। हमें हर खुशी दी, जिस पर हमारा अधिकार था। हमारी पढ़ाई-लिखाई के साथ-साथ नृत्य, गायन सिखाया, रसोई ही नहीं, पूरा घर सँभालना सिखाया। दीदी और मैं, बहनों से पहले सहेलियाँ थीं।

सुबह साथ तैयार होने से लेकर रात को चादर में नए-नए खेल खेल कर हम बड़े हुए।

मैं सातवीं कक्षा में थी, जब मैंने माँ-पिता जी को उनके कमरे में बात करते सुना था—"सुगंधा नौवीं कक्षा में है और वह बाकी बच्चों की तुलना में बहुत जल्दी थक जाती है। थोड़ा सा भागने पर भी हाँफने लगती है। वह ठीक तो है न?" माँ दीदी की बात कर रही थी।

"हम कल ही डॉ. गुप्ता से सुगंधा की जाँच करवाते हैं। भगवान करे सब ठीक हो।" पिताजी ने चिंतित स्वर में कहा।

अंदर ही अंदर मैं जानती थी कि सब ठीक नहीं है। मैंने दीदी की आँखों में दर्द और डर देखा था। वे सबके साथ खेलने में कतराती थीं। पर मैंने उस दिन से पहले उन पर कभी ध्यान नहीं दिया था, जिस दिन मुझे पता चला कि दीदी के दिल में छेद है।

यह बात माँ-पिताजी ने दीदी को उनके दसवीं कक्षा के परिणाम के बात बताई। दीदी ने पचानवें प्रतिशत अंक प्राप्त किए थे। वे कक्षा में दूसरे स्थान पर आई थीं और विद्यालय में तीसरे स्थान पर। पुरस्कार के रूप में हमारे चाचाजी-चाचीजी हमें अमरनाथ की यात्रा पर ले जाना चाहते थे। यह सोच कर कि गर्मी में पहाड़ों की सैर भी हो जाएगी और तीर्थ भी। हम दोनों को घूमने का बहुत शौक है। पर हम कभी इतनी ऊँचाई पर नहीं गए थे, जहाँ दीदी को परेशानी हो। पर इस बार हमारी समस्या में चाचाजी और चाचीजी भी शामिल थे। उन्हें दीदी की स्थिति के बारे में बताया तो उन्होंने झट से कार्यक्रम रद्द कर दिया, पर दीदी को कैसे मनाते? हमने उन्हें तर्क दिए, कई बहाने बनाए, पर अंत में हार कर माँ और पिताजी उन्हें अपने कमरे में ले गए और आराम से उनकी बीमारी स्पष्ट की। मैं दरवाजे के बाहर खड़ी, दीदी के भावों की कल्पना कर रही थी। दीदी सहमी हुई बाहर आई और सीधे अपने कमरे में चली गई। मैं समझ गई कि उन्हें झटका लगा है। उन्हें गुमसुम देखकर मैं उन्हें हँसाने की कोशिश करती, पर बात सचमुच बहुत गंभीर थी।

माँ और पिताजी ने कई डॉक्टरों से बात की, पर सब यही सुझाव देते कि बच्ची को बड़ा होने दें, नहीं तो इसकी जान को खतरा है। टालते-टालते छह-सात साल बीत गए। दीदी की शादी एक अच्छे घर में, बिना उसकी बीमारी के बारे में बताए, हो गई। मैंने अपनी पढ़ाई आगे जारी रखने का निर्णय किया।

कभी-कभी अधिक काम करने की वजह से

दीदी की तबीयत बिगड़ जाती, तो ससुराल वाले उन्हें डॉक्टर से दिखवाते। शादी के चंद महीनों में ही ससुराल वालों को दीदी की बीमारी का पता चल गया।

चूँकि जीजाजी और उनके परिवार वाले बहुत सरल स्वभाव के थे, तो उन्होंने दीदी का इलाज करवाया। उनके दिल का ऑपरेशन सफल भी रहा।

दोनों घरों में खुशियाँ तो आईं, पर एक नई शर्त पर। डॉक्टरों ने चेतावनी दी कि ऑपरेशन दोबारा करना पड़ सकता है। स्थितियाँ थोड़ी सामान्य हुईं और दीदी की तबीयत बेहतर हो गई।

ऑपरेशन को लगभग एक साल बीत गया, दीदी माँ बनने वाली थी। सबको एक नया डर सता रहा था। दो जानों को खोने का डर। जैसे-जैसे दिन पास आते गए, सबकी घबराहट बढ़ने लगी।

आखिर जिसका डर था, वही हुआ। डॉक्टर साहिबा ने बच्चे को तो बचा लिया, पर दीदी के दिल का अधपका छेद, बढ़ गया और उन्होंने दम तोड़ दिया।

बेटी का नाम सुरुचि रखा गया। जैसे-जैसे वह बड़ी होने लगी, उसे माँ की कमी भी खलने लगी। माँ तो माँ होती है। उसका रिक्त स्थान भी भला कोई भर सकता है? माँ भले ही पिता की भूमका निभा ले, किन्तु पिता कब तक माँ का किरदार अदा करता? दादी की उम्र भी हो चली थी। इसका केवल एक समाधान था।

''दीदी को याद कर रही हो न?'' माँ की आवाज ने मेरी तंद्रा तोड़ दी। मेरी आँखों में आँसू छुपाए नहीं छुप रहे थे। मैंने माँ को गले लगा लिया। फेरों का समय हो गया था। मुझे नीचे बुलाया गया। भारी कदमों और भरी हुई आँखें लेकर मैं मंडप पर पहुँची। सुरुचि भी वहीं बैठी थी। अब उसकी जिम्मेदारी मेरी है—सोच कर मैं आगे बढ़ी।

जीजाजी वहीं मंडप पर बैठे थे।

कुछ ही लम्हों में मेरा और दीदी का अस्तित्व एक होने जा रहा है—क्योंकि आज मेरी शादी है।

सुर-सदन, डब्ल्यू. जेड.-1987,
रानी बाग, दिल्ली-110034

कहानी

एक ताजमहल की वापिसी

कुँवर प्रेमिल

स्वतंत्र लेखन में सक्रिय। कहानी, लघुकथा एवं व्यंग्य लेखक। प्रतिनिधि लघु कथाएँ (वार्षिकी) पत्रिका का संपादन।

रचना ने प्रमोद के हाथों में मिनी ताजमहल के शो पीस को वापिस करते हुए कहा—''मुझे माफ कर दो प्रमोद। मैं प्यार की कसौटी पर खरी नहीं उतरी। मैं प्यार के इस खेल में बुरी तरह हार गई हूँ। मैं तुम्हारी प्यार की इस धरोहर को वापिस करने के लिए विवश भी हो गई हूँ।''

''मुझे उम्मीद है कि तुम मेरी इस विवशता को समझोगे और इसे वापिस लेकर अपने प्यार की लाज भी रखोगे।'' प्रमोद अवाक् था।

उसने अभी कुछ दिनों पहले अपने प्यार की मलिका रचना को यह प्यार का प्रतीक ताजमहल भेंट करते हुए कहा था—''यह हमारे प्यार की बेशकीमती निशानी है रचना, इसे सँभालकर रखना। यह तुम्हें हमारे प्यार की याद दिलाती रहेगी। जैसे ही मुझे कोई अच्छी जॉब मिली मैं तुम्हें ब्याहने आ पहुँचूँगा। तब तक तुम्हें यह अपने प्यार से भटकने नहीं देगी।''

रचना रोते-रोते बोली—''मैं स्वार्थी निकली प्रमोद। मुझसे अपने प्यार की रक्षा नहीं हो सकी। मैं कमजोर पड़ गई... मुझे माफ कर दो... मुझे अब इसे अपने पास रखने का कोई अधिकार ही नहीं रह गया है।''

प्रमोद असहज होकर रचना की मजबूरी समझने की कोशिश कर रहा था कि रचना वापिस होकर चली भी गई। सब कुछ इतने कम समय में हो गया था कि पूछो मत, अभी-अभी कुछ दिनों पहले ही तो उसकी रचना से मुलाकात हुई थी, प्यार की पींगे बढ़ी थी। उसका प्यार धीरे-धीरे पल्लवित हो रहा था। एक के बाद एक मंजिलें तय कर रहा था उसका प्यार कि प्यार की यह इमारत ही ढह गई। वह निराशा के चक्रव्यूह में फँसकर वहीं पास के चबूतरे पर धम्म से बैठ गया। उसे एक चक्कर-सा आ गया था। वह पूरी तरह कुंठित होकर रह गया था मानो।

कुछ महीने पहले की ही तो बात है जब रचना से इसी चबूतरे के पीछे बरगद के सामने वाले मैदान में बैडमिन्टन का मैच खेला था उसने। रचना बहुत अच्छा खेल रही थी। खेल-खेल में वह सवयं भी उसका प्रशंसक बन गया था।

हालांकि वह मैच जीत गया था पर वह अपनी जीत से खुश नहीं हुआ था। बार-बार उसके दिमाग में एक ही ख्याल आ-जा रहा था कि वह ईनाम उसे नहीं बल्कि रचना को ही मिलना चाहिए था। बैडमिन्टन का कुशल खिलाड़ी प्रमोद उस मैच में रचना को अपना गुरु मान चुका था।

रचना के पास खेल का उत्तम प्रबंधन था। कुशल नेतृत्व और दबाव भी। पूरी ताकत लगा देने के बावजूद वह रचना को केवल एक प्वाइंट से ही तो जीत पाया था। इस बीच रचना पूरे मौज में खेल रही थी। उसे मैच हारने का भी कोई गम समझ के परे था। पूरा इत्मीनान उसके चेहरे पर मजे-मजे झलक रहा था।

मैच जीतने के बाद भी अपने-आपको उस खुशी में किसी तरह शामिल नहीं कर पा रहा था वह। काश! वह रचना के हाथों हार जाता... तो जरूर वह स्वयं को जीता हुआ पाता। यह उसके अपने दिल की बात थी ओर इसमें किसी क्यों और क्या का कोई भी महत्व एकदम नगण्य था। उसे रचना अच्छी लगी थी, अपने दिल की गहराइयों में उतारने लायक। किसी खूबसूरत-सी लड़की के हाथों हारने का आनन्द भी सभी क्या जानेंगे भला।

दिन बीतते गए। एक दिन उसकी चचेरी बहन ने बताया कि उस दिन बैडमिन्टन मैच खेलने वाली लड़की उससे मिलना चाहती है। रचना, अपनी इस चचेरी बहिन चंदा के घर पर इंतजार कर रही थी।

''हैलो''—मानो कहीं वीणा के तार झंकृत हो गए।

उसके सामने रचना मोहक अंदाज में खड़ी मुस्कुरा रही थी। उस पर नीले रंग का सलवार सूट खूब फब रहा था। वह समझ ही नहीं पाया था कि रचना के मोहपाश में बँधा हुआ वह कब उसके सामने आ खड़ा हुआ था। अपने चेहरे पर के हल्के मेकअप में उसकी नीली-नीली बड़ी-बड़ी गहरी आँखें उसकी अपरमित शोभा बनकर रह गई थी।

रूप के समन्दर में वह इतना खो गया कि प्रत्युत्तर में 'हैलो' कहना ही भूल गया। वह

जरूर उसकी कल्पना की दुनियां की एक खूबसूरत झलक थी। आज से नहीं, बल्कि जमाने से खूबसूरती ऐसी ही प्रशंसात्मक और बेहतरी की मूरत बनकर स्थापित हो चुकी थी।

''कैसे हैं आप''—मानो दूसरी बार जलतरंग बजी हो।

वह बिना कुछ बोले उसे निहारता ही रह गया। उसके मुँह से बोल ही नहीं फूट पा रहे थे। चेहरे पर झूलती बालों की लट उसकी खूबसूरती को चार चाँद लगा रही थीं। रचना उसे प्रकृति की सुदंरतम रचना ही ज्यादा नजर आ रही थी। वह किंचित स्वप्न लोक से वापिस होकर बोला—''अच्छा हूँ, और आप कैसी हैं?''

''जी, बेहतर। आपकी जीत की बधाई देने के लिए ही मैंने आपको बुलाकर आपको यहाँ तक आने का कष्ट दिया है। माफी चाहती हूँ।''

''आपको तो इस खेल में महारत हासिल है। सच, मैं आपके सामने कहीं नहीं हूँ। कृपया मुझे भी गाइड कीजिए न... मैं कोई और गेम नहीं जानती। मैं इसमें मास्टरी हासिल करना चाहती हूँ।''

''महिलाएँ तो हर क्षेत्र में पुरुषों से एक कदम आगे खड़ी हैं। उन्हें तो अपने आप ही मास्टरी हासिल है।'' प्रमोद ने हल्का-सा मजाक किया तो रचना की मुस्कुराहट दो गुनी हो गई।

''चंदा कह रही थी कि आपने कैमिस्ट्री से एम.एस.सी. की है। मैं भी कैमिस्ट्री से एम.एस.सी. करना चाहती हूँ। आपकी मदद चाहिए मुझे।'' रचना नहीं बल्कि कोई सिने तारिका ही खड़ी थी उसके सामने।

प्रमोद, रचना के साथ हल्की-सी मुलाकात करने के बाद चला आया पर रास्ते भर रचना का रूप यौवन उसके दिमाग में छाया रहा। वह जिधर देखता उधर रचना खड़ी दिखाई देती। रचना की मुखाकृति और मधुर वाणी का अद्‌भुत मेल उसे पागल करने के लिए यथेष्ट था। यह वह समय था जब वह पूरी तरह रचनामय हो गया था।

दूसरी बार वह फिर आलोक बिखेरती रचना द्वारा याद किया गया। इस बार रचना जींस वाली आधुनिक ड्रेस में अपना सौन्दर्य संजोए थी। चंदा ने उसे आगाह कर दिया था कि रचना शहर के एक बड़े उद्योगपति की लड़की है। अतः वह पूरे संयम से काम ले रहा था।

उसके मित्रों ने कभी उसे बताया था कि लड़कियों के मामले में बड़े धैर्य की जरूरत होती है। पहल भी लड़कियाँ ही करें तो और अच्छा। लड़कों की पहल और सतही बोलचाल उनमें जल्दी ही अनाकर्षण पैदा कर सकता है। इसलिए न वह भी रचना के सामने केवल 'हां', 'हूँ' से काम चला रहा था।

अबकी बार रचना ने प्रमोद को शायराना अंदाज में 'सलाम' कहा तो उसने भी हड़बड़ाहट में उसी अंदाज में 'सलाम' बजा दिया। एक तेज खुशबूदार सेन्ट की खुशबू उसमें मादकता भरने के लिए यथेष्ट थी। चुंबक के दो विपरीत ध्रुवों के समान रचना उसे अपनी ओर खींचती प्रतीत हो रही थी। कमरे में वे दोनों थे। जानबूझकर चंदा उनके एकान्त में बाधा नहीं बन रही थी।

''एक हारे हुए खिलाड़ी की ओर से यह एक छोटी-सी भेंट स्वीकार कीजिए।'' कह कर रचना ने एक सुनहरी घड़ी प्रमोद को भेंट की तो वह इतना महंगा तोहफा देखकर हक्का-बक्का रह गया।

''जरा इसे पहन कर दिखाइए तो!'' रचना प्रमोद की आंखों में गहरे झाँक कर बोली।

''इसे आप ही अपने कर कमलों से बाँधें तो!'' प्रमोद ने भी मृदु हास्य बिखेरा।

रचना ने जैसी ही सुनहरी घड़ी प्रमोद की कलाई में बाँधी तो जैसे पूरी फिजां ही सुनहरी हो गई। उसे पहली बार किसी समवयस्का ने छुआ था। शरीर में एक रोमांच-सा हो आया था। मन कर रहा था कि घड़ी चूमने के बहाने वह रचना की नाजुक अंगुलियाँ ही क्यों न छू ले। छू कर चूम ही क्यों न ले?

पर ऐसा हुआ नहीं। ऐसा हो भी नहीं सकता था। प्यार की पहली डगर में ऐसी अधैर्यता शोभा नहीं देती। कहीं वह उसकी उच्छृंखलता ही समझ ले तो। समय के तकाजे की पहचान हर किसी को रखना जरूरी है। वरना वक्त का मिजाज बदलते देर थोड़े ही लगती है।

अब प्रमोद को भी रचना को कोई सुंदर-सा, अनुपम-सा उपहार देना लाजिमी था। न जाने कितने दिन, कितनी रातें इसी विचार विमर्श में निकल गये। किसी लड़की को एक लड़के की तरफ से कैसा उपहार दिया जाए यह उसकी समझ के परे था। सोते-जागते बस एक ही धुन उस पर सवार रहती।

मित्रों ने सलाह दी—''कश्मीर की वादियों से कोई शानदार उपहार खरीद कर लाया जाए तो सोने में सुहागा हो जाए।''

मित्रों के उपहास का जबाव देते हुए प्रमोद बोला—''मुझे कुल्लू मनाली या शिकारे में बैठ कर कोई उपहार खरीदने की क्या जरूरत है? मेरा स्वर्ग तो यहीं है जहाँ मेरी महबूबा है। मेरा मन कहता है कि रचना बनी ही मेरे लिए है। मैं रचना के लिए हूँ और मेरा यह रचनामय संसार मेरे लिए कितना रचनात्मक है, यह मैं भली-भाँति जानता हूँ।''

दोस्त 'फिस्स' से हँस पड़े। ऐसे मौकों पर दोस्त मजाक बनाने का कोई मौका नहीं छोड़ते हैं। हास-परिहास के ऐसे क्षण मनोरंजक तो होते हैं पर ये सब उस प्रेमी किरदार को रास नहीं आते। क्योंकि जिसमें उसकी लगन लगी होती है उसे वह अपने से कहीं ज्यादा मूल्यवान समझने लगता है। उसे दरख्तों, चिड़ियों, झीलों, ऋतुओं, फूलों में अपने महबूब की

छवि दिखाई देने लगती है। कामदेव की उन पर महती कृपा जो होती है।

कोई तो था जो उसे मन-प्राण में धीरे-धीरे जगह बना रहा था। वह स्वयं से पूछता कि क्या इसी को प्यार कहते हैं। वह कभी घबराता कि कहीं यह सब कुछ एक मृगतृष्णा तो नहीं है। उसका यह पहला-पहला प्यार था। कहते हैं कि प्यार की पहचान मन को होती है पर मन हिरण होता है, कभी यहाँ-कभी वहाँ उछल-कूद करता रहता है। वह ज्यादातर इस मामले में अपने को अनाड़ी ही समझता रहता है। अक्सर बुद्धू-सा सिर खुजलाता रहता है।

आजकल वह एक-एक पल को जीने की कोशिश कर रहा था। मन-प्राण को प्यार रूपी खूँटे से बाँध रहा था। प्रेम-रस में भीगी इस कहानी को आगे बढ़ाना चाह रहा था। इस कहानी को अपने मन के परदे पर उतार रहा था। प्यार की चुनरिया ओढ़कर प्रेम की एक सजीव मूर्ति बनाना चाह रहा था। रचना से मुलाकातें बढ़ रही थीं। अब रचना उसके ख्वाबों में भी आने लगी थी। वह उसके साथ एक फिल्म भी देख आया था और अब अपने प्यार में मुहर लगाने की दृढ़ता उसमें आने लगी थी।

वह अपने मन से जरूर कुछ परेशान-सा था। वह अपने मन पर जितना काबू करता, ससुरा उसे और भी तड़पा जाता। वह अक्सर अपने मन से पूछता कि यार बता दुश्मन का हाल भी क्या मेरे जैसा है? ''हाल कैसा है जनाब का'' मन ही मन गुनगुनाता और प्रेम रस में डूबता चला जाता। प्रेम का दरिया किसी गहरे समन्दर से भी ज्यादा गहरा होता है। आजकल प्रमोद के पास केवल दो ही काम रह गए थे। नौकरी की तलाश और रचना का रचना-पाठ। रचना-रचना-रचना, यह कैसी रचना थी जिसे वह जितनी बार भजता, वह उतनी ही त्वरित गति से हृदय के द्वार पर आ खड़ी होती। हृदय धड़कने लगता, खुमार छाने लगता, दीवानापन बढ़ जाता। वह लड़खड़ाता, लगता जैसे मधुशाला से चल कर आ रहा हो। इसी तरह बच्चन जी की मधुशाला उसे पूरी तरह याद हो गई थी। जरूर ऐसे दीवाने को मधुशाला ही थाम सकती है। जिसके कण-कण में मधु व्याप्त हो। रसामृत हो, अधरामृत हो, प्रेमी अपने प्रेमी के साथ भावनात्मक आत्मसात हो।

आत्मसात होकर दीन-दुखियों में खो जाए। तन-मन के बीच कोई फासला ही नहीं रह जाए। प्रकृति के गूढ़ रहस्य को इतनी आसानी से पा लिया जाए कि प्यार की तलब के आगे सारी तलबें खत्म हो जाएं। मन भ्रमर बस एक ही पुष्प पर बैठे, उसी में बंद हो जाए। अपनी आँखें खोले तो महबूब नजर आये, आँखें बंद करे तो महबूब ही उनमें समाये। महबूब ही उनकी आँखों का दृश्यादृश्य बन जाये।

अपनी सहेली चंदा पर प्रेम प्रसंग उजागर न हो इसलिए रचना प्रमोद से इसी बरगद के नीचे मिलने लगी। वे शंकित नजरों से इधर-उधर देखते हुए एक-दूसरे में अपने प्यार को तलाश रहे थे। प्रेम भरी नजरों से देखकर अघा नहीं रहे थे। यह प्रेम मिलन की जगह उन्हें किसी पावन तीर्थ से कम नहीं प्रतीत हो रहा था।

उसने रचना के लिए अपनी मनपसंद गिफ्ट खरीद ली थी। उसे लग रहा था कि इससे अच्छी कोई और गिफ्ट हो ही नहीं सकती। रंगीन कागज में लपेटी यह गिफ्ट जैसे ही धड़कते लि से प्रमोद ने रचना को दी तो उसकी महबूबा भी रोमांच से भर उठी।

''इसे खोलकर देखूँ क्या?'' अपनी बड़ी-बड़ी आँखें झपका कर रचना बोली।

''जैसा आप उचित समझें, यह गिफ्ट आपकी है, दिल आपका है, हम भी आपके हैं।'' प्रमोद बोला।

'वॉव' रचना के मुँह से एकदम निकल गया। उसने रंगीन कागज के भीतर से ताजमहल की अनुकृति को झाँकते पाया। उसके चेहरे पर रक्ताभा की एक परत-सी छा गई। यह वह क्षण था जब वे दोनों आनंद के अतिरेक में आलिंगनबद्ध हो गए थे। एक-दूसरे में समा गए थे। न जाने कितनी देर तक वे उसी अवस्था मं एक-दूसरे के दिल की धड़कनों को सुन रहे थे। इस एक क्षण में उन्होंने मानो एक युग जी लिया था—प्यार का युग, जो अनंतकाल से प्रेमी-प्रेमियों को मिलने के लिए उकसाता रहता है।

अपने घर आकर प्रमोद ने रचना का दिया हुआ उपन्यास खोल कर देखा। उसमें एक पत्र रखा मिला। रचना ने बड़े सुंदर और सुडौल अक्षरों में लिखा था—''प्रमोद मैं तुम्हें हृदय की गहराइयों में पाती हूँ। यह प्यारामृत का प्याला मैं रोज-रोज पीती हूँ। पर प्यासी की प्यासी रह जाती हूँ। यह तृप्तता आखिर क्या है? कैसी है? कब पूरी होगी। इसका उत्तर मैं किससे पूछूँ। यदि आपको पता हो तो मुझे जरूर बताएँ... रचना।''

प्रमोद पर मानो दीवानगी का एक दौर दौरा ही पड़ गया। उसे लगा कि ऐसा पत्र शायद ही किसी प्रेमिका ने अपने प्रेमी को लिखा होगा। वह संसार का सबसे अच्छी किस्मत वाला प्रेमी है जिसकी प्रेमिका कितनी उदात्त विचारों की है। वह एक अत्यंत सुंदरी और विदुषी प्रेमिका का प्रेमी है। इस मामले में वह संसार का सबसे धनी-मानी प्रेमी है।

उसे नित्य ही नई-नई अनुभूतियाँ होती। वह प्यार के खुमार में सदैव डूबा रहता। कभी खुद को चाँद तो रचना को चाँदनी कहता। कभी रचना हीर होती तो वह रांझा बन जाता। वह किसी फिल्म का हीरो, तो रचना उस फिल्म की हीरोइन। वह प्यार के अनंत सागर में डुबकियाँ लगाता इस पर भी मन को चैन न आता।

''चैन आए मेरे दिल को दुआ कीजिए''—

अक्सर वह यह फिल्मी गीत गुनगुनाता और पल-प्रतिपल बेचैन होता जाता।

कभी-कभी उसे लगता कि यह ठीक नहीं है। देवदास बन जाना कहाँ तक उचित है। दूसरे क्षण वह सोचता कि कोई बनता नहीं है बस अपने आप देवदास बन जाने की प्रक्रिया चालू हो जाती है जो एक दिन उसे देवदास बनाकर ही छोड़ती है। वह भी देवदास बन गया है यह सोचकर उसे अच्छा लगा। लगे हाथ देवदास फिल्म देखने की उत्कंठा भी उसमें जागृत हो उठी।

विचारों की इसी शृंखला में सोते-जागते रहना उसकी नियति हो गई। जिस दिन रचना उसे रूबरू दिखाई नहीं देती तो फिर ख्वाबों में आ पहुँचती। ख्वाबों से दूर करना फिर उसके वश में नहीं रहता। आँखें बंद करता तो वह उसे अपने करीब बहुत करीब पाता। आँखें खोलने पर रचनाकृति गायब हो जाती। दुखद क्षणों की अनुभूति बन जाती।

इस बीच प्रमोद को अपने मामा के यहाँ जाना पड़ गया। मामा कई दिनों से बीमार चल रहे थे अैर एक दिन भगवान को प्यारे भी हो गये थे। उनकी तेरहवीं तक रुकना जरूरी हो गया था।

एक दिन चंदा का वहाँ फोन मिला। बड़ा गजब हो गया था। रचना के उद्योगपति पिता ने उसका विवाह मुम्बई के हीरों के व्यापारी के यहाँ तय कर दिया था। उसे विश्वास ही नहीं हो रहाथा कि ऐसा विछोह भी संभव हो सकेगा। उसके देखते ही देखते रचना दूसरी जगह ब्याह दी जाएगी और वह देखता ही रह जाएगा। चंदा का फोन सुनते ही उसे लगा कि उसका प्रेमघट सूख गया है। अमृत कलश रीत गया है। रचना इतने जल्दी किसी और की अमानत हो जायेगी। उसकी कल्पना से भी बाहर की बात थी। वह बुरी तरह रुआँसा हो गया था। वह तन-मन दोनों से स्तब्ध होकर रह गया था।

''अपने को सँभालो भाई, यह अनहोनी होनी थी, सो हो गई।'' एक सप्ताह बाद ही उसका विवाह है। वह अपने विवाह से पहले क बार आपसे मिलना चाहती है। चंदा ने फोन पर जो सूचना दी थी उससे तो उसका भविष्य ही चरमरा गया था। उसने तुरंत वापिसी की ट्रेन पकड़ ली थी। दूसरे दिन प्रमोद उसी बरगद के पेड़ के नीचे खड़ा था जहाँ उसका प्रेम मिलना हुआ करता था।

रचना छुपते-छुपाते वहाँ चली आई थी और प्रमोद से लिपट कर रोने लगी थी। वह बार-बार पिताजी के सामने हार कर शादी के लिए तैयार होने की दास्तां सुना रही थी। उसने अपनी माँ से भी प्रमोद के प्यार की बात कह दी थीं पर उन्होंने उसके मुँह पर अपनी अंगुली रख दी थी। तब से अब तक माँ की अँगुली मानो उसके होठों से चिपकी हुई थी। वह न तो ठीक से रो सकती थी, न हँस सकती थी। इस विषय में उसकी कल्पना बौनी हो गई थी।

उसने अपने पास सँभाल कर रखा हुआ ताजमहल पीस प्रमोद को वापिस देते हुए कहा—''मुझे माफ कर दो प्रमोद, मैं प्यार की कसौटी पर खरी नहीं उतरी। मैं प्यार के इस खेल में बुरी तरह हार गई हूँ। मैं तुम्हारे प्यार की इस धरोहर को वापिस करने को विवश भी हो गई हूँ। मुझे उम्मीद है कि तुम मेरी इस विवशता को समझोगे और इसे वापिस लेकर अपने प्यार की लाज भी रखोगे।''

रचना वापिस चली गई और वह उसे जाते देखते खड़ा रह या। अब रचना पर उसका कोई अधिकार ही कहाँ रह गया था। एक धनवान ने फिर एक पाक मोहब्बत का मजाक उड़ाया था। प्रमोद के हाथों में ताजमहल जरूर था पर उसकी मुमताजमहल तो कब की जा चुकी थी। उसके प्यार का ताजमहल तो कब का धराशायी हो गया था।

वह अपने अश्रुपूरित नेत्रों से ताजमहल की अनुकृति को देखता और 'हाय रचना' कह कर दिल थाम लेता। आज मानो संसार के सारे दुःखों से मिल कर उस पर भीषण हमला कर दिया था।

उसने ताजमहल पीस को यह कहते हुए उसी चबूतरे पर रख दिया कि जिन प्रेमियों का प्यार सफल होगा वही इसे रखने का अधिकारी होगा। उसे अपने पास रखने की पात्रता अब उसके पास नहीं रह गई थी। उसके प्यार की झोली खाली हो गई थी और उसमें उसे रखने का अवसर उसने खो दिया था।

जल बिन तड़पती मछली और प्यार बिना तड़पते प्रमोद के बीच ज्यादा अब कोई ज्यादा अंतर नहीं रह गया था।

एम.आई.जी.-8, विजय नगर,
जबलपुर-482002 (म.प्र.)

कहानी

तीन लघु कथाएं

अशोक 'अंजुम'

लेखक के 6 गजल संग्रह, 5 हास्य-व्यंग्य कविता संग्रह, गीत संग्रह, 2 दोहा संग्रह, 2 नाटक संग्रह प्रकाशित। अभिनव प्रयास (त्रैमासिक) का संपादन एवं हमारी धरती (पर्यावरण द्वैमासिक) के सलाहकार संपादक।

अहम

हमने जब से होश संभाला, वह कुर्सी तब से स्टोर रूम में पड़ी देखी। उसका कोई इस्तेमाल नहीं होता था। एक दिन जब पापा कहीं बाहर गए थे, तब मां ने वह कुर्सी निकाल कर कबाड़ी के सामने रख दी। अभी कबाड़ी उसे तोल ही रहा था कि पापा आ गए। कुर्सी कबाड़ी को दिए जाते देख कर वे एकदम मां पर बिफर गए।

पापा—'ये कुर्सी नहीं बिकेगी।'

मां—'वर्षों से यूं ही बेकार पड़ी है... इसे आप ठीक भी नहीं कराते... क्या फायदा इसका, कुछ पैसे ही मिलेंगे।'

पापा ने झल्लाकर कहा—'जो हो, ये कुर्सी नहीं बिकेगी।'

मां भी अड़ गयीं—'मैं ये कुर्सी आज बेच कर ही रहूंगी। फालतू का कबाड़ा संभालते रहो!'

पापा न बेचने देने की जिद पर थे तो मां बेचने की जिद पकड़े हुए थीं।

कबाड़ी बोला—'ऐसा है, आप लोग फैसला कर लो, मैं आधा घंटा बाद फिर आ जाऊंगा।'

पापा चिल्लाए—'खबरदार, जो इधर लौट कर आया।'

मां ने कबाड़ी को हाथ से रुकने का इशारा किया। तभी पापा ने आव देखा न ताव, वह कुर्सी उठाकर पूरी ताकत से घर की बाउंड्री के बाहर पिछवाड़े फेंक दी।

'मैंने जब कह दिया कि ये कुर्सी नहीं बिकेगी, तो नहीं बिकेगी।'

पापा के चेहरे पर एक विजेता के से भाव उभर रहे थे।

एक्सीडेंट

'बापू आज न, राजू की एक मोटरसाइकिल वाले से टक्कर हो गई।'

'अच्छा!' बापू हकबकाया।

'ये न, टक्कर लगते ही धड़ाम से गिर कर बेहोश हो गया... इसकी आंखें फटी की फटी रह गईं... हां!'

'फिर?'

'थोड़ी देर में खूब भीड़ जमा हो गई... लोगों ने मोटरसाइकिल वाले को घेर लिया। राजू के मुंह पर पानी छिड़का, तब बड़ी मुश्किल से होश में आया।'

'फिर क्या हुआ?'

'सबने मोटरसाइकिल वाले से दवा दिलवाने के लिए कहा। कई लोग राजू को उठाकर पास ही डॉक्टर के पास ले गए। वहां डॉक्टर ने इंजेक्शन लगा कर दवा दी। फिर लोगों ने राजू को मोटरसाइकिल वाले से फल और दवा के लिए दो सौ रुपये भी दिलवाये।'

'अच्छा, कहां है रुपये? राजू, ला दे इधर!'

राजू ने एक सौ नब्बे रुपये निकाल कर बापू को दे दिये।

और उस दिन के बाद अब आये दिन राजू का एक्सीडेंट हो जाता है।

गिद्ध

गिद्ध कई दिन से भूख से बदहाल थे। कहीं कोई लावारिस लाश नहीं। काफी खोजबीन के बाद भोजन का जुगाड़ न होने पर गिद्धों की सभा हुई।

'अगर इसी प्रकार चलता रहा तो हम लोग जल्द ही भूख से तड़प-तड़प कर मर जाएंगे।' एक गिद्ध ने थकी-थकी आवाज से कहा।

सब युक्ति निकालने लगे। आखिरकार गिद्धों के मुखिया ने ही समाधान निकाला। कुछ गिद्ध रात में छिपते-छिपते गए और शहर की बस्तियों में जगह-जगह लगीं मूर्तियों को अपनी चोंच और पंजों से खंडित कर आए।

सुबह होते ही दो समुदायों में जमकर घमासान हुआ। तमाम लाशें गिरीं। गिद्ध खुश। गिद्ध जमकर जीमे।

गिद्ध अब कभी भूखे नहीं रहते। उन्हें समाधान मिल गया है।

गली नं. 2, चन्द्रविहार कॉलोनी (नगला डालचंद), क्वारसी बाईपास, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

गूँगा सा लगता है

मदन देवड़ा

लेखक पेशे से अध्यापक रहे हैं। विगत चालीस वर्षों से देश की विभिन्न प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन। कानपुर की संस्था 'बटोही' द्वारा पुरस्कृत।

आँगन में बैठ गया
आज बिंयावान।
झरे-झरे पत्तों में
सोये हैं गीत।
छिपे हुए जिनमें हैं
सपने नवनीत।
ठहर गई दिन भर की
काँपती थकान।
इमली से छन-छन कर
भाग रही धूप,
पत्तों का नहीं रहा
पहले सा रूप।
गूँगा सा लगता है
खुला आसमान।
आँगन में बैठ गया
आज बिंयाबान।

निंदियारा दिन

पलकों पर थिरक उठे
सुधियों के छिन।
टूट-टूट जाते हैं
बाहों के सेतु
माथे पर बैठ गये हैं
राहू-केतु।
घाटी पर लेट गया
निंदियारा दिन।
लहरों के लेख-चित्र
सुधियों में नाच,
अंतर ही अंतर में
लगा रहे आँच।
हवा चली अपने ही
कदमों को गिन।
पलकों पर थिरक उठे
सुधियों के छिन।

**मालीखेड़ा मार्ग, ऑफिसर कॉलोनी के निकट,
तराना (उज्जैन)-456665**

जो बचेगा अंत में

कुमार शर्मा 'अनिल'

राजभाषा अधिकारी, एम.ए., एम.कॉम.। पत्रकारिता में स्नातकोत्तर डिप्लोमा। विविध साहित्यिक सम्मानों से पुरस्कृत।

तुम खुद नहीं जानती/मेरी उम्र की सलवटें
तुम्हारी उंगलियों की पोरों में/रहीं हैं सुलझती।
मेरी थकी हारी जिंदगी में
एक जवान मन के साथ
तुम्हारे आने पर ही
सर्वप्रथम जाना था मैंने/प्यार होता है क्या?

मेरे पूर्व के सारे प्रेम/तन और मन के
पूर्वाग्रहों से थे ग्रसित
यह पता भी अब चला है मुझे
जब तुम्हें बिना छुए/समेटे, लपेटे अपनी बाहों में
महसूस की है मैंने/प्रेम की पराकाष्ठा।

किसी तर्क की कसौटी पर/नहीं कसा, परखा
जा सकता है ये प्रेम/इस रूप में कि
क्या कर पाओगी तुम मेरे लिए।

अपने पति, बच्चों के लिए/जलते, रोशनी देते
अंधेरा समेट पिघलते/तुम्हारे अस्तित्व का मोम
जो बचेगा अंत में/फेंकने के लिए
सिर्फ वही मिलेगा मुझे
सहेजने, संभालने के लिए
बस, वही तो है हमारा प्रेम।

1192-बी, सेक्टर-41-बी, चंडीगढ़

हिमालय में

गंगा प्रसाद विमल

लगभग एक दर्जन काव्य-संग्रह प्रकाशित। राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सम्मान। स्वयं कवि ने अनेक विश्वविख्यात कवियों के अनुवाद हिंदी में प्रस्तुत किए हैं एवं उनकी काव्य कृतियों के भी हंदी से बाहर अनुवाद हो चुके हैं।

अभी वक्त बीता नहीं
पर्वत पार
वह ढलान से उतर
सुस्ता रहा होगा
छायाओं में
छायाएँ हैं। रहेंगी तब तक
जब तक तेज धूप
पिघलाती रहेगी बर्फ
और ठिठका हुआ वक्त
धीरे से धकियाकर
नई तारीख में
अवतरित होगा।
देखो तो
खुले आसमान में
बादलों के झुण्ड के झुण्ड
बीते वक्त को घना बताते हुए
पहले वक्तो जैसे
दीख रहे हैं खुले आसमान में
न हो यकीन
तो देख लो बादलों की
पुरानी अल्बम
हाँ—सब चीजें पुरानी अल्बमों से
गिरी तस्वीरों की मानिन्द
तरोताजा हैं अपने इतिहास के साथ
हम सब इतिहास में
दर्ज हैं कल के लिए
कल जो
वक्त बीतने पर भी
हाजिर होगा
हिमालय में...

सपना था या सच

सपना था या सच
पर सच ही था
वह सपने में ही सही
उभरा नराकार
नराकार और वह भी एक पर्वत
पर्वत क्या
चट्टानी शिलाएँ
जंगली लताएँ
वैढ़व सतह
रपटीनी ढलानें
यह सब नराकार बना
और देखा मैंने
पर्वत का मुँह
पर्वत के पाँव
चलने लगा वह
कहीं बाहर नहीं
बहुत चालाकी से
मेरे भीतर
और नराकार सचल था
पर भौतिक रूप से
अचल
हाँ—पर्वत अचल होते हैं।
परंतु
वह नराकार
चल रहा मेरे भीतर
मेरे भीतर हो एक एक
हवा और पानी
आसमान और धरती
और सूर्य—
अब सिर्फ देखना यह था
कि हिमालय कैसे चला आया
इतना सूक्ष्म बन कर
यही तो रहस्य है
नराकार का
वह अनहद
सीमाएँ
पार करता है
और तैरता है हवाओं में
वह जब मुझसे संवादरत होता है तब
सदियाँ छूट जाती हैं इतिहास में।

112, साउथ पार्क, कालकाजी,
नई दिल्ली-110019

अपनी आँखों का नंगापन

रीभा तिवारी

लेखिका सहायक शिक्षिका एवं आकाशवाणी सासाराम में नैमित्तिक कम्पीयर। विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ, गांधीनगर, ईशीपुर, जिला-भागलपुर (बिहार) से विद्यावाचस्पति। निराला साहित्य एवं संस्कृति संस्थान बस्ती (उत्तर प्रदेश) द्वारा साहित्य गौरव सम्मान। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कविता एवं लघुकथा प्रकाशन।

हाँ वहाँ मैं थी
जहाँ मेरे सामने से
एक तूफान गुजर गया
जिसमें समय की धूप
आँखों का सुनहरापन
मन का एहसास
अधखिली कलियों की भींनी-भीनी खुशबू
सारे कुछ उड़ा के ले गया।
इसकी सीमाओं में बद्ध
मेरा अपना अस्तित्व
कहीं गुम हो सा गया
और मैं अपनी सूनी आँखों से
अपने भीतर का देखती रही नंगापन
शायद तूफान
कल दुबारा भी आए
और उसे उदास होकर लौटना पड़ेगा
मेरी आँखों में जम आई रेत
तूफान को बदनाम कर देगी
और लोग तूफान से परहेज करने लगेंगे।
और करेंगे बारिश में
आने वाले तूफान का इंतजार
क्योंकि हवा है, बारिश है
घटा है, बादल है तो
तूफान आएंगे ही।

अपने भीतर का डर

आँखों में एक नई पहचान के साथ
मीठे स्वप्नों की ध्वनियाँ लिये
मैं यह सोचती हूँ।
सपनों के रंगों में
मुस्कुराते हुए
शरद चाँदनी सी खुशलिवास में
जमीन से जुड़े हुए लोगों की
तलाश में लगी हूँ आज तक।
बहुत सख्त होता है
अपने जेहन के गोशो में
किसी बात की नींव रख देना
तभी तो लताश मुस्कुराहटों की अमरबेल बन
जाती है
क्योंकि मुस्कुराहट निकाल देती है
अपने भीतर का डर
और अपनी खुदगर्जी।
कई बार मुझे भी
इस इंतहान से गुजरना पड़ा है
और मैंने खा ली कसम
कुंदन बनने की
अपने ही विरुद्ध
दुखों में मुस्कुराना
और फुर्सत में गुनगुनाना
जिंदगी का हिस्सा ही तो है
और मैं इस हिस्से में
जीना चाहती हूँ
मैं अब इस इलाके में
अपने ही अस्तित्व के साथ
रोना नहीं चाहती।

जिस्म के पानियों से

तुम्हें खबर है तुमने
अनगिनत खुरदरे पत्थरों को
अपने जिस्म के पानियों से धोकर
उसके समक्ष प्रेम के अनगिनत गीत गाये
भावनाओं के ज्वार में
बरसती हुई बूंदों की तरह
नदी हो गए, लेकिन
एक अनजानापन की मोटी परत
तुम्हारे और उसके बीच
रिश्तों के रेशम धागों पर जमी है।
अपने प्यार के लम्स की तासीर
जानने के लिए
एक बार तुम्हें
उसकी रूहों के भीतर जाना होगा
कभी कुछ खोकर
कभी कुछ पाकर
कभी हँस कर तो
कभी रो कर
होंठ पर दबी प्यार की बुनियाद
एक बड़े महल की ओर इंगित है।

द्वारा श्री नागमणि तिवारी, एस.बी.आई. कॉलोनी से पहले, फजलगंज, सासाराम, जिला-रोहतास-821115 (बिहार)

गज़ल

अखिलेश तिवारी

पिछले दो दशकों से गजल लेखन में सक्रिय। देश की तमाम प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं यथा हंस, कथादेश, समकालीन भारतीय साहित्य, पाखी, वागर्थ आदि में गजलें प्रकाशित। कई सम्मानों से सम्मानित एवं कवि सम्मेलनों/मुशायरों में भागीदारी।

(1)

कोई रातों को खटकाता है
सांकल कुछ नहीं कहता।
बस आहट दे के हो जाता है
ओझल कुछ नहीं कहता।।
सुलगती रेत, जलते पांव,
सहरा के मुसाफिर से
बता ऐ जिन्दगी क्या तेरा
आँचल कुछ नहीं कहता।।
वो कैसा कहर था, नाजिल
हुआ और कर गया साकित।
खला में घूरता रहता है
पागल कुछ नहीं कहता।।
वो कैसा लम्स था विष में
बुझी उस कसमसाहट का।
महकता जा रहा है जबसे
संदल कुछ नहीं कहता।।
हरेपन में अटक जाए कि
अपनी राह ले कोई।
नजारा करता तो रहता है
जंगल कुछ नहीं कहता।।
उसे मालूम हों बरसात की
मजबूरियाँ गोया।
बरसती है जब आँखों से
तो बादल कुछ नहीं कहता।।

(2)

कब तक घुटकर जीते रहते
सच्चाई के मारे ख्वाब।
पलकों की दहलीज से बाहर निकले
फिर बन्जारे ख्वाब।।
फितरत से ही आवारा हैं
कब ठहरे जो ठहरेंगे।
कैसे पलकों पर अटके हैं
कुछ खुशरंग तुम्हारे ख्वाब।।
अब मौला ही जाने इनमें
अपना कौन पराया कौन।
हँस-हँस कर हर शब मिलते हैं
यूँ तो इतने सारे ख्वाब।।
जीवन की इस आपाधापी में
जो पीछे छूट गये।
जाने अब किस हाल में होंगे
वो किस्मत के मारे ख्वाब।।
ताबीरों की फस्लें कैसी
उगती हैं कल देखेंगे।
हमने भी बोये हैं शब भर
रंग बिरंगे प्यारे ख्वाब।।
कब अखिलेश तवक्को की थी
बर्फीली उस घाटी से।
आँखों से बरसेंगे उसकी
बनकर यूँ अंगारे ख्वाब।।

(3)

खुद से ही संवाद है शायद
क्या है तेरी याद है शायद।

सीने पर पत्थर रक्खा है
रिश्तों की बुनियाद है शायद।

उसको गूंगा कर ही डाला
अपनों की इमदाद है शायद।

पहले बस्ती का सन्नाटा
जंगल इसके बाद है शायद।

पाँवों में जंजीर पड़ी है
मुझ जैसा आजाद है शायद।

पलकों की कोरें भीगी हैं
खुशियों का अनुवाद है शायद।

फ्लैट क्र.-एफ-91/92, रिज़र्व बैंक स्टाफ क्वार्टर्स, सेक्टर-जे, अलीगंज, लखनऊ-226024 (उ.प्र.)

कविताएं

आरती

प्रिंट एवं इलेक्ट्रोनिक मीडिया के कई उपक्रमों में संपादन कार्य। 'समय के साखी' साहित्यिक पत्रिका का पिछले सात सालों से संपादन। 'मायालोक से बाहर' कविता-संग्रह प्रकाशित। 'समकालीन कविता में स्त्री आलोचना' पुस्तक शीघ्र प्रकाश्य।

तुम्हें याद करते हुए

तुम्हें याद करते हुए आज सुबह मैंने
कुनकुने पानी में आधा चम्मच शहद मिलाकर
पिया
मेरे चेहरे से मिठास और लालिमा टपकने लगी
मैंने आईने में देखा
तुम मेरे पीछे खड़े थे
आज सचमुच, मेरी नजरों में 'मैं'
बेहद खूबसूरत लगी

आकार बन गया

अधिक दिन नहीं हुए थे तुमसे मिले
कि मेरे भीतर फैली तरल मिट्टी
कोई आकार सा अख्तियार करने लगी
मेरे उजाड़ हुए दिनों से
आ टकराईं
खनखनाती लाल ईंटें
तिनके चिंदियाँ रेशे किसी घोसले से उड़कर
कुछ
मेरे तो मानो पर ही उग आए
और मैं उड़ी भी दूरऽऽऽर दूर

छोटी छोटी बातें

बहुत सी बातें नहीं कहना चाहती मैं तुमसे
मसलन आज मेरी उँगली चाकू से घायल हो
गई
ऐसी छोटी छोटी बातें क्यूँ कहना
तुमने कहा—दर्द भी अब मेरा है इसलिए
और कोसों दूर बैठकर भी इस तरह
मेरे जख्मों में दवा लगा दी तुमने

ओ बसंत, सुनो

जिन संवेदनाओं को
मन की गहराई में
भीतर बहुत भीतर
अँधेरे तलघर में ढकेलकर
बंद कर दिया था
अवैध करार दिया था, उन्हें
जिन्हें पुकारने ना जाने
कितने सावन आए गए
कितने बादल बरसे बिफरे
एक बूँद तक ना पहुँचने दी नमी की
लू के झोंके जो आए थे जलाने
खुद ही जल भुन खाक हुए
पसीजी नहीं बिल्कुल
मौसम की मार से टकराती
मूक रही काया
एक लंबा आत्मयुद्ध जीने के बाद
अभी अभी माना ही था कि
अंतिम पड़ाव है
थोड़ा निश्चिंत हो पाँव पसारे ही थे
बसंत! कब कैसे किस तरह
तुम घुस आए मेरे घर के भीतर
ठक् ठक् किए बगैर
भेद दिया अभेद्य को
ना जाने कैसे तोड़ दिया कवच?
ओ बसंत! इसी का डर था
जो ऋतुओं के पार भी
खोले ना थे कपाट
ये कैसा परिवर्तन है
तुम पर गुस्सा नहीं आता
या कि तुमने किया है वशीकरण
तुम्हारा हाथ हाथों में लेकर
बेपरवाह हो गई
मधु बयार ने
सिर का बोझ छूमंतर कर दिया
ओ बसंत, सुनो!
तुम्हारे स्पर्श ने सिखाया
पराग का आस्वाद
भूल चुकी विगत का भय
और आगत की चिंता
वर्तमान के परिचय का
पहला अवसर है
जब माना
सात रंग होते हैं जीवन में भी।

**बी-509, जीवन विहार कॉलोनी,
पी एण्ड टी चौराहा,
भोपाल-462003 (म.प्र.)**

नवगीत/दोहे

अशोक कुमार गुप्त 'अशोक'

स्वतंत्र लेखन। कविता, गीत, नवगीत तथा गज़ल में लेखन में सक्रिय।

होठों पर मेरा नाम लिए

होठों पर मेरा नाम लिए
मेरी चौखट तक आ जाना।
जो गीत रचे हों अन्तस में
उनको आ करके गा जाना।

राह ताकते हुए तुम्हारी
बरस अनेकों बीत गए।
ऋतु बसंत की गई बहुत ही
पावस गर्मी शीत गए।
सुखद प्रीति की छाँह ओढ़ तुम
जलधर बन कर छा जाना।
होठों पर मेरा नाम लिए
मेरी चौखट पर आ जाना।

सूना है दालान भवन का
सूना पड़ा बिछौना है।
मन से बहुत उदास लग रहा
यह बकरी का छौना है।
भाव प्रेम का उर में भर कर
मन में नेह जगा जाना।
होठों पर मेरा नाम लिए
मेरी चौखट तक आ जाना।

सहमी सहमी नीम ताकती
सूखी आंगन की तुलसी।
गेंदा चम्पा मौलश्री की
सभी पत्तियाँ हैं झुलसी।
बैठे मुंडेर पर कागा का
व्यवहारिक शगुन बता जाना।
होठों पर मेरा नाम लिए,
मेरी चौखट पर आ जाना।

फिर से संयोग बने अपना
सावन की मधुर फुहारों का।
होकर 'अशोक' आओ ले लें
आनन्द-मधुर मनुहारों का।
अन्तस हो जाए तृप्त मेरा,
तुम अमिय अश्रु बरसा जाना।
होठों पर मेरा नाम लिए,
मेरी चौखट तक आ जाना।

बदल गया है शहर हमारा

बदल गया है शहर हमारा,
बदल गया है गाँव।
बदल गया आचरण हमारा,
जन से हुआ दुराव।
बदल गई है नीति हमारी
बदल गए उद्देश्य।
बदल गए हैं कर्म हमारे
बदल गए परिवेश।
बदले-बदले प्रौढ़ दिख रहे
बृद्ध हुए बेभाव।
बदल गया है शहर हमारा
बदल गया है गाँव।

नहीं बदलने की चाहत में
बूढ़ा बरगद ताके।
खड़ा हुआ है गाँव किनारे
दूर-दूर तक झाँके।
बन्द पखेरू की हलचल है
नहीं गिद्ध ठहराव।
बदल गया है शहर हमारा
बदल गया है गाँव।

सिमट गई चौपालें घर में
सिमटी-सिमटी होली।
सिमटे सभी खेल गुड़ियों के
सकुचाई मुँहबोली।
श्वेत वसन में छिपे दुष्ट तन
मन रखते कटु भाव।
बदल गया है शहर हमारा
बदल गया है गाँव।

124/15, संजय गाँधी नगर, नौबस्ता, कानपुर-208021

प्रेम कविताएं

संजीव श्रीवास्तव

लेखक पेशे से टीवी पत्रकार हैं। 'समय' न्यूज चैनल में प्रोड्यूसर। भारत सरकार के प्रकाशन विभाग से फिल्म पर समय, सिनेमा और इतिहास पुस्तक प्रकाशित। दो उपन्यास शीघ्र प्रकाश्य।

पत्थर (एक)

दुनिया ने कहा
वह पत्थर है
कुछ बोल नहीं सकता
मैंने कहा
मुझे पत्थर से बातें करना
बहुत अच्छा लगता है।

दोस्तों ने कहा
वह बेजान है
उसमें कोई हलचल नहीं होती
मैंने कहा
पत्थर को सहलाना
मुझे सुकून पहुंचाता है।

ज्ञानियों ने कहा
वह कठोर होता है
उसमें कुछ अहसास नहीं होता
मैंने कहा
पत्थर मुझे संवेदनशील बनाते हैं।

सगे संबंधियों ने कहा
उसकी आंखें नहीं होतीं
वह कुछ देख नहीं सकता
मैंने कहा
मैं पत्थर की सादगी को
निहारता रहना चाहता हूं।

मां ने भी कहा
पत्थर में दिल नहीं धड़कता
मैंने कहा
पत्थर के लिए मेरा दिल धड़कता है।

प्रियजनों ने कहा
पत्थर चोट पहुंचाते हैं
मैंने कहा
पत्थर तो हथियार होते हैं
खुद कहां किसी पर बरसते हैं।

संतों ने कहा
पत्थर बुत की तरह होते हैं
मैंने कहा
एक मीरा ही नहीं
सारी दुनिया बुत से ही तो प्रेम करती है।

पत्थर (दो)

यकीन मानिए मैं पत्थर की सिला नहीं हूं
मैं तो मोम का पथराया हुआ टुकड़ा हूं
मुझे तोड़ो मत, टूट कर बिखर जाऊंगा
मुझे तो किसी की आंच ही पिघला सकती है।

आसमान सा प्रेम

एक बार/मैंने तुमसे पूछा था
तुम्हारे छोटे दिल में
समंदर-सा प्यार/कैसे लबलबाता है?
तब तुमने कहा था
जैसेकि तुम्हारी छोटी-सी आंखों में
कितना बड़ा आसमान/छलछलाता है।

मिलन

वह मुझे कम ही देख पाती थी
क्योंकि उसकी आंखों की झील
मेरे ही प्रेम से डबडबाई थीं
वह मुझसे कम ही बतिया पाती थी
क्योंकि उसके हृदय का ताल
मेरे ही प्रेम से लबालब भरा था
एक दिन आंगन में
सूरज ने हमारी परछाई का
आलिंगन करा दिया था
तब से वह मिल भी नहीं पाती थी
क्योंकि वह मुझमें
हमेशा के लिए समा गई थी।

37-ए, तीसरी मंजिल, गली नं. 2, प्रताप नगर, मयूर विहार फेज-1, दिल्ली-110091

प्रेम-गीत

जगदीश पंकज

सैंट्रल बैंक ऑफ इंडिया से वरिष्ठ प्रबंधक पद से सेवानिवृत्त। संप्रति स्वतंत्र लेखन में सक्रिय। 'सुनो मुझे भी' (नवगीत संग्रह) तथा 'सारांश समय का' (साझा संग्रह) और 'शतदल' में कविताएं प्रकाशित। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में नवगीत, गीत, समीक्षाएं एवं कविताएं प्रकाशित।

बड़े ही प्यार से आकर

बड़े ही प्यार से आकर
परिन्दे डाल पर बैठे
मिला कर चोंच अपनी
गुफ्तगू करते इशारों में
कभी आंखों/कभी हैं, देह-भाषा के
निमन्त्रण भी/चलो मिलकर बिताएं
मौसमी उल्लास के/क्षण भी

मार कर चोंच दूजे को
चुहल उन्मुक्त सांसों की
परस्पर गुदगुदी करते
बड़े संयत विचारों में

सभी कुछ पारदर्शी है
परिन्दों की कहानी में
कभी समवेत कलरव में
सुरों की भी रवानी में

प्रणय की भावनाओं पर
नियंत्रण भी स्वयं के हैं
खगों से सीख लेकर हम
बहें कुछ तो किनारों में

सौजन्य का बहता हुआ जल

क्यों सहज सौजन्य का
बहता हुआ जल/घट रहा है

बढ़ रहे हैं पुलिन/अब संवेदना के
और सिमटे घाट/बढ़ती बर्जनाएं
आइये मिलकर तलाशें/इस नदी की धार में
कुछ प्यार की /सम्भावनाएं।

निर्विवादित सम्मिलन का
साक्षी हर/तट रहा है

छद्ममय सौहार्द से/जलजीव, अपने
वंशजों की सोचकर/चिन्तित हुए हैं
द्वेष-छल के बादलों की/साजिशों को
देख कर, भयभीत हैं/शंकित हुए हैं।

भितरघाती तेज
लहरों से किनारा/कट रहा है।

सूख न जाए/नदी सौहार्द की
विश्वास औ' संवेदना की
हृदयतल में/भीग न जाए
कहीं पर भी किसी की
आंख कोई विवश होकर/अश्रुजल में।

गरम होती रेत के
संकेत हैं कुछ/बंट रहा है।

वृद्ध पीपल यह खड़ा

वृद्ध पीपल यह/खड़ा चौपाल के आगे
साक्षी अनगिन-अकथ/मौखिक कथाओं का।

आयु में भी यह/पितामह से बड़ा है
पीढ़ियां खेलीं/कई इसके तले हैं
हर अमंगल के/हरण की कामना के
मनौती के दीप/चरणों में जले हैं।

इन बदलती/आस्थाओं के क्षरण में
साक्षी पीपल बना/निष्ठुर व्यथाओं का।

हो रहे बदलाव/श्रम के साधनों में
हम बदलते जा रहे/सहकार से भी
चेतना कच्चे कलावों से/बंधी जो
छोड़ पाए हैं नहीं/व्यवहार से भी।

ये हमारे नीम/पीपल और बरगद
दे रहे सन्देश अब भी/हैं प्रथाओं का।

**सोमसदन, 5/41, सेक्टर-2, राजेन्द्र नगर,
साहिबाबाद, गाजियाबाद-201005**

कविताएं

डॉ. निर्मल कुमार

दिल्ली विश्वविद्यालय में एसोसिएट प्रोफेसर। कविता, गीत, गजल लेखन में सक्रिय। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, गीत, कविता आदि प्रकाशित।

एक ख्वाब

एक ख्वाब
एक एहसास
एक रोज
आते रहे
दबे पाँव
जैसे तुम्हारे ख्याल
हौल से
आते हैं
दुलराने को
समझाने को
मनाने को आया
एक नया
शख्स अंजाना।
उड़ती रही
आँखों में पड़ती धूल
एक समय से
आती रही
खुशबू किसी सोच की
सोच जो नादान थी
सोच जो बेरंग थी
तुमने कहा
मैंने सुना
उसकी चीख
मेरी पुकार
सुनो दास्ताँ
सुनाता एक फसाना
जरा दिल थाम कर बैठो।

मकान खाली है!

खाली खाली से घर में खाली सा मकान है
मेरा वजूद मुझसे हजार सवाल करता है
नल में पानी का बूँद बूँद टपकना
खोखला करती है मेरे सोच की सारी प्रक्रिया
घर के हर कोने में अँधेरे का राज
तुम्हारे जज्बात अब दीखते नहीं
और अब इतने पास हो नहीं की
खुशबू ही आ जाये।
एक अनगढ़ कहानी, उसके उलझे पात्र
टेढ़े मेढ़े रास्ते और गिनती की साँसें
दूर तक है नहीं कोई थामने को हाथ
खाली से घर में
हर ओर बिखरा हुआ वक्त
और उस अनछुए पल की रोशनी में
तुम्हारे होने न होने का नमकीन सा एहसास
कभी जिन लबों पर बिखरी थी तबस्सुम
और मेरा होना लिखा था
अब, सब मेरा है नहीं, कुछ भी नहीं
लिखा तो है आज भी
यह मकान खाली।

है तूफान तो मनाईये मौज

तूफान पर मची क्यों हाय तौबा
आँधी ही तो है, गुजर जाएगी
यह गरीब लोग भी बहुत चिल्लाते हैं
अपनी तकलीफ बहुत बार सुनाते हैं
मौसम का महकमा भी मजे ले रहा है
एक छोटा सा हादसा है,
बस हौव्वा बना दिया है
देखो हमारे टीवी वालों को
कैसे रोटी चल रही है उनकी
हम हैं पहली खबर के साथ
यही ब्रेकिंग न्यूज बन गया है
बाहरी मुल्कों में तो मामला गरम है
गरीब भारत में तूफान आ रहा है
यह अच्छी खबर है
जो गमगीन होकर सुना रहे हैं
चल रहा है खबर का रोजगार
टीवी के लोग कमा रहे हैं इश्तहार से पैसा
मगर गरीब लोग हैं कि चुप ही नहीं होते
फेसबुक पर भगवान-खुदा को दुहाई दे रहे हैं
अब पैसा कमाना आया नहीं
तो यू ही कोसेंगे तूफान को
वरना टीवी पर दुहाई दो
और मांगो तगड़ा मुआवजा
सीखो पूंजीपतियों से अपने बाप की
मैय्यत से पैसे कमाना
उनकी मैय्यत दफनाने का भी
लाइव टेलीकास्ट करवाओ और पैसा कमाओ
तूफान से डरो नहीं, उसको भुनाओ
जय हो टीवी पूंजीवाद!

एसोसिएट प्रोफेसर, क्लस्टर इन्नोवेशन सेंटर,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
यूनिवर्सिटी स्टेडियम, दिल्ली-110007

प्रेमचंद साहित्य : एक खोज

कृष्णवीर सिंह सिकरवार

जाने-माने समीक्षक एवं लेखक।

प्रेमचंद : विश्वकोश (दो खण्ड) प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 1981 में प्रकाशित प्रेमचंद : पत्रकोश, अमित प्रकाशन गाजियाबाद, वर्ष 2007 में प्रकाशित एवं प्रेमचंद : कहानी-कोश, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली वर्ष 2016 में प्रकाशित इन पुस्तकों का संपादन करने वाले मर्मज्ञ व चिंतक एवं देश-विदेश में प्रेमचंद साहित्य के विशेषज्ञ के रूप में अपनी पहचान बनाने वाले विद्वान आलोचक डॉ. कमल किशोर गायेनका की पुस्तकों के नाम हैं। हाल ही मैं उनको के.के. बिडला फाउन्डेशन, नई दिल्ली द्वारा व्यास सम्मान से सम्मानित किया गया है। यह सम्मान उनको वर्ष 2012 में नटराज प्रकाशन, नई दिल्ली से प्रकाशित पुस्तक 'प्रेमचंद की कहानियों का कालक्रमानुसार अध्ययन' के लिए प्रदान किया गया है।

प्रेमचंद आज हिन्दी साहित्य जगत् में पढ़ने वाले सर्वाधिक लोकप्रिय रचनाकार हैं, उनकी प्रसिद्धि का आलम यह है कि उनके साहित्य को लेकर पाठकों में हमेशा से ही उत्सुकता रही है। आज उनका साहित्य पाठकों के लिए जीवन स्त्रोत बन चुका है। उनकी मृत्यु के लगभग 78 वर्षों के दौरान उनके साहित्य को लेकर काफी कुछ विभिन्न विद्वान लेखकों द्वारा लिखा जा चुका है व यह सिलसिला आज भी निरंतर जारी है। उनके साहित्य पर अनेक प्रकार के शोध किए जा चुके हैं, इसी कारण प्रेमचंद के साहित्य में रुचि रखने वाले विभिन्न विशेषज्ञ एवं आलोचक उनके साहित्य को लेकर सजग व संवेदनशील हैं।

इन्हीं लेखकों व आलोचकों में खोजी प्रवृत्ति के धुनी मनीषी डॉ. कमल किशोर गोयनका हैं। डॉ. गोयनका ने अपने जीवन के लगभग 40 वर्ष प्रेमचंद साहित्य की खोजबीन में अर्पित कर दिये तथा यह खोज का सिलसिला अभी भी निरंतर जारी है। इसी साहित्यिक कोश शृंखला के तहत डॉ. गोयनका अपनी ताजा पुस्तक 'प्रेमचंद : कहानी-कोश' लेकर उपस्थित हुए हैं।

आज प्रेमचंद की बाजार में लगभग सभी प्रकाशित कहानियाँ उपलब्ध हैं तथा उनकी कहानियों को लेकर विभिन्न प्रकार के शोध किए जा चुके हैं। ऐसे में 'प्रेमचंद : कहानी-कोश' की आवश्यकता क्यों महसूस की गई व संपादक को इस पुस्तक को तैयार करने के लिए किन परिस्थितियों ने प्रेरित किया इस संबंध में डॉ. गोयनका कहते हैं कि "वर्ष 1981 में प्रकाशित 'प्रेमचंद : विश्वकोश' के पहले खण्ड में प्रेमचंद की शोधपरक कालक्रमानुसार जीवनी दी गई थी, जो हिंदी में पहला प्रयास था और दूसरे खण्ड में उनके संपूर्ण साहित्य का विवरण था। इस दूसरे खण्ड के बाद प्रेमचंद की कुछ और कहानियाँ मिली तथा उनकी कहानियों के कुछ नए-नए संस्करण व संकलन निकले तो यह आवश्यक हो गया कि प्रेमचंद की कहानियों तथा कहानी से संबंधित जो भी तथ्य एवं सूचनाएँ हैं, उन्हें एक नई पुस्तक में संकलित कर दिया जाए,

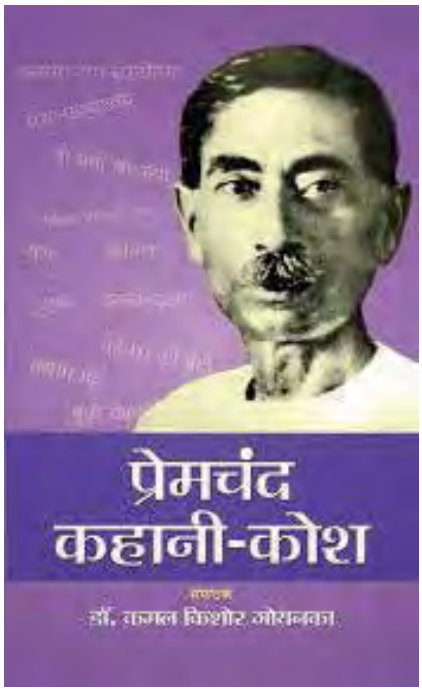

पुस्तक : प्रेमचंद : कहानी-कोश

संपादक : डॉ. कमल किशोर गोयनका

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002

प्रथम संस्करण : 2016

पृष्ठ : 352

मूल्य : 500 रुपये (हार्डबाउंड संस्करण)

जिससे प्रेमचंद की कहानियों के पाठकों एवं अध्येताओं को एक ही स्थान पर सारे तथ्य और जानकारियाँ उपलब्ध हो सके। इसी विचार को

ध्यान में रखकर 'प्रेमचंद : कहानी-कोश' की कल्पना की गई और 'प्रेमचंद : विश्वकोश' दूसरा खण्ड में जो कहानियों, कहानी संग्रहों तथा कहानी लेखों के विवरण थे, वे यत्र-तत्र संशोधन परिवर्द्धन के बाद 'प्रेमचंद : कहानी-कोश' में संकलित कर दिए गए और उसके साथ कुछ नई उपलब्ध कहानियों के विवरण भी जोड़ दिए गए। अब प्रेमचंद की कहानियों के पाठकों तक अध्येताओं को एक ही पुस्तक में प्रेमचंद के संपूर्ण कहानी संसार का विवरण एवं परिचय मिल जाएगा और प्रेमचंद का कहानीकार संपूर्ण रूप में उनके सम्मुख होगा। ज्ञान को सहज-सुलभ बनाना भी ज्ञान के विकास के लिए आवश्यक है। असल में यही वह मंत्र है जिसने मुझे 'प्रेमचंद : कहानी-कोश' तैयार करने के लिए प्रेरित किया। (भूमिका, पृष्ठ 6)

डॉ. गोयनका के अनुसार 'प्रेमचंद : विश्वकोश' को तैयार करने में देश के अनेक प्रोफेसरों, लेखकों आदि का सहयोग लिया था। हिन्दी में ऐसा सामूहिक प्रयास 'हिंदी साहित्य-कोश' वर्ष 1962 में हुआ था और उसके बाद 'प्रेमचंद : विश्वकोश' तथा 'प्रेमचंद : कहानी कोश' में हुआ है। (भूमिका, पृष्ठ 6)

'प्रेमचंद : कहानी कोश' में उपलब्ध सभी 299 हिन्दी-उर्दू कहानियों का विवरण अकारादि क्रम में किया गया है जिसमें कहानी का हिंदी नाम, कहानी का उर्दू नाम, प्रथम प्रकाशन वर्ष, कहानी के प्रथम संकलन का नाम, कहानी के उर्दू संकलन का नाम, हिन्दी कहानी का सार आदि के तहत प्रदत्त जानकारी पाठकों, अध्येताओं के लिए किसी वरदान से कम नहीं है। प्रेमचंद की कहानियों को लेकर ऐसा कार्य इससे पहले कभी हुआ हो, देखने को कम ही मिलता है। यह प्रेमचंद की कहानियों का एक ऐसा कोश है जिससे पाठक सूक्ष्म से सूक्ष्म जानकारी सूचीबद्ध तरीके से सिलसिलेवार रूप में प्राप्त कर सकता है।

पुस्तक में प्रेमचंद के हिन्दी-उर्दू कहानी संकलनों के प्रथम संस्करण के आवरण पृष्ठ की फोटोप्रति प्रकाशित की गई है, जो पुस्तक को एक नई खूबसूरती प्रदान करते हैं। जिन हिन्दी कहानी संकलनों के आवरण पृष्ठ पुस्तक में प्रकाशित किए गए हैं उनका विवरण इस प्रकार है—'अग्नि-समाधि तथा अन्य कहानियाँ' प्रथम संस्करण वर्ष 1929, 'गुप्तधन' (भाग 1 व 2), प्रथम संस्करण वर्ष जुलाई, 1962, 'टालस्टॉय की कहानियाँ अनुवाद तथा रूपांतरकार प्रेमचंद', प्रथम संस्करण वर्ष 1980, 'नवनिधि—नौ भावपूर्ण गल्पों का संग्रह', प्रथम संस्करण वर्ष 1929, 'प्रेम-कुंज', प्रथम संस्करण वर्ष 1930, 'प्रेम-चतुर्थी', प्रथम संस्करण फाल्गुन 1985 वि.सं., 'प्रेम-तीर्थ', प्रथम संस्करण वर्ष 1928, 'प्रेम-द्वादशी', प्रथम संस्करण वर्ष 1983 वि.सं., 'प्रेम-पंचमी', प्रथम संस्करण 1987 वि.सं., 'प्रेम-पचीसी', प्रथम संस्करण वर्ष 1926, प्रेम-पीयूष', प्रथम संस्करण वर्ष 1935, 'प्रेम-प्रतिमा', प्रथम संस्करण वर्ष 1926, 'प्रेम-प्रमोद', प्रथम संस्करण वर्ष 1926, 'मानसरोवर' भाग-1, प्रथम संस्करण, वर्ष मार्च 1936, 'मानसरोवर' भाग-2, प्रथम संस्करण, वर्ष मार्च 1936, 'मानसरोवर' भाग-3, प्रथम संस्करण वर्ष अप्रैल 1938, 'मानसरोवर' भाग-4, प्रथम संस्करण, वर्ष 1939, 'मानसरोवर' भाग-5, प्रथम संस्करण वर्ष 1936, 'मानसरोवर' भाग-7, प्रथम संस्करण, वर्ष 1947, 'लाल-फीता या मैजिस्ट्रेट का इस्तीफा' प्रथम संस्करण 1978 वि.सं., 'सप्त-सरोज', प्रथम संस्करण वर्ष जून 1917, वर्ष 1935, 'समर-यात्रा', प्रथम संस्करण वर्ष 1930 आदि। उर्दू कहानी संकलनों का वितरण इस प्रकार है—'प्रेम-पचीसी' भाग-1, प्रथम संस्करण वर्ष अक्टूबर, 1914, 'प्रेम-पचीसी' भाग-2, प्रथम संस्करण वर्ष मार्च 1918, 'सोजेवतन', प्रथम संस्करण वर्ष जून 1908, 'सोजेवतन व सैरे दरवेश', प्रथम संस्करण, वर्ष 1929 आदि।

समग्रतः कहा जा सकता है कि जो पाठक प्रेमचंद साहित्य में रुचि रखता हो उसके लिए यह पुस्तक किसी वरदान से कम नहीं है। 353 पृष्ठों की इस पुस्तक में पाठकों को बहुत कुछ देखने को मिलेगा। पुस्तक की साज-सज्जा व गेट-अप अति उत्तम है। इस पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर प्रेमचंद का फोटो इस पुस्तक की खूबसूरती को और भी आकर्षक बनाता है। छपाई उम्दा व पेपर क्वालिटी भी बहुत बेहतरीन है। मुद्रण की अशुद्धियाँ न के बराबर हैं। इस कारण पाठक को पुस्तक पढ़ने में कठिनाई उत्पन्न नहीं होती है। ऐसी बेहतरीन पुस्तक का सभी जगह स्वागत होना चाहिए तथा प्रेमचंद साहित्य में जिज्ञासा रखने वाले समस्त पाठकों को एक बार इस ऐतिहासिक धरोहर को अवश्य देखना चाहिए।

आवास क्रमांक एच-3,
राजीव गाँधी प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
एयरपोर्ट बायपास रोड, भोपाल-462033 (म.प्र.)

दिनकर पर एक नया विमर्श

डॉ. रमेश कुमार सिंह

युवा समीक्षक डॉ. रमेश कुमार सिंह की समीक्षाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित।

डॉ. जयपाल सिंह हिन्दी साहित्य में अज्ञातकुलशील नहीं है, वे लगातार एक प्रतिबद्ध खामोशी एवं तेवर के साथ साहित्यिक और सामाजिक कर्म में सक्रिय हैं। चाहे वो पत्र-पत्रिकाओं आदि में कविता, लेख, समीक्षा एवं समसामयिक विषयों पर चिंतनपरक लेख हों जिन्हें लेकर वे निरन्तर हमारे सामने आते रहे हैं। इसी लेखन का परिणाम है उनकी आलोचनात्मक पुस्तक 'नवजागरण सृजनशीलता और दिनकर का आलोचना साहित्य' एवं 'दिनकर और शुद्ध कविता की खोज'।

दोनों पुस्तकों को पढ़ते हुए पाठक के मन में यह प्रश्न जरूर आएगा कि रचनाकार समाज के प्रति गम्भीर सरोकार रखता है। उसने अपनी दोनों पुस्तकों को राष्ट्रकवि दिनकर को ही केन्द्र में रखकर क्यों लिखा? इस सवाल का जवाब तलाशने के दौरान मुझे दो बातें दिखाई दीं। प्रथम डॉ. जयपाल का बचपन से लेकर आज तक दिनकर साहित्य का गम्भीर अध्ययन, चाहे वो पी.एचडी. के दौरान रहा हो या राष्ट्रकवि दिनकर स्मृति न्यास, दिल्ली में सम्पादक के रूप में।

दूसरा कारण बौद्धिक कम और संवेदनशीलपरक और आत्मीयतापरक अधिक लगता है, और वह यह कि दिनकर का समुचित मूल्यांकन और आलोचना, इससे पहले इतनी गहराई से किसी ने करने का प्रयास नहीं किया। हो सकता है, दिनकर और डॉ. जयपाल का दोनों जन्म आदर्श ग्राम सिमरिया में होना तथा सिमरिया को साहित्यिक तीर्थ का दर्जा दिया जाना भी एक महत्वपूर्ण कारण हो।

वर्तमान समय में हिन्दी साहित्य के कीर्तिस्तम्भ और आलोचक प्रो. नामवर सिंह, प्रो. नित्यानंद तिवारी, प्रो. विश्वनाथ त्रिपाठी, प्रो. गोपेश्वर सिंह और डॉ. रामेश्वर राय जैसे आलोचना के मूर्धन्य विद्वानों के मार्ग-निर्देशन में डॉ. जयपाल सिंह के साहित्यिक दृष्टिकोण का निर्माण हुआ। इस कारण पुस्तक की पठनीयता और बढ़ जाती है।

दोनों पुस्तकों यानि 'नवजागरण सृजनशीलता और दिनकर का आलोचना साहित्य' एवं 'दिनकर और शुद्ध कविता की खोज' के अध्ययन के बाद पता चलता है कि डॉ. जयपाल जी की यह काबिलियत है कि उस वक्त की मौजूदा ऐतिहासिक और साहित्यिक सामग्री के गहन अध्ययन के साथ ही उन्होंने दिनकर पर प्रकाशित पुस्तकों का गम्भीर अध्ययन किया है और कहीं भी दोनों पुस्तकों को विषय के अतिरिक्त भटकने नहीं दिया और साथ ही दिनकर पर लिखी गयी आलोचनापरक रचनाओं में यह पुस्तक दिनकर के आलोचक व्यक्तित्व की व्यापकता और गहराई को उभारती हैं।

जहाँ तक मेरे इन दोनों कृतियों के समीक्षक होने के कारण का प्रश्न है, तो दिनकर

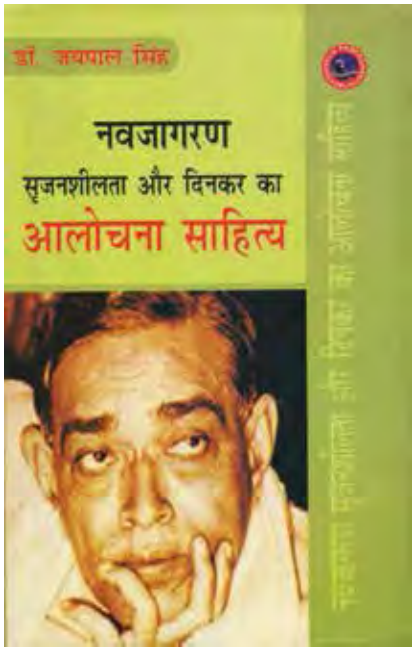

पुस्तक : नवजागरण सृजनशीलता और दिनकर का आलोचना साहित्य

लेखक : डॉ. जयपाल सिंह

प्रकाशक : शिवालिक प्रकाशन

27/16, शक्ति नगर,
दिल्ली-110007

राष्ट्रकवि के साथ ही मेरे सबसे प्रिय कवि व लेखक हैं और वो भी तत्कालीन दिल्ली विश्वविद्यालय के दिनों से ही नहीं बल्कि उससे पहले इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अध्ययन के दौरान सर गंगा नाथ झा छात्रावास में डॉ. अखिलेश राय सर द्वारा दी

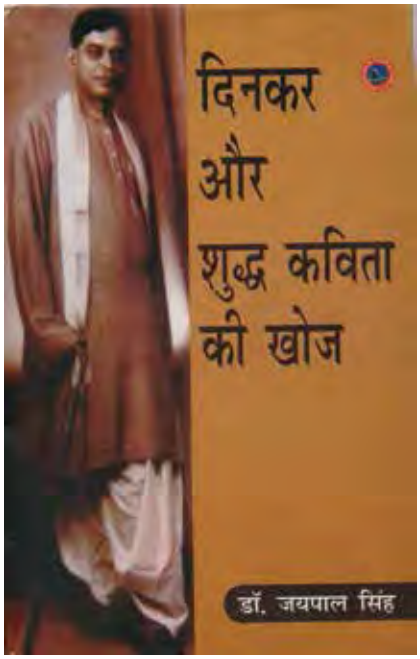

पुस्तक : दिनकर और शुद्ध कविता की खोज

लेखक : डॉ. जयपाल सिंह

प्रकाशक : शिवालिक प्रकाशन
27/16, शक्ति नगर,
दिल्ली-110007

गयी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' जो उपन्यास के समान रोचक और इतिहास के समान ज्ञानवर्धक थी, न जाने कितनी बार पढ़ी गयी। उससे भी पूर्व यू.पी. कॉलेज, वाराणसी के दिनों में डॉ. सपना सिंह द्वारा दी गयी 'रश्मिरथी' न जाने कब मेरी प्रिय पुस्तक बन गयी। जिसे पढ़कर न जाने कितनी बार मैं जी भर रोया और अब भी जब रोने का मन करता है तो उसे पढ़ लेता हूँ। तब से लेकर आज तक दिनकर पर लिखी जाने वाली लगभग हर पुस्तक मेरे अध्ययन का अनिवार्य हिस्सा बन गयी है और उनमें से बेहतरीन पुस्तकों पर समीक्षा लिखना मेरा साहित्यिक दायित्व बन गया। जिसके परिणामस्वरूप यह समीक्षा आपके सामने है।

आज युवा आलोचक डॉ. जयपाल सिंह बहुचर्चित और बहुपठित आलोचक भले ही न हो, मगर साहित्य में उनकी उपस्थिति को नकारा भी नहीं जा सकता। वे कम लिखते हैं, लेकिन जो भी लिखते हैं, वह महत्वपूर्ण और ज्ञानवर्धक कहा जा सकता है। अगर आलोचक डॉ. जयपाल के स्वभाव और उनकी इन दोनों आलोचनात्मक कृतियों को जोड़कर देखा जाए तो भविष्य के एक प्रखर युवा आलोचक का आगाज दिखाई देता है।

'नवजागरण सृजनशीलता और दिनकर का आलोचना साहित्य' डॉ. जयपाल की पहली आलोचनात्मक पुस्तक है। लेखक ने पाँच अध्यायों में दिनकर के चिंतन और आलोचनात्मक सोच के आयामों और बिंदुओं को प्रस्तावित किया है।

पहला अध्याय 'वैचारिक आधार : भारतीय नवजागरण और आधुनिक हिन्दी साहित्य' इसमें लेखक ने नवजागरण की अवधारणा के साथ सन्दर्भ और स्वरूप को स्पष्ट करते हुए विस्तार से यूरोपीय नवजागरण से लेकर जर्मनी, इटली, इंग्लैण्ड के नवजागरण के साथ ही आधुनिक हिन्दी साहित्य, भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के वैचारिक सरोकार की चर्चा बहुत ही सहज और सरल तरीके से की है।

दूसरा अध्याय 'दिनकर के आलोचना साहित्य का ऐतिहासिक विकास क्रम' में कुल 24 गद्य कृतियों का विश्लेषण एक बिल्कुल नये आयाम से किया गया है तथा लेखक दिनकर के चिन्तक और आलोचक व्यक्तित्व के प्रति एक अनिवार्य बौद्धिक कर्त्तव्य को निभाया है।

तीसरा अध्याय 'दिनकर के आलोचना साहित्य का वैचारिक स्त्रोत' यह पहली पुस्तक मुझे मिली जिसमें समग्र वैचारिक चेतना की यात्रा की पड़ताल की गयी है। चाहे वो मार्क्सवाद, गांधीवाद, तिलक, विवेकानन्द, जयप्रकाश नारायण, लोहिया, महर्षि अरविन्द हो या डी.एच. लारेंस, इलियट, रिल्के, बर्टेंड रसेल्स, टैगोर, इकबाल, जोश, पंत, गुप्त जी, राम नरेश त्रिपाठी, तुलसी, अम्बेडकर आदि। इन सबका प्रभाव दिनकर की मनोभूमि पर किस प्रकार पड़ा वह लेखक स्पष्ट करता है।

चौथा अध्याय 'दिनकर के आलोचना साहित्य का वर्गीकरण : परिचय और मूल्यांकन' इस अध्याय में दिनकर के आलोचना कर्म को सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक आलोचना से सम्बद्ध दिखाया गया है। दिनकर रचित 'संस्कृति के चार अध्याय' के आधार पर भारतीय संस्कृति के स्वरूप पर विस्तार से चर्चा भी की गयी है।

पाँचवा अध्याय 'आलोचना साहित्य के विकास में दिनकर का योगदान' इसे पढ़ते समय दिनकर की आलोचना उनकी कविता का पूरक प्रतीत होती है। यह एक हद तक सत्य है कि उन्होंने अपनी कविताओं की प्रतिरक्षा के लिए ही आलोचनात्मक लेखन किया।

इसके अलावा उपसंहार निष्कर्ष स्वरूप दिया गया है। दिनकर के व्यक्तित्व के तमाम पहलुओं को उजागर करने का प्रयास भी लेखक ने इस पुस्तक में किया है।

डॉ. जयपाल सिंह की दूसरी रचना 'दिनकर और शुद्ध कविता की खोज' मूलतः एक आलोचनात्मक गद्य कृति है। जिसमें लेखक दिनकर के आलोचनात्मक दृष्टिकोण के वैशिष्ट्य और शुद्ध कविता की शक्ति और सीमाओं को उद्घाटित करने का प्रयास किया है।

चार अध्यायों में बँटी यह पुस्तक प्रथम अध्याय 'रचनाकार—आलोचकों की परम्परा और दिनकर'। दूसरा अध्याय 'शुद्ध कविता : ऐतिहासिक विवेचन' जिसमें लेखक शुद्ध कविता को सम्पूर्ण इतिहास का लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है। तीसरा अध्याय 'शुद्ध

कविता की समस्या' जो कि भाषा, रूप और जीवनानुभूति एवं कलानुभूति की पृथकता को लेकर है। पुस्तक की मूल मान्यताओं व निष्कर्षों को संक्षिप्तता के साथ चौथे अध्याय 'उपसंहार' में प्रस्तुत किया है।

इन दोनों कृतियों के अध्ययन के बाद सिर्फ दिनकर की आलोचनात्मक दृष्टि का ही नहीं पता चलता इसके साथ ही अन्य ढेर सारी साहित्यिक संकल्पनायें स्पष्ट होती है। जैसे– नवजागरण, यूरोपीय नवजागरण, गाँधीवाद, मार्क्सवाद, रीतिकाल, छायावाद, प्रयोगवाद आदि की समझ और स्पष्ट गहरी होती है।

दोनों पुस्तकों के अध्ययन से दिनकर की प्रतिभा की व्याप्ति और विशालता का पता चलता है। दिनकर की आलोचनात्मक सोच के आयामों को रेखांकित करने वाली यह आलोचनात्मक पुस्तक दिनकर के बहुपठित एवं विश्वकोषीय मस्तिष्क दोनों का प्रमाण पेश करती है। नवजागरण काल को तथा छायावादोत्तर काल के सशक्त हस्ताक्षर राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर को समझने का तथा एक नयी सृजनशील दृष्टिकोण स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त करती है। पुस्तक के लेखन ही सहज-सरल धारा प्रवाहिता के कारण पाठक के मानसपटल पर अंकित हो जाती हैं। दोनों कृतियों के अध्ययन के बाद पता चलता है कि दिनकर केवल राष्ट्रकवि ही नहीं बल्कि गर्जन-तर्जन, सम्बोधन, प्रबोधन, उद्‌बोधन, आग और ओज के कवि हैं। साथ ही उनके लेखन में करुणा, ओज, क्रोध और सौन्दर्य सभी अलग-अलग रूप में विद्यमान दिखायी पड़ते हैं। निष्कर्षतः यह दोनों पुस्तकें दिनकर के आलोचक व्यक्तित्व को उभारने के साथ-साथ यह सिद्ध करती हैं कि दिनकर वादमुक्त कवि आलोचक थे। जैसे फूल तमाम दिशाओं से हवा ग्रहण करता है किंतु खिलता अपनी शर्तों पर है। दिनकर अपनी शर्तों पर जीने वाले और विकास करने वाले कवि आलोचक थे।

7/10-बी, तृतीय तल, इन्दिरा विकास कॉलोनी,
नई दिल्ली-110009

कबीर से संवाद

महेन्द्र प्रजापति

लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के हंसराज कॉलेज में तदर्थ प्राध्यापक हैं।

(पूरी चेतना से लगभग 5 बार और कुछ महत्वपूर्ण भागों को बार-बार बल्कि, अनगिनत बार 'विरले दोस्त कबीर के' पढ़ चुका हूँ। अपनी चेतना से इसकी रचना प्रक्रिया को जहाँ तक समझ पाया हूँ, लगता है कबीर के प्रति अतिश्रद्धानत पाठक की कुछ व्यक्तिगत टिप्पणियां जो, निश्चित रूप से कबीर के प्रति शब्दों का अर्पण मात्र रही होंगी ना कि किसी को बताने-समझाने के लिए, उत्सुकतावश अधिक जानने की सुइच्छा में शोध की तरफ प्रवृत्त हुई होंगी, जो भाषाई और भावनात्मक स्तर पर काव्यात्मक होने के कारण उपन्यास के रूप में ढल गयी होंगी। यह रचना कबीर के रचना कर्म और जीवन कर्म से अंतस तक भीगे हुए एक घोर प्रेमी पाठक की आत्मिक अभिव्यक्तियों का दस्तावेजीकरण है, जो तमाम अध्ययन के बाद भी कबीर के बारे में किसी 'अन्वेषण का दावा नहीं करता'। कृपया इसमें 'रचना' और 'आलोचना' के किसी गंभीर मानदंड की खोज बिलकुल ना की जाये वर्ना उपन्यास की मूल संवेदना तक पहुँचने में अवरोध उत्पन्न हो सकता है। ''ज्यों ज्यों बूढ़े स्याम संग, त्यों त्यों उजवल होय'' का भाव रखकर ही इस उपन्यास का सफल पाठक बनना संभव है।)

बीते कुछ महीनों में 'विरले दोस्त कबीर के' को लेकर जितनी चर्चाएँ हुई हैं, वह किसी सामान्य कृति के लिए संभव नहीं है। प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में अब तक दो दर्जन से अधिक समीक्षाएं प्रकाशित हो चुकी हैं, इतना ही नहीं इसको विशेष रूप से केन्द्रित कर जो चर्चाएं विभिन्न विश्वविद्यालयों द्वारा आयोजित संगोष्ठियों में हुई हैं वह किसी कृति की सफलता का अंतिम छोर ही कहा जा सकता है जहाँ कुछ शेष नहीं रह जाता। इतना कुछ होने के बावजूद भी अभी तक जो बातें 'विरले दोस्त कबीर के' की रचना प्रक्रिया को लेकर हुई हैं दरअसल वह पुस्तक की आंतरिक संवेदना के विशाल कलेवर की भूमिका मात्र ही कही जा सकती हैं। उक्त रचना अभी भी कई नए प्रतिमानों की स्थापना करने का साहस रखती है। आने वाले दिनों में इस उपन्यास को लेकर जो विमर्श खड़ा होगा निश्चित रूप से वह कबीर के सन्दर्भ में चकित करने वाला होगा, उसका कारण यही है कि कबीर समय के साथ जितने प्रासंगिक होते जा रहे हैं उन्हें लेकर लिखी जा रही आलोचनाएँ उतनी ही सतही होती जा रही हैं। अकादमिक और संस्थागत विद्वानों ने कबीर की कविताओं का जो मूल्यांकन अभी तक किया है वह विद्यार्थी, शोधार्थी, आलोचक, साहित्यकार और पाठक वर्ग के लिए बेशक कारगर सिद्ध हो सकती है परन्तु वह आलोचनाएँ स्वयं कबीर के जीवन-संघर्ष को समझने के लिए कोई सूत्र नहीं दे पाती हैं।

'विरले दोस्त कबीर के' निर्विवाद रूप से ऐसे तमाम रास्ते ईजाद करने में सफल हुई है, जहाँ से कबीर के करीब पहुँचा जा सकता है। उपन्यास में कई स्थानों पर ऐसे अंश प्रस्तुत हुए हैं। यथा—''शील संतोष और मोह, माया का प्रश्न उनके मन में शुरू से गूँजने लगा था।... यथार्थ के थपेड़ों से टकराकर जब कभी कबीर मर्माहत होते थे तो अन्दर बैठी चेतना उन्हें प्रोत्साहित करती—'उठ! कबीर उठ! खुद आगे बढ़। प्रतीक्षा मत कर। समय तेजी के साथ निकला जा रहा है। जा इसके साथ अपनी यात्रा शुरू कर। जब तक तू प्रश्नों

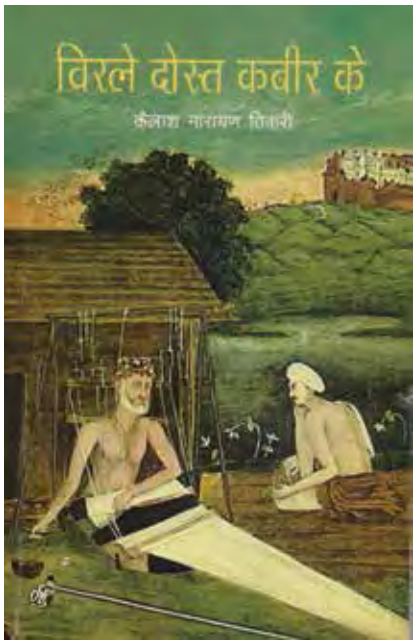

पुस्तक : विरले दोस्त कबीर के (उपन्यास)

लेखक : प्रो. कैलाश नारायण तिवारी

प्रकाशक : एनबीटी, दिल्ली

मूल्य : 115 रुपये

का उत्तर नहीं ढूँढ पाएगा तब तक तुम्हें चैन नहीं मिलेगा बस रात-दिन तड़पेगा। फिर भी पिया से मिलन नहीं होगा'।'' उपन्यास का यह वाक्यांश कबीर के अन्दर की उस बेचैनी को समझने के लिए कई दृष्टियों से मजबूत है जो उनका आध्यात्मिक पक्ष है, जो कबीर को 'जन कबीर' बनाने की प्रक्रिया आरंभ करता है। कबीर को लेकर अब जो आलोचनाएँ और रचनाएँ हुई हैं वह उनके जीवन को समझने के लिए नाकाफी ही कही जा सकती हैं। हालांकि यह भी सच है कि कबीर के जीवन

से जुड़ा सत्य प्रामाणिक रूप से कबीर मठों में भी उपलब्ध नहीं है उनके बारे में जनश्रुतियों और किंवदंतियों में ही अधिक मिलता है। हिन्दी साहित्य ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में कबीर संभवतः ऐसे कवि हैं जिन पर सबसे अधिक शोध हुए हैं। उपन्यासकार ने इस पक्ष पर गंभीरता से विचार भी किया है। वह लिखते हैं—''कबीर के जीवन संघर्ष के बारे में इतिहास तो चुप दिखाई देता ही है, तत्कालीन साहित्य में भी इस विषय पर कोई स्पष्ट राय दिखाई नहीं देती सिर्फ कबीर की वाणी है, जिसमें से कुछ बातों का अनुमान लगाया जा सकता है।''

हिन्दी ही नहीं बल्कि समाजशास्त्र, इतिहास और दर्शनशास्त्र में भी कबीर की लोकप्रियता का कोई अन्य विकल्प नहीं हो सका। उनकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता सहजता और सरलता है। कबीर की कविता का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं है जिस पर लिखा नहीं गया। ऐसे में कबीर केन्द्रित किसी और पुस्तक का प्रकाशन सबसे पहले यही सवाल पैदा करता है कि—''नया क्या होगा?' जब हम 'विरले दोस्त कबीर के' उपन्यास पढ़ते हैं तो पाते हैं कि इसमें कुछ भी पुराना नहीं है। दरअसल अभी तक कबीर की कविताओं पर ही लिखा गया जबकि यह पुस्तक कबीर के व्यक्तित्व पर केन्द्रित है। संभवतः कबीर के जीवन पर इतना प्रामाणिक काम अभी तक नहीं हुआ है। यह दुर्भाग्य ही है कि एक मनुष्य के रूप में कबीर का मर्म कभी नहीं समझा गया। उनकी कविता में निहित संवेदना को जिस तरह से प्रसारित किया गया, जीवन में उपयोग किया गया, उस तरह उनके स्वयं के जीवन की संवेदना को नहीं समझा गया। कबीर एक ऐसे कवि के रूप में ख्यात हैं जिनका काव्य जितना प्रतिरोध लिए हुए है उनका व्यक्तित्व भी उतने विद्रोह से भरा है। 'विरले दोस्त कबीर के' एक ऐसा उपन्यास है जिसके केन्द्र में विद्रोही कबीर की भावुकता के विभिन्न स्वरूपों को समझा जा सकता है। एक स्थान पर उपन्यासकार लिखता है—''लगभग बीस वर्ष की अवस्था में कबीर काशी के यथार्थ से टकराने लगे थे। समाज की ढेर सारी परम्पराएँ और कुरीतियाँ उन्हें बदबूदार लगने लगी थी। यद्यपि भारतीय दार्शनिक चिंतनधारा उन्हें अपनी ओर आकृष्ट कर रही थी। साथ ही उलझाने और सुलझाने वाली बातें भी उनके मन में प्रश्न बनकर उभरने लगी थीं।'' रचनाकार द्वारा लिखी गयी यह पंक्तियाँ सीधे कबीर के अन्दर छुपे उस मनुष्य को प्रस्तुत कर देती हैं जो अपने समाज और समय को लेकर लगातार चिंतन करता है और समस्या का हल भी खोजने का प्रयास करता है।

उपन्यास के मूल भाव या कहें मूल कथा में देवलोक में बैठे कबीर आज के समाज और उसकी विसंगतियों पर विचार करते हैं और अपनी साधना के बल पर अपनी माँ नीमा से वार्तालाप करते हैं। उपन्यासकार कल्पना की छूट लेते हुए इस बातचीत के माध्यम से मानवीय संवेदना के उस छोर तक पहुँचने की कोशिश करता है जहाँ तक अभी तक कोई अन्य नहीं पहुँच सका। कबीर अपनी माँ नीमा के सबसे करीब रहे और माँ के प्रति उनके मन में अगाध श्रद्धा का भाव भी देखने को मिलता है। चूँकि उपन्यास पूर्वदिप्ती शैली में लिखा गया है इसलिए कबीर बार-बार अपने पूर्व जन्म में लौटकर आज के समाज से उसे समझने की कोशिश करते हैं तो उन्हें महसूस होता है कि वह काशी को जैसे छोड़ गये थे वह आज भी वैसी ही है। पंडितों-मौलवियों और धार्मिक ठेकेदारों का वर्चस्व उसी तरह से बना हुआ है। आज के काशी की यह दुर्दशा देख उनका मन दुःख से भर उठता है। दुःख के इस कठिन समय में उनका संबल बनती है माँ—नीमा। सर्वविदित है कि कबीर दार्शनिक भी हैं, चिन्तक भी और नीमा अनपढ़ है परन्तु कबीर की उलझी गुत्थी को सिर्फ वही सुलझा पाती है क्योंकि माँ बुद्धि हीं मन का सुनती है और हृदय से विचार करती है। मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि उपन्यासकार ने अपने इस उपन्यास में नीमा और मनसादेव का चरित्र जिस तन्मयता से गढ़ा है वह अनंत समय तक पाठकों से संवाद करते रहेंगे। उनके संवाद और विचार साहित्य के पन्नों में अंत तक सुरक्षित रहेंगे। जाने-अनजाने में इस उपन्यास का हिस्सा बन गए यह दोनों पात्र ना होते तो यह कृति अधूरी रह जाती और इसकी संवेदना भी। उपन्यासकार ने क्या रच दिया है उसे स्वयं भी इसका अंदाजा ना होगा। कृति वही बड़ी होती है जिसके पात्र जेहन में उतर कर पाठक से हमेशा के लिए सम्बन्ध बना लें। 'विरले दोस्त कबीर के' में यह चरितार्थ हुआ है।

कबीर की कविता पर बहुत सारी प्रामाणिक पुस्तकें लिखी गयी हैं और आज भी निरंतर लिखी जा रही हैं। दरअसल उनकी काव्य-चेतना का कैनवास इतना विशाल है कि उनका व्यक्तित्व कहीं गुम हो गया। आलोचक और शोधार्थी कबीर के दुःख तक नहीं पहुँच सके। 'विरले दोस्त कबीर के' पुस्तक कबीर को एक मनुष्य के रूप में गढ़ती है। उनके दुःख और पीड़ा को उभारती है। उनके कुछ अधूरे सपनों को पुनर्जीवित करती है। उपन्यासकार ने बड़ी तल्लीनता से शोध करके कबीर के व्यक्तित्व के उस कोने तक पहुँचने की कोशिश की है जहाँ पर कबीर कोई महान कवि नहीं बल्कि एक मनुष्य मात्र हैं जिनके अपने छोटे-छोटे दुःख हैं। ऐसा भी नहीं कि कबीर उन दुःखों से पार पाना चाहते हैं। दरअसल ये वह दुःख हैं जिनसे वह आहत हुए थे। कबीर का समाज तमाम विसंगतियों और विडंबनाओं वाला रहा है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी छोटी मानसिकता के कारण अलग-अलग धार्मिक खेमों में बँटा हुआ है। कबीर आजीवन मनुष्य को यही समझाते रहे कि आचारण की शुद्धता स्वयं ईश्वर को अपने पास तक खींच लाती है पर अंधविश्वास और आडंबर में उलझा व्यक्ति सीधी-सी बात नहीं समझ पाया। वर्षों बाद जब कबीर अपने साधना और तप से आज के मनुष्य को देख रहे हैं तो भी वह उसी धर्मान्धता में जी रहा है। बल्कि उससे अधिक संप्रदायों में विभाजित हो चुका है। अपने समाज को ऐसे परिवेश में देख कबीर की छटपटाहट बढ़ जाती है। कबीर ने जिस भारत का सपना देखा था वह मर चुका है। उपन्यासकार ने बड़ी सतर्कता से कबीर के

व्यक्तित्व और कविता के माध्यम से आज के प्रश्नों को उठाया है जिसके केन्द्र में मनुष्य और मनुष्यता है। जिसके लिए उन्हें हर वर्ग से ताने सुनने पड़े यहाँ तक कि गालियाँ भी सुननी पड़ी पर वह डिगे नहीं, हारे नहीं और थके भी नहीं। इस सन्दर्भ में रचनाकार ने एक बहुत अच्छी बात कही है—''कबीर मध्यकालीन भारतीय समाज के बाह्याचारों के बीच घिरे हुए अपराजेय योद्धा बन चुके थे। निःशंक होकर माया की लड़ाई में आगे बढ़ने वाले सिपाही की तरह चारों ओर उन्हें सामाजिक विषमता और भेद, मतभेद का साम्राज्य दिखाई दे रहा था। उन्होंने उससे लड़ने की पूरी तैयारी कर ली थी, क्योंकि वह जानते थे कि लड़ाई के मैदान में उन्हें आध्यात्मिक चेतना के बल पर ही जीतना होगा।''

इस उपन्यास की सबसे बड़ी ताकत ये है कि कल्पना का सहारा लेकर जिन बिन्दुओं को सामने लाया गया है वह सत्य के इतने करीब खड़े लगते हैं कि कहीं से भी कल्पना का हिस्सा महसूस नहीं होते। बड़ा रचनाकार वही होता है जो अपनी मनोकल्पना से घटनाओं और पात्रों को जीवंत बना देता है। उपन्यासकार को इसमें महारत हासिल है जो उपन्यास में कई स्थानों पर देखने को भी मिलता है। कहीं-कहीं तो ऐसे दृश्य हैं जैसे वह सच में कबीर के जीवन का अभिन्न हिस्सा प्रतीत होते हैं। एक स्थान पर लिखते हैं—''कबीर प्राकृतिक उपादानों को जीवन की अमूल्य निधि मानते थे क्योंकि प्रकृति से उनका निकट का सम्बन्ध था। पूरी-पूरी रात वह प्रकृति की गोद में बैठे बिता देते थे। उस दिन भी बस एक ही बात लगातार सोचते रहे—''यह प्रकृति भी कितनी ममतामयी है, आनंददायिनी है, समान भाव से अपना सर्वस्व लुटा देती है, मनुष्यों के ऊपर।'' ऐसे कई भाव इस उपन्यास में सहज रूप से आ गए हैं जिसे पढ़कर महसूस होता है कि उपन्यासकार ने कबीर को साथ लिया है और उनसे संवाद भी करता है वर्ना किसी ऐतिहासिक चरित्र का इतना जीवंत वर्णन संभव ही नहीं है।

वह कबीर जो अपनी रचनाओं के माध्यम से आजीवन हाशिए के समाज के मानसिक संबल बने रहे उस कबीर को एक संबल देने की कोशिश करता उपन्यासकार भूमिका में ही स्पष्ट कह देता है कि—''यह उपन्यास कबीर के विषय में किसी भारी-भरकम अन्वेषण का दावा नहीं करता...'' फिर इस पुस्तक के अध्ययन के बाद मैं कह सकता हूँ कि कबीर के अंदर के 'कबीर' को समझने के लिए और उनके अंतरात्मा में फँसी कुछ टीसों और उनके चेहरे की तमाम उदासियों को, जिसे एक दिव्य पुरुष होने के भान ने दबा दिया है, को उपन्यासकार ने उभारने का कार्य किया है। निश्चित ही यह उपन्यास कबीर के निजी जीवन को समझने के लिए पहला प्रयास है। 'विरले दोस्त कबीर के' अपनी रोचकता और गहनता के कारण एक बार में पढ़ कर संतुष्ट हो जाने वाली पुस्तक नहीं है। जब-जब मनुष्य के रूप में कबीर को समझने की जरूरत होगी बिना इसे पढ़े संभव नहीं होगा।

इस उपन्यास की एक ताकत इसकी भाषा भी है, हालांकि जाने-अनजाने में प्रूफ की गलतियाँ रह गई हैं जो ऐसी महत्वपूर्ण कृति के लिए ठीक नहीं हैं। पढ़ने में अवरोध उत्पन्न करती हैं, परन्तु उपन्यासकार की भावना का आवेश इतना प्रबल है कि पुस्तक की संवेदना पर कोई फर्क नहीं पड़ता। एक तरह से कहें तो यह उपन्यास कबीर पर पूरी शोध पुस्तिका है परन्तु काव्यात्मक भाषा और अपने नायक के प्रति रचनाकार की श्रद्धा इसे उपन्यास कहने पर विवश कती है। स्वयं लेखक ने बातचीत में कई बार यह स्वीकार किया है कि ''मुझे स्वयं पता नहीं कि मैं क्या लिख रहा हूँ।'' कबीर की माँ नीमा की भाषा बनारसी 'भोजपुरी' है जिसमें 'बचवा' है तो 'मुहझौंसा' भी है। कबीर जब भी अपने पिता से डाँटे जाते हैं, माँ झट से उनके साथ खड़ी हो जाती है। एक स्थान पर पिता के क्रोध का निशाना बनते कबीर का पक्ष लेने पर नीरू नीमा से कहता है—''बिगाड़ दे अपने लड़िका के। हम्मै का...'' तो नीमा सहज ही कहती है—हर समय ऊ तोहर करघवै चलावै औ तू चौराहे पर जाके गप लगावा। तू त अपने के तरह एहू के कट्टर बनावै चाहै ल्या पर हमरे जियत इ सब ना होई''। उपन्यास का यह वाक्य मात्र भाषा की दृष्टि से एक उदाहरण भर नहीं है बल्कि कबीर के विद्रोही बनने की प्रक्रिया का मजबूत उदाहरण भी है। कबीर की माँ जानती है उसका पति कट्टर है पर वह यह भी जानती है कि कबीर ने जो रास्ता चुना है वह भारतीय समाज के समन्वय और विकास का भी रास्ता है। जो लोग कबीर को स्त्री-विरोधी समझते हैं इस उपन्यास को पढ़कर शायद उनकी धारणा ही बदल जाये। बेशक यह प्रश्न कबीर के जीवन का सत्य ना हो पर समाज का सत्य तो यही है और बड़ा रचनाकार समाज का सत्य लिखता है। उपन्यासकार ने सत्य लिखने का साहस किया है जो अब के साहित्यकारों से छूटता जा रहा है। सत्य को सत्य लिखने का साहस खो चुके इस समाज में जब कोई साहित्यकार अपनी कल्पना मात्र से सच का संसार रचने लगे तो समझना चाहिए कि रचना की सफलता निश्चित है, आज नहीं तो कल।

उपन्यासकार ने जिन घटनाओं, पात्रों और प्रसंगों का सृजन किया है वह निश्चित रूप से हिन्दी साहित्य में उपेक्षित रहे हैं। लिखे को बदल-बदल कर लिखने की परम्परा अभी खत्म नहीं हुई है परन्तु कैलाश नारायण तिवारी ने कबीर के सन्दर्भ में इस कथन को गलत सिद्ध किया है और लीक से हटकर लिखने का रिस्क लिया है जिसमें वे सफल भी हुए हैं। कबीर पर लिखना दो तरह का जोखिम लेना है। पहला जोखिम तो यही कि—नया क्या होगा? दूसरा जोखिम कि जो लिखा उसका प्रमाण क्या होगा? पर उपन्यासकार ने बहुत समझदारी से अपनी बातों को रखा है, जो काल्पनिक होकर भी यथार्थ से परे नहीं लगती। आने वाले समय में 'विरले दोस्त कबीर के' के कथ्य और शिल्प पर बहुत सारी बातें होंगी और होनी भी चाहिए। उपन्यासकार ने इसकी खूब गुंजाईश भी बना रखी है। कई बिन्दु हैं, कई घटनाएँ हैं, कई चरित्र हैं, और कई प्रसंग भी है जिसे केन्द्रित कर लिखा जाना संभव है।

द्वारा डॉ. रमा (प्राचार्य)
हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली-110007

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....
.....
.....
.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....
.....
.....
.....

विवरण	शुल्क	प्रतियों की सं.	रुपये/ US$
गगनांचल वर्ष.....	एक वर्ष ₹ 500/- (भारत) US$ 100 (विदेश) तीन वर्षीय ₹ 1200/- (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय 10 % पुस्तक विक्रेता 25 %		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं..... दिनांक.....

रु./US$..... बैंक.....भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूं।

कृपया इस फार्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएं :

वरिष्ठ कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं.- 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....
नाम.....
पद.....
दिनांक.....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् का एक महत्वाकांक्षी प्रकाशन कार्यक्रम है। परिषद् पांच भिन्न भाषाओं में, एक द्विमासिक - गगनांचल (हिंदी), दो त्रैमासिक - इंडियन होराइज़न्स (अंग्रेजी), तक़ाफत-उल-हिंद (अरबी) और दो अर्ध-वार्षिक - पेपेलेस डी ला इंडिया (स्पेनी) और रेन्कोत्र एवेक ला ऑद (फ्रांसीसी), पत्रिकाओं का प्रकाशन करती है।

इसके अतिरिक्त परिषद् ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य सहित विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों व दार्शनिकों जैसे महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएं परिषद् के प्रकाशन कार्यक्रम में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन कार्यक्रम विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है जो भारतीय संस्कृति, दर्शन व पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य व नाट्यकला से जुड़े होते हैं। इनमें विदेशी भाषाओं जैसे फ्रांसीसी, स्पेनी, अरबी, रूसी व अंग्रेजी में अनुवाद भी शामिल हैं। परिषद् ने विश्व साहित्य के हिंदी, अंग्रेजी व अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद की भी व्यवस्था की है।

परिषद् ने भारतीय नृत्य व संगीत पर आधारित डीवीडी, वीसीडी एवं सीडी के निर्माण का कार्यक्रम भी आरंभ किया है। अपने इस अभिनव प्रयास में परिषद् ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिल कर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है। भारत के पौराणिक बिंबों पर ऑडियो सीडी भी बनाए गए हैं।

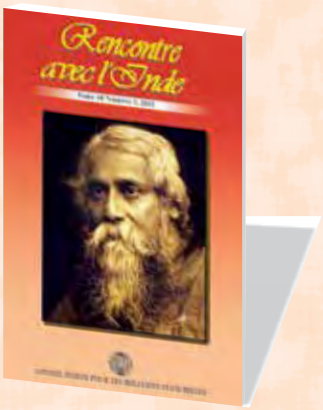

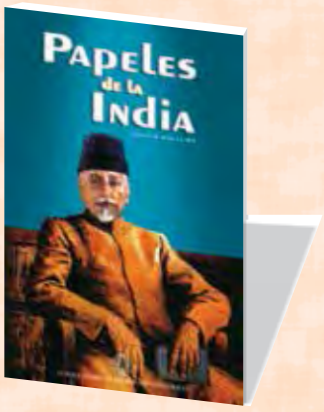

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

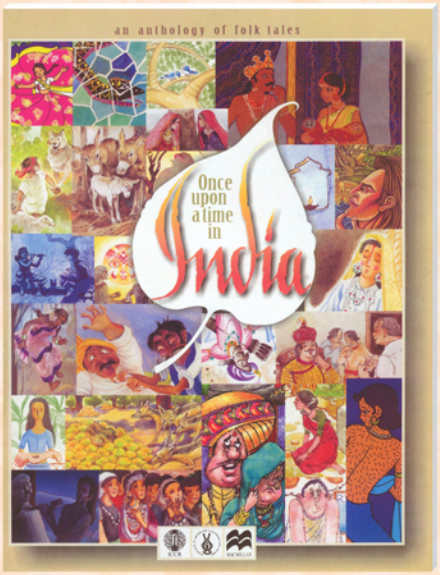

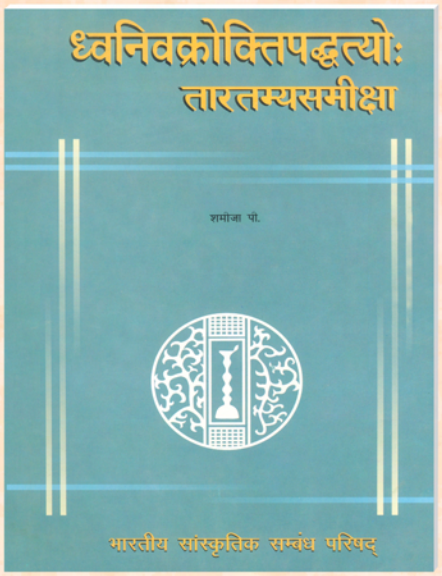

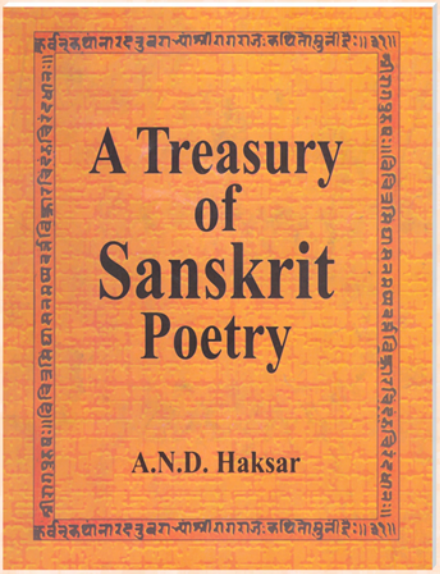

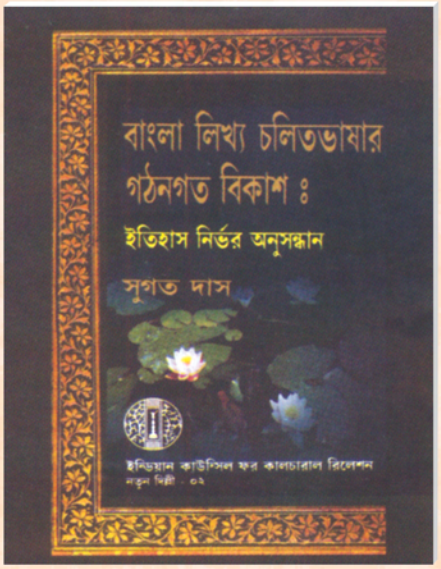

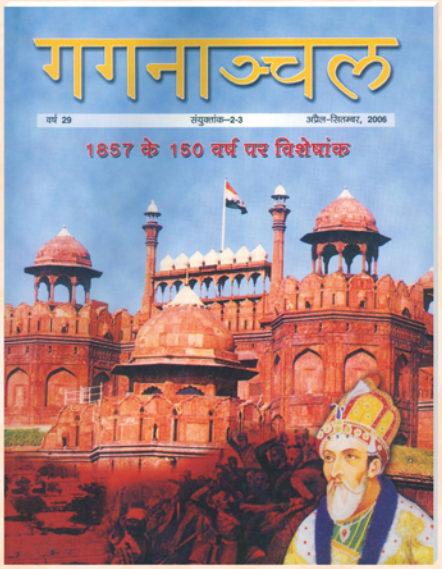

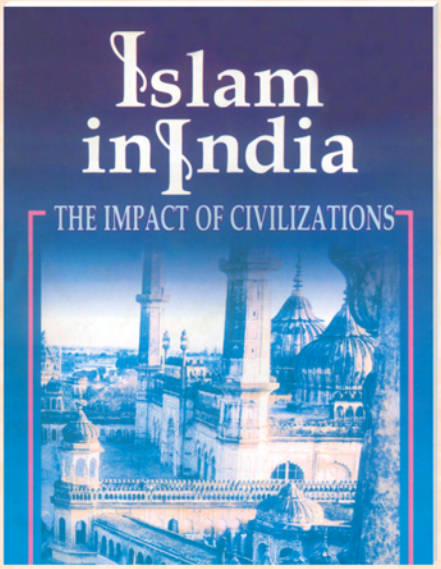

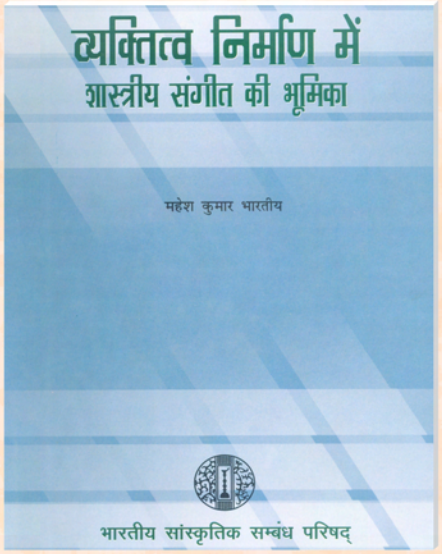

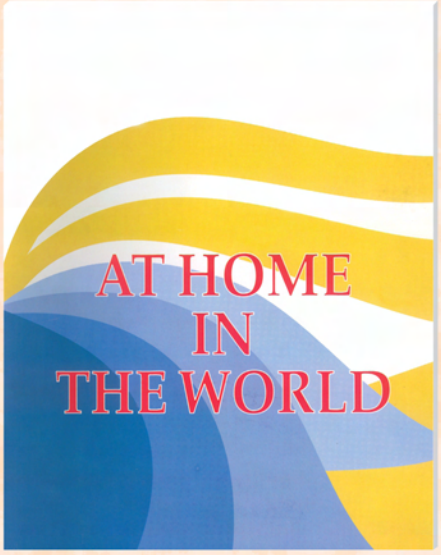

पंजीयन संख्या, आर. एन./32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के प्रकाशन

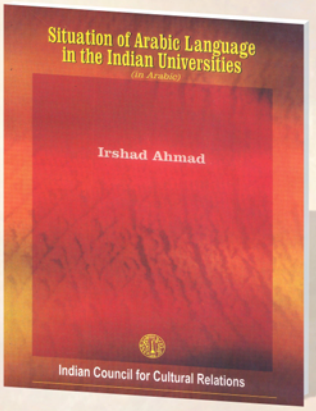

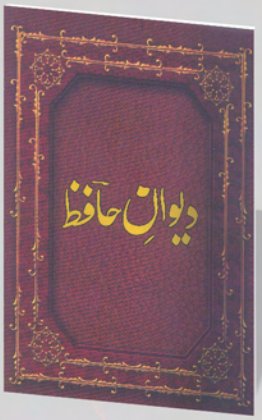

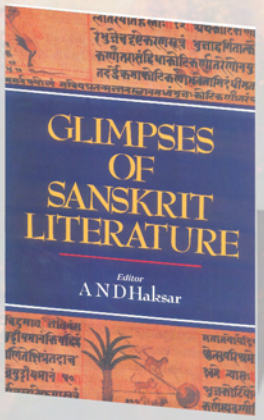

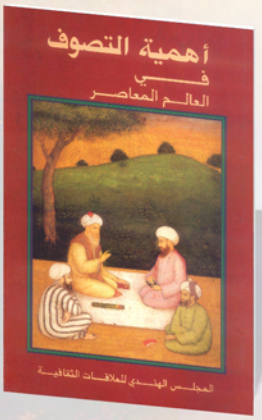

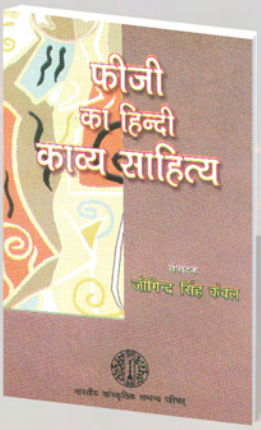

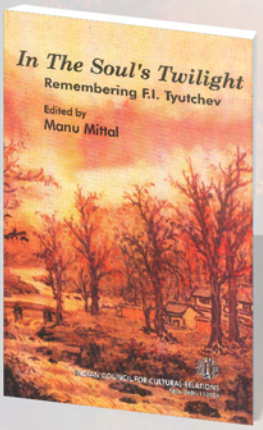

Indian Council for Cultural Relations
भारतीय सांस्कृतिक सम्बंध परिषद्

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
फोन: 91-11-23379309, 23379310
फैक्स: 23378639, 23378647, 23378783
ई-मेल: pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट: www.iccr.gov.in